आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा

दूसरा भाग

आश्रमवासीकी अन्तर-श्रद्धाऐं

लेखक
जुगतराम दवे
अनुवादक
रामनारायण चौधरी

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद

प्रकाशकका निवेदन

यह पुस्तक मूल गुजरातीमें सन् १९४६ में प्रकाशित हुआी थी। ग्रामसेवकोंकी तालीममें यह वहुत अुपयोगी सिद्ध हुआी है। गुजराती भाषा जानने-समझनेवाले अगुजराती लोग, विशेष कर कार्यकर्ता, हमेशा अिस पुस्तकके हिन्दी संस्करणकी मांग करते रहे हैं। आज अितने समय वाद भी हम अुनकी मांग पूरी कर रहे हैं, अिससे हमें वड़ा आनन्द होता है।

यह पुस्तक सुविधाके खयालसे तीन अलग भागोंमें वांटी गयी है, परन्तु विषयकी दृष्टिसे तीनों भाग अेक सम्पूर्ण पुस्तकके ही अंग हैं। अिसका पहला भाग हम अक्तूवर, १९५७ में प्रकाशित कर चुके हैं, जिसमें 'आश्रमवासीके वाह्य आचारों' की चर्चा की गयी है। यह दूसरा भाग पाठकोंके सामने है। अिसमें 'आश्रमवासीकी अन्तर-श्रद्धाओं' का विवेचन किया गया है। तीसरा भाग प्रेसमें है। वह जल्दी ही पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत किया जायगा। अुसमें 'आश्रमवासीके सामाजिक सिद्धान्तों' का विवेचन किया गया है। पुस्तकके पहले भाग तथा तीसरे भागमें चर्चित विषयोंकी विस्तृत सूची अिस भागके अन्तमें दी गयी है, जिससे पाठकोंको अेक ही दृष्टिमें सम्पूर्ण पुस्तकके विषयोंका खयाल आ सके।

आशा है देशकी आश्रम-संस्थायें, ग्रामसेवा द्वारा भारतके गांवोंमें आशा, अुत्साह और प्राणोंका संचार करनेका ध्येय रखनेवाली सार्वजनिक संस्थायें तथा गांधीवादी आश्रमोंका गहरा परिचय पानेकी अिच्छा रखनेवाले लोग अिस पुस्तकसे जरूर लाभ अुठायेंगे।

१५–१–'५८

आदि-वचन

भाअी जुगतरामकी 'आश्रमी शिक्षा' नामक पुस्तकके कुछ प्रकरण मैं पढ़ गया हूं। अुनकी भाषा तो सरल और सुन्दर है ही। गांवके लोग आसानीसे समझ सकें अैसी वह भाषा है। आश्रम-जीवनसे सम्बंध रखनेवाली छोटी-बड़ी सभी चीजोंका लेखकने सुन्दर ढंगसे वर्णन किया है। अुन्होंने बताया है कि आश्रम-जीवन सादा है, परन्तु अुसमें सच्चा रस और कला भरी हुअी है। यह परीक्षा सही है या गलत, यह तो पाठक सब लेख पढ़ कर देख लें।

पूना, १७–३–'४६

मो० क० गांधी

अर्पण

आश्रम-बन्धु नानुभाओीको

किसी ग्रंथके पृष्ठोंमें देखी नहीं थी, परन्तु ठीक यही हमारे विचार हैं, ठीक अिसी तरह आचरण करना हम पसन्द करते हैं।

जीवनमें सीखनेके विषय सिर्फ कोअी अुद्योग, कोअी कला-कौशल या कोअी तर्क ही नहीं हैं। परन्तु जन्मके साथ जड़ जमाये बैठी हुअी पुरानी घृणाओं और पुराने हठीले पूर्वग्रहोंसे हमें मुक्त होना है, कभी न किये हुअे नये विचारोंको खूनमें अुतारना है, नअी श्रद्धाअें हृदयमें स्थापित करनी हैं और तदनुसार आचरण करते हुअे सिरका सौदा करनेका शौर्य कमाना है। यह बात साधारण पाठशाला या अुद्योगशाला नहीं दे सकती। अिसके लिअे आश्रम-जीवनकी जरूरत है।

चरखा, पींजन और करघेके कला-कौशल तो अुद्योगशालामें सीखे जा सकते हैं। परन्तु व्यर्थकी जरूरतों और व्यर्थके मौज-शौकमें काटछांट करके अपने लिअे आवश्यक वस्त्रादि चीजें घरमें ही बना लेनेकी तैयारी—तैयारी ही नहीं, परन्तु वैसे जीवनमें आन्तरिक रस पैदा होना तो आश्रममें ही संभव है।

मलमूत्रका निपटारा कैसे किया जाय, अिसकी शास्त्रीय पद्धति तो किसी विद्यालयमें पाठ पढ़कर जानी जा सकती है। परन्तु अिनके प्रति जो घृणा हमारी जनताके रोम-रोममें घुसी हुअी है और अुस घृणासे भी अधिक जहरीली जो अस्पृश्यता जनतामें पैठी हुअी है, अुस पर तो किसी आश्रममें 'महाकार्य' करते करते ही विजय पाअी जा सकती है। हरिजन बालक या बालिकाको अपना पुत्र या पुत्री बना लेना और अपनी पुत्रीको हरिजन युवकके साथ व्याह देनेकी अुमंग पैदा होना आश्रमी शिक्षाके बिना संभव ही नहीं है।

बीमारोंको क्या दवा दी जाय, अुनकी सेवा कैसे की जाय, अित्यादि शिक्षा किसी वैद्यशालामें मिल सकती है, परन्तु आत्मजनोंकी या अपनी बीमारीके समय घबरा न जानेकी, अनुचित भाग-दौड़ न करनेकी तथा मृत्युके सामने व्याकुल न बननेकी शिक्षा तो आश्रम-जीवनमें ही मिल सकती है।

हो सकता है कि आश्रममें रहते हुअे भी अैसी शिक्षा किसीको न मिले। अिसका दोमें से अेक कारण होगा। या तो वह नामको ही आश्रम होगा; अिन प्रवचनोंमें जिसका चित्र दिया गया है और जिसका चित्र हमारे हृदयमें अंकित है, वैसा आश्रम वह नहीं होगा। अथवा अुस आश्रममें रहनेवाले अपने हृदयके द्वार बंद करके वहां रहे होंगे, आश्रमी शिक्षाको अुन्होंने अपने अन्दर घुसने ही नहीं दिया होगा।

आप और हम अच्छी तरह जानते हैं कि आश्रमवाससे पहले जो श्रद्धाअें हममें नहीं थीं, अैसी बहुतसी नअी-नअी श्रद्धाअें आश्रमवासके कारण हमारे भीतर पैदा हुअी हैं और दृढ़ बनी हैं। वे कब पैदा हुअीं और कब दृढ़ हुअीं, अुनकी शिक्षा हमें किसने और कब दी, अिसका हमें पता भी नहीं। परन्तु हम देखते हैं कि आश्रम-जीवनने हम सब पर अेकसा असर किया है; और अेकसी परिस्थितियोंमें हम सबके हृदयमें अमुक भाव समान रूपमें ही प्रगट होते हैं; और समान परिस्थितियोंमें हम सब जहां हों वहां अेक ही प्रकारका आचरण करनेको तैयार होते हैं।

हम अपने बच्चोंके साथ कैसा बरताव करें, पति या पत्नीके साथ कैसा बरताव करें, जातिके लोगोंके साथ कैसा व्यवहार रखें, हमारा आहार-विहार कैसा हो, देशके कामोंमें किन सिद्धान्तोंसे काम लिया जाय, यह सब हमने कहां, किससे और कब पढ़ा? यह सब हमें अपने आश्रममें अेक-दूसरेसे किसी अकल्पनीय रूपमें मिल गया है।

हमें अपने आश्रमकी शिक्षा लेते लेते यह विश्वास हो गया है कि जिसे सचमुच आत्म-रचना करनी हो, भीतरकी गहरीसे गहरी जड़ों तक शिक्षाको पहुंचाना हो, अुसके लिअे आश्रम ही सच्ची पाठशाला है।

यह सच है कि जिस आत्म-रचनाके लिअे हमने आश्रमवास स्वीकार किया है, अुसमें हम अभी तक बहुत पीछे हैं। कुछ बातोंमें तो हम आज भी अितने कच्चे और पीछे हैं कि दुनियाको आश्रमी शिक्षाके हमारे दावे पर विश्वास ही नहीं होता। वे हमारी कमजोरियोंसे आश्रमका मूल्यांकन करते हैं और आश्रमको केवल बाह्य आचार पर जोर देनेवाली और अबुद्धि पर स्थापित अेक निकम्मी संस्था मान बैठते हैं।

परन्तु जब हम अपने हृदयकी परीक्षा करते हैं, तब देखते हैं कि पहले हम कहां थे और आश्रमवासके बाद आज कहां हैं; और यह देखकर हमें आश्रम और आश्रमी जीवनमें छिपी हुअी आत्म-रचनाकी अद्‌भुत, अकल्पनीय और अवर्णनीय शिक्षाका विश्वास हो जाता है। हम जानते हैं कि हमें जो आत्म-रचना करनी है, अुससे हम अभी कोसों दूर हैं। परन्तु हमें यह भी विश्वास हो गया है कि यदि हमें आश्रमी शिक्षाका लाभ न मिला होता तो हम अपने ध्येयसे कोसों नहीं, परन्तु खगोलशास्त्रियोंके 'प्रकाश-वर्षों' जितने दूर होते।

आत्म-रचना किसकी कितनी हुअी, आश्रमी शिक्षा किसमें कितनी विकसित हुअी, अिसका प्रतिक्षण माप लेने लायक पाराशीशी हमारे पास मौजूद है। हमने कितने वर्ष आश्रममें बिताये, अिस पर से वह माप नहीं लिया जायगा। परन्तु हमारी सच्ची पाराशीशी यह है कि हम स्वराज्य-रचना कितनी और कैसी कर सकते हैं। ज्यों-ज्यों हममें आश्रमी शिक्षा पचती जाती है, ज्यों-ज्यों हमारी आत्म-रचनाकी लाल रेखा अूंची होती जाती है, त्यों-त्यों हम स्वराज्य-रचना अधिक गहरी, अधिक विशाल और अधिक सच्ची कर सकते हैं। हमारे घरमें, हमारे धंधेमें, हमारी देशसेवामें — हमारे रचनात्मक कामोंमें हम कितना सत्याग्रह रख सकते हैं, अिस परसे हम अपनी आत्म-रचनाका अचूक माप निकाल सकते हैं। छोटा या बड़ा जो भी हमारा जन्मसिद्ध क्षेत्र है, अुसमें हम स्वराज्य और सत्याग्रहके तेजस्वी तत्त्व कितने प्रकट कर सकते हैं, अिस पर से हम और संसार हमारी आत्म-रचनाका अेक अेक अंश नाप सकते हैं।

हम खादी, ग्रामोद्योग और राष्ट्रीय शिक्षा जैसे रचनात्मक काम कुछ वर्षोंसे करते आये हैं; हम असहयोग, सविनय कानून-भंग, सत्याग्रह आदि राजनीतिक लड़ाअियोंमें भी कुछ वर्षोंसे भाग लेते आये हैं; हम अपने स्त्री-पुत्रों और जातिके लोगोंके साथ व्यवहार करते आये हैं। यह सब बाहरसे अेकसा दिखाअी देता हो, तो भी क्या आश्रमी शिक्षाके पहले और आश्रमी शिक्षाके बादके हमारे व्यवहारोंमें तत्त्वतः अन्तर

नहीं पड़ गया है? वस्तु अेक ही है, परन्तु गुण क्या दूसरे ही नहीं हो गये हैं? क्या अुसमें अेक प्रकारका रासायनिक परिवर्तन नहीं हो गया है? और आश्रमी शिक्षाके कालमें प्रतिवर्ष और हर मंजिल पर हमारे वहीके वही कार्य क्या गुणोंकी दृष्टिसे भिन्न नहीं होते गये हैं? हमने बारडोलीके असहयोगके समय जैसी लड़ाअी लड़ी या जैसा रचनात्मक कार्य किया, अुससे दांडीकूचके समयके हमारे वही कार्य गुणोंमें बदल गये थे और 'करेंगे या मरेंगे' के युगमें तो अुनमें भी कुछ अद्‌भुत रासायनिक विकास हो गया।

हम सब आश्रम-बंधु जहां और जिस स्थितिमें हों, वहां हमें अपने परम अुपकारी आश्रम और अुसकी शिक्षाके प्रति अैसी श्रद्धा अपने भीतर जाग्रत रखनेमें मदद मिले, अिस हेतुसे ये प्रवचन मैंने जेलवासके मौकोंका लाभ अुठाकर लिख डाले हैं। और अुन्हें पढ़कर सब स्वराज्य-सैनिकोंमें आश्रमी शिक्षाके लिअे प्रेम अुत्पन्न हो, अुसके बिना आत्म-रचना संभव नहीं और आत्म-रचनाके बिना सच्चे स्वराज्यकी रचना संभव नहीं, यह सत्य अुनके हृदयोंमें स्फुरित हो, यह अिनके लिखनेका दूसरा हेतु है। पहला हेतु तो सार्थक होगा ही; क्योंकि हम सब आश्रम-बंधुओंके बीच प्रेमकी गांठ बंधी हुअी है और अुस प्रेमके कारण अेक-दूसरेके वचन अथवा प्रवचन हमें हमेशा मधुर लगते आये हैं। दूसरा हेतु सिद्ध करने जितनी मधुरता अिन प्रवचनोंकी भाषामें होगी?

स्वराज्य आश्रम,
वेड़छी

जुगतराम दवे

आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा

छठा विभाग

आश्रमवासीका संसार

पी
हम
गवं
मुं स
अथवा ता
खिड़कियां क
कुछ और
घर, पड़ोस और
मक्खी-मच्छर जै
बीमारियों

प्रवचन ३०

बीमारी कैसे भोगी जाय ?

कोअी सेवक अथवा आश्रमवासी जीवन कैसे बिताये, अिसका अब तक हमने बहुत विचार किया। आज हम अिसका भी विचार कर लें कि अुसे बीमारी किस तरह भोगनी चाहिये और किस तरह मरना चाहिये।

मेरी भाषा सुनकर आपको हंसी आती है! आप मनमें कहते होंगे : "क्या बीमारी और मौत पूछकर आती हैं? क्या वे हमेशा अनसोचे मेहमानोंकी तरह अकल्पित दिशाओंसे नहीं आतीं? अुस समय हमें विचार करनेका अवसर ही कहां रहता है? बीमारी आती है तब वह हमें अुठाकर खटिया पर पटक देती है। अुस समय हम दुःखसे तड़पें और अूहूं अूहूं करें अथवा यह विचार करें कि बीमारी कैसे भोगी जाय? और मौत आयेगी तब तो मरनेके ढंगका विचार करनेका होश ही कहां रहेगा?"

क्या बीमारी सचमुच आपके कथनानुसार अनसोचे मेहमानकी तरह आती है? आप स्वीकार करेंगे कि जीवन-पद्धतिके जिन अनेक सिद्धान्तोंका हम विचार कर रहे हैं, अुनके अनुसार यदि जीवन बितायें तो बीमारी हमारे पास आ ही नहीं सकती। अगर हम अपने विचारोंके अनुसार खान-पान करें, अुनके अनुसार कपड़े पहनें, अुनके अनुसार शरीर-श्रमके अुद्योग करें, अुनके अनुसार स्वच्छता रखें, अुनके अनुसार आकाशकी गोदमें सोयें और ब्राह्म-मुहूर्तमें जागें तथा अुनके अनुसार संयम और सेवाका जीवन बितायें, तो हमारे जीवनसे बीमारीका नाम-निशान ही मिट जाना चाहिये। विचार करेंगे तो आप यह भी देख सकेंगे कि बीमारी आनेका कारण यही होता है कि कहीं न कहीं हमसे अिन सिद्धान्तोंका भंग हुआ है।

हम भोजन-संबंधी कोअी सिद्धान्त न पालें, तरह-तरहके मिर्च-मसालों तथा मीठी चीजोंकी मददसे जरूरतसे ज्यादा खायें, चबाये बिना खायें, अनाजोंको कूटने, दलने, पीसने और पकानेमें अधिकांश पाचक तत्त्वोंको नष्ट कर डालें और फिर परिणाम-स्वरूप हमारा पेट खराब हो, आंतें कमजोर हो जायं, हमेशा शौच-संबंधी शिकायतें रहा करें, आंखें आयें, मुंह आये, तो अिसमें दोष किसका है? बीमारी अचानक आअी या हमने अुसे न्योता?

हम स्वच्छता-संबंधी किसी सिद्धान्तका पालन न करें, नहाने-धोनेका आलस्य करें अथवा नाम करनेको ही नहायें-धोयें; हवा और प्रकाश-रहित मकानमें दरवाजे और खिड़कियां बन्द करके घुसे रहें; कहां शौच जायं, कहां थूकें, कहां पानी गिरायें, कहां जूठन और कचरा फेंकें, अिसका कोअी विचार न करें और अपनी ही गंदगीसे अपने घर, पड़ोस और गांवके आसपासकी जगहको दुर्गंधमय और रोगका घर बना डालें; मक्खी-मच्छर जैसे रोग-प्रचारकोंको पैदा करें और अुसके परिणाम-स्वरूप चमड़ीकी बीमारियोंसे पीड़ित हों तथा मलेरिया, निमोनिया, टाअिफाअिड जैसे बुखारों और अनेक

संक्रामक रोगोंके शिकार बनें, तो क्या अिसमें भी हमारा अपना दोष नहीं है? क्या यह नहीं कहा जायगा कि हम बीमारीको हाथ पकड़कर आग्रहके साथ न्योता देकर लाये?

हम शरीरको अुसके धर्मके अनुसार परिश्रम करके तरोताजा, चपल और बलवान न रखें और बड़प्पनके खयालसे दिनभर बैठे या सोये रहें, लिखने-पढ़ने या बातें करनेके सिवा कोअी अुद्योग ही न करें, हाथसे कुदाली या कुल्हाड़ी चलानेके बजाय केवल कलम ही चलायें और रुपया-पैसा ही गिनें, पैरोंको पलथी मारकर बांध दें और अगर आवागमन करना ही पड़े तो अपने पैरोंसे न करके तरह तरहके वाहनों पर सवार होकर करें और अिसके परिणाम-स्वरूप हमारे शरीर कमजोर हो जायं, हाथ-पैर रस्सी जैसे हो जायं, छाती संकरी और पेट फुटबाल जैसा बन जाय, खाया हुआ हजम न हो, शरीरमें चर्बी बढ़ जाय, हम सर्दी, गठिया और दमे जैसी व्याधियोंसे पीड़ित रहें तो अिसमें किसका कसूर है? व्याधिका या हमारा?

हम दिनभर घरमें बन्द रहकर ठंडी छायामें रहें, खुली हवाका सेवन न करें, सूरजकी धूपका सेवन न करें, और घरकी छायामें भी शरीरको कपड़े पर कपड़ा पहनकर अुनमें लिपटा हुआ रखें और अुसके परिणाम-स्वरूप हमारा चेहरा निस्तेज हो जाय, हमारी चमड़ी फीकी पड़ जाय, हम सर्दी-गर्मी सहन न कर सकें, वातावरणमें जरा फर्क पड़ते ही हमें जुखाम हो जाय, अजीर्ण हो जाय, तो यह हमारे दोषसे हुआ या बीमारी अपने-आप हमारे पास आअी?

हम कोअी संयम न रखें, ब्रह्मचर्यका पालन न करें और भोग-विलासको ही जीवनका धर्म बनाकर चलें और अुसके फलस्वरूप शरीर सूख जाय, निस्तेज और निर्वीर्य हो जाय, भरी जवानीमें हम बूढ़े हो जायं, क्षय जैसे राजरोगसे तो क्या मामूली सर्दी या खांसीसे भी टक्कर न लें सकें अैसे मुर्दार बन जायं, तो अिसमें आश्चर्य क्या?

क्या यही नहीं कहना चाहिये कि हमने स्वयं खास प्रयत्न करके अपने शरीरको हर तरहसे हर रोगके लायक बना दिया है? बीमारीकी जड़में हमारा चटोरा-पन है, हमारा भोग-विलास है, हमारा आलस्य है, हमारी विचारहीनता है, यह स्वीकार करके क्या हमें बीमारीको अेक शर्मकी बात नहीं मानना चाहिये?

अिस प्रकार यदि हम जान लें कि बीमारी बिना कारण या बिन बुलाये नहीं आती, अुसके आनेमें हमारी पूरी जिम्मेदारी होती है, हमने जीवनके सिद्धान्तोंका भंग करके अुसे बुलाया है और हमारे बुलानेसे ही वह आअी है, तो बीमारी कैसे भोगी जाय — बीमारीके समय कैसे रहा जाय, यह तुरन्त हमारी समझमें आ जायगा।

पेट फूल जाय तो हम अेक-दो लंघन करके पेटका भार हलका कर लेंगे और अुसे आरामसे अपना काम करनेका मौका देंगे। अफरा अधिक हो तो आक या अरंडीके पत्ते पेट पर बांधकर या मिट्टीकी पट्टी रखकर और अन्तमें कोअी हलका-सा जुलाब

लेकर शरीरकी खराबी निकालनेमें मदद देंगे। सिरदर्द, जुकाम वगैरा मामूली तकलीफें तो अितना करनेसे अपने-आप शान्त हो जायंगी।

बुखारसे भी हम घबराहटमें नहीं पड़ेंगे। हम समझ जायेंगे कि हमारी लम्बी लापरवाहीसे हमने शरीरमें बहुतसा मल और जहर जमा होने दिया है, और कुदरतने अब अकुलाकर अुसे निकालनेके लिअे युद्ध छेड़ दिया है। हम कुदरतको अपना काम निश्चिन्त होकर करने देंगे, शान्तिसे पड़े रहेंगे और दुःख सहन करेंगे। कोअी सिर दबाओ, कोअी पैर दबाओ, सिर पर बाम लगाओ, डॉक्टरके यहां दौड़ो — अिस प्रकार बेकारकी धांधली मचाकर हम आसपासके लोगोंको व्यर्थ परेशान नहीं करेंगे। खाना तो हमें बुखारमें भायेगा ही नहीं। न खा सकनेके कारण हम व्यर्थ घबराहटमें नहीं पड़ेंगे और नमक-मिर्चकी चरपरी सेव-पकौड़ियां वगैरा बनवा कर किसी भी तरह खानेमें मन नहीं रखेंगे। हम समझ जायंगे कि शरीर रोगसे लड़नेमें लगा हुआ है, अुसे नअी खुराक पचानेकी अभी फुरसत नहीं है। कुछ न भानेका अिसके सिवा और क्या अर्थ हो सकता है? जब तक हमें कड़ाकेकी भूख न लगे तब तक खाना बन्द रखेंगे। बुखार बहुत असह्य होगा तो सिर और पेट पर गीली मिट्टीकी पट्टी रखेंगे। बुखारके दिनोंमें कड़वी चीजोंका सेवन करेंगे।

खाज-खुजली जैसे चमड़ीके रोग पैदा हो जायं तो भी व्यर्थकी घबराहटमें पड़कर हम तरह तरहके मलहम खरीदने नहीं दौड़ेंगे, परन्तु नहाने-धोनेमें अधिक सावधानी रखेंगे। मैले रहकर चमड़ी बिगाड़नेका प्रायश्चित्त करनेको दिनमें दो-तीन बार भी नहायेंगे। जरूरत होगी तो गरम पानीमें नीमके पत्ते अुबाल कर अुससे नहायेंगे। चमड़ीको सूरजकी धूप खिलायेंगे, दूसरी तरफ पेटके भीतरका कचरा निकालनेमें भी शरीरकी सहायता करेंगे।

शरीर मोटा होने लगे अथवा दमे या गठिया जैसे रोगोंके चिह्न दिखाअी देने लगें, तो हम समय पर चेत जायेंगे। हम तुरन्त समझ जायेंगे कि यह बैठा धंधा करनेका और खाने-पीनेमें किये गये असंयमका फल है। हम दिनचर्यामें बड़ा फेर-बदल कर लेंगे। अुसमें शरीर-श्रमका काम दाखिल करेंगे। पहले हलका काम करते करते धीरे धीरे अुसकी मात्रा बढ़ाते जायेंगे। खुराकमें मीठी और नमकीन चीजोंका शौक मिटाकर रोटी-दूध और साग-भाजी जैसे सादे अन्नका शौक बढ़ायेंगे। और वह भी अितना ही खायेंगे जिससे पेट कुछ खाली रहे।

क्षय जैसे किसी राजरोगके शिकार हो जायं तो भी हम व्यर्थ घबराहटमें नहीं पड़ेंगे। मरनेसे पहले मुरदा बन गये हों, अिस तरह व्यवहार नहीं करेंगे। डॉक्टर-वैद्योंके पीछे पड़कर बरबाद नहीं होंगे। अिलाज करानेकी हमारी स्थिति है या नहीं, यह देखे बिना कुटुम्बको भूखा मारकर अपने-आपको जिलानेके लिअे हाथ-पैर नहीं पीटेंगे। हम समझ जायेंगे कि शरीर सूर्यकी जीवनदायी धूप चाहता है। अुसे खुली स्वच्छ प्राणप्रद हवाकी जरूरत है। हम गांवका तंग, हवा-रोशनीसे वंचित, दुर्गन्धयुक्त वातावरणवाला घर छोड़कर किसी खेत जैसी खुली स्वच्छ जगहमें रहने चले जायेंगे। शरीरको कपड़ोंके

कैदखानेसे मुक्त करके अुस पर सूर्यकी कोमल किरणें नाचने देंगे और हवाको खेलने देंगे। खाने-पीनेके स्वादोंसे निर्बल बने हुअे शरीरका भार नहीं बढ़ायेंगे। हमारे कफ आदिकी औरोंको छूत न लगे अिसकी चिन्ता रखकर अुसे सावधानीसे गाड़ देंगे। आधा रोग तो अितना करनेसे ही मिट जायगा। गाय पालकर अुसका ताजा दूध सेवन करेंगे और शरीरमें कोअी खास दोष हो तो अुसके निवारणके लिअे अुचित औषधि लेंगे। अिस प्रकार रहेंगे तो अीश्वर-कृपासे राजरोग पर भी हम विजय प्राप्त कर लेंगे।

यह कोअी आरोग्यशास्त्र पर अथवा वैद्यकशास्त्र पर भाषण नहीं है। अैसा भाषण देनेकी मेरी योग्यता भी नहीं है। और न मुझे अिसकी आवश्यकता है। मेरा यह मतलब नहीं कि किसी भी रोगमें वैद्य-डॉक्टरोंकी शरणमें नहीं जाना पड़ेगा। परन्तु ८० फी सदी बीमारीमें तो ये मामूली बातें ही होती हैं, जो अिस प्रकार रहन-सहनमें सुधार करनेसे अपने-आप मिटाअी जा सकती हैं।

शरीरमें कुछ होते ही वैद्य-डॉक्टरके पास दौड़ जाना चाहिये, 'शरीरके रोगके बारेमें हम क्या जानें? जिसका काम वही करे। हम तो पैसा खर्च करके बोतलें भर लानेके सिवा और क्या कर सकते हैं?' अैसा खयाल रखना ही अेक तरहकी बड़ी बीमारी है। दूसरी बड़ी बीमारी है शरीरको जरा वेदना हुअी कि हिम्मत हार बैठना, हाथ-पांव पीटना या चिल्लाते रहना। "कुछ भी करो परन्तु अिस वेदनासे मुझे छुड़ाओ, वैद्यको लाओ नहीं तो डॉक्टरको लाओ। अेक रुपयेवाला डॉक्टर अैसा करनेमें असफल हुआ तो पांच रुपयेवाला लाओ और अुसकी दवा पेटमें पहुंचनेसे पहले बीस रुपयेवाले डॉक्टरको बुलाओ!" वेदनाके सामने अैसे कायर बन जाना, बीमारीके आगे अिस प्रकार पामर बन जाना, मस्तिष्कका संतुलन खो बैठना और डूबते हुअे आदमीकी तरह हाथ-पांव पछाड़ना किसी भी मनुष्यकी मनुष्यताको लांच्छित करनेवाला व्यवहार है, तो फिर सेवकको तो वह शोभा दे ही कैसे सकता है?

वेदना, दुःख, संकट — फिर अुसका कारण शरीरका दुःख हो अथवा दैवी या भौतिक विपत्ति हो — के विरुद्ध घबराये बिना, हिम्मत हारे बिना, मस्तिष्कको शान्त और स्थिर रखकर अटल खड़े रहना, कष्ट सहन करना पड़े तो हंसते हंसते सहन करना और समझके साथ अुसका अुपाय करना ही मनुष्यको शोभा देता है। यही वीरधर्म है। बीमारीका भी अिसी वीरधर्मसे सामना करना चाहिये।

घबराहटका अेक कारण सहनशक्तिका अभाव है, और दूसरा कारण अज्ञान है। शरीरके बारेमें, अुसे नीरोग और सशक्त रखनेके नियमोंके बारेमें, बीमारीके आने और मिटनेके बारेमें हमारा अज्ञान कितना भारी है? अिस सम्बन्धका ज्ञान न तो हमें घरमें मिलता है और न पाठशालामें। हम खुद बीमार होते हैं और हमारे आसपासके लोग भी समय समय पर बीमार होते हैं। परन्तु हम अपने अनुभवोंसे भी कोअी ज्ञान प्राप्त नहीं करते। अुस समय हम कायर बन जाते और घबरा जाते हैं। अिसलिअे वैद्य-डॉक्टरोंके अिलाज पर रुपया खर्च करनेके सिवा हमें कुछ नहीं सूझता।

हमारा अपना अज्ञान जितना बड़ा होता है, अुतने ही डॉक्टर साहब हमें सर्वज्ञ और अेकमात्र तारनहार दिखाअी देते हैं। हम दीन बनकर अुनके सामने ताकते रहते हैं। वैद्य-डॉक्टर अैसे घबराये हुअे, कायर और बेवकूफ बीमारोंकी मूर्खताका लाभ न अुठायें तो फिर किसका अुठायें? वे जैसे जैसे हमारी घबराहट अधिक देखें, वैसे वैसे हमें अधिक चौंकाते जायं और अधिक दाम निकलवाते जायं तो अिसमें आश्चर्य क्या?

फिर वे देखते हैं कि हमें बीमारीके दुःखसे तो बचना है, परन्तु आहार-विहारमें जरा भी संयम नहीं रखना है, अैश-आराम पर काबू नहीं रखना है और गादी-तकिया छोड़कर मेहनत नहीं करनी है। अिसलिअे वे हमें अैसी ही दवाअियां देते हैं, जिनसे दो घड़ी अूपर अूपरसे आराम मालूम होता है और पीड़ा दब जाती है, परन्तु रोग शरीरमें गहरा पैठता जाता है और थोड़े समय बाद अधिक जोर और अधिक वेदनाके साथ दुबारा फूट निकलता है। डॉक्टर अीमानदार हो और हमारा धन हरनेको अैसी युक्ति न करता हो, तो भी जब तक हम खुद आरोग्यके नियमोंका पालन करके अुसके काममें सहयोग न दें, तब तक वह हमें स्थायी रूपमें स्वस्थ कैसे कर सकता है?

हम सेवकोंको तो खास तौर पर समझना चाहिये कि जैसे बीमारीसे घबराना शर्मकी बात है, वैसे ही बीमारीके बारेमें और शरीरके नियमोंके बारेमें अैसा अज्ञान रखना भी बहुत शोभास्पद नहीं है। हम आलस्य और अज्ञानवश अपना घर न संभालें, अुसे गन्दा रखें और गिर जाने दें, तो यही समझना चाहिये न कि हम गृहस्थ बनने लायक नहीं हैं? तब शरीर तो हमारी घरसे भी अधिक निकटकी, अधिक महंगी सम्पत्ति है। अुसके बिना हम तिनका भी नहीं तोड़ सकते और अुसके द्वारा हम बड़ेसे बड़े काम कर सकते हैं। अैसा शरीर परमेश्वरने हमें जन्मके साथ प्रदान किया है। अुसे हम जरा भी न जानें, अुसे संभालनेकी कला सीख लेनेका थोड़ा भी प्रयत्न न करें, तो हम अैसे सुन्दर और अनेक शक्तियों तथा गुणोंसे युक्त शरीरके स्वामी बननेके लायक ही नहीं हैं। अुसके अुदार दाता परमेश्वरके सामने हमें शर्मसे सिर नीचा कर लेना पड़ेगा।

अिसलिअे शरीरके बारेमें, आरोग्यके बारेमें, बीमारियों और अुनके अुपचारोंके बारेमें काफी ज्ञान प्राप्त करनेके लिअे सदा प्रयत्नशील रहना हम सेवकोंका धर्म है। स्कूल-कॉलिजोंमें पढ़नेसे ही वह ज्ञान मिलता है, यह निरा भ्रम है। हम खुद बीमार पड़ें, हमारे कुटुम्ब और संस्थामें बीमारी आये, अुस समय हम लगनपूर्वक अुस बीमारीके कारण, लक्षण और अुपचार जानकर लोगोंसे समझते रहें, तो हम कॉलेजमें पढ़े बिना भी आधे डॉक्टर तो बन ही जायंगे। अैसे परम आवश्यक कामके लिअे अुतना प्रयत्न न करना शिथिलता और मंद बुद्धिकी निशानी है, और सेवकोंके लिअे तो सचमुच लज्जित होनेकी बात है।

शरीर और अुसके आरोग्यसे सम्बन्ध रखनेवाला ज्ञान स्वयं बीमारीसे बचनेके लिअे तो आवश्यक है ही, परन्तु हमारे सेवक-धर्मके पालनके लिअे भी वह निहायत

जरूरी है। सेवक-धर्म अत्यन्त विशाल है और अुसमें अनेक प्रकारकी सेवाओंका समावेश होता है। परन्तु सबसे सीधी और प्रत्यक्ष दिखाअी देनेवाली कोअी सेवा हो तो वह बीमारोंकी सार-संभाल ही है। हम खादी-सेवक हों, राष्ट्रीय शिक्षक हों या स्वराज्यके सेवक हों; आश्रममें रहें, घरमें रहें, ग्रामसेवकोंके बीच जाकर बस जायं या स्वराज्यकी लड़ाअी लड़ते हुअे जेल चले जायं — बीमारोंकी सेवा करनेके मौके हमेशा आयेंगे ही। गीताकी भाषा चुराकर कहा जा सकता है कि "भाग्यशाली सेवकोंको रोगियोंकी सेवाके अवसर, खुले स्वर्गद्वारकी भांति, सदा मिल ही जाते हैं।"

अैसे अवसर पर साधारण लोगोंके व्यवहारमें और समझदार सेवकोंके व्यवहारमें फर्क रहेगा। सामान्य लोग मानेंगे कि बीमारीके मामलेमें हमें क्या पता चल सकता है? यह काम वैद्य-डॉक्टरोंका है। ज्यादा करेंगे तो वे डॉक्टरके यहांसे दवा ला देंगे या डॉक्टरको बुला लायेंगे। लेकिन सेवक समझता है कि डॉक्टरके पास जाने जैसी बीमारी कभी-कभी ही होती है; ८० प्रतिशत रोग तो साधारण प्रकारके होते हैं, जो अुपवास करनेसे अथवा हम जिन सादे अिलाजोंका विचार कर चुके हैं अुन अिलाजोंसे आसानीसे मिट जाते हैं। वह रोगीकी घबराहटके समय अुसके पास रहेगा, अुसे साहस दिलायेगा, आनन्दमें रखेगा और अैसे छोटे-छोटे अिलाज करेगा जिससे अुसकी वेदना कम हो जाय। बीमार अुठ-बैठ न सके तब सेवक अुसे हर तरहसे बिनमांगी मदद देकर अैसा काम करेगा जिससे अुसे पूरा आराम मिले, जरूरत पड़ने पर वह रातको जागकर अुसकी सेवा करेगा, अुसका पाखाना, पेशाब, थूंक व कफ प्रेमसे अुठाकर अुसे गाड़ने-दबाने वगैराकी अुचित व्यवस्था करेगा और अुसके कपड़े, अुसका बिछौना और अुसका मकान बहुत साफ रखेगा। सेवक जानता है कि स्वच्छता रोगीका आधा रोग दूर करती है। पुरानी आदत और गलत समझके कारण रोगी चाहे सो खाने-पीनेकी अिच्छा करेगा तो सेवक अुसे प्रेमसे रोकेगा और दवा या फल आदि खिलाना जरूरी होगा तो प्रेमसे समझा कर अपने हाथसे खिलाये-पिलायेगा। वह जानता है कि बीमारीमें रोगीका चिड़चिड़ा और तेजमिजाज हो जाना स्वाभाविक है, अिसलिअे अुसके साथ वह धीरज और खामोशीसे पेश आयेगा और प्रेमपूर्ण सेवाके बलसे अुसे अपने वशमें करेगा। सेवक मौका देखकर बीमारको बीमारीके कारण समझाकर अुसकी घबराहट दूर करेगा और जो अिलाज चल रहे हों अुनमें अुसका सहयोग प्राप्त करेगा।

बीमार जब बीमारीसे अुठेगा तब प्रकृति स्वयं अुसके शरीरके दोष निकाल चुकी होगी। अिस बीच सेवा करनेवाले सेवकने रोग-संबंधी अुसका अज्ञान दूर कर दिया होगा। बड़ेसे बड़ा लाभ तो यह होगा कि संकटके समय सेवा करने और करानेवाले दोनोंके हृदय गहरे प्रेम-संबंधमें बंध जायेंगे और बीमारको बीमारीका सामना कैसे किया जाय अिसकी कला आ जायगी। अितना ही नहीं, अैसी प्रेमपूर्ण सेवा पानेवाले बीमारको स्वयं रोगियोंकी सेवा करनेका शौक स्थायी रूपसे लग जाय तो आश्चर्य नहीं, क्योंकि सेवाका शौक अेक संक्रामक वस्तु है।

सेवककी अैसी पद्धतिका रोगी और अुसके सगे-संबंधी शुरूमें काफी विरोध करेंगे। रोगी खुद तो सेवा और प्रेमके सामने लम्बे समय तक विरोध नहीं कर सकता। प्रेम और सेवामें मनुष्यको वश करनेकी कैसी अद्भुत शक्ति है, अिसका प्रत्यक्ष दर्शन रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेवालोंको अचूक रूपमें होता है। परन्तु दूसरे सगे-संबंधियोंके विरोधको जीतना अुतना आसान नहीं होगा। अुन्हें बीमारके सुखकी ही अेकमात्र दृष्टि हो तब तो वे भी थोड़े समयके अनुभवसे शान्त हो जायेंगे। परन्तु अुनके मनमें अक्सर दूसरे ही मोह होते हैं। अुनके मनकी गहराअीमें यह चिन्ता छिपी रहती है कि रोगीके लिअे वहुत रुपया खर्च करके डॉक्टरोंको नहीं बुलायेंगे और दवायें नहीं लायेंगे, तो जात-विरादरी और पास-पड़ोसमें हमारी निन्दा होगी।

सेवक कच्चा हो तो वह स्वयं भी अैसे मोहसे मुक्त नहीं होता। अपने बच्चोंकी बीमारीके समय वह स्वयं जानता है कि अिसमें धांधली मचाने या डॉक्टरोंके पास दौड़नेकी कोअी जरूरत नहीं है। परन्तु पत्नी प्रहार करती है, "तुम्हें बच्चेके लिअे प्रेम नहीं है, बच्चेसे तुम्हें पैसा ज्यादा प्यारा है।" भाअी-बहन बीमार पड़े हों तब शायद मां-बाप अुसे अैसे वचन कहेंगे। कच्चा सेवक अपने विचारोंको जेबमें डालकर सम्बन्धियोंको खुश करने लग जायगा। घरमें बीमारकी खाट हो तब निर्मोही बनकर विचार अथवा चर्चा करने लायक संतुलन किसीके दिमागमें नहीं होता। दिमाग तुनकमिजाज हो जाता है और जरासी बातमें अुसे बुरा लग जाता है। परन्तु सच्ची कला मनुष्यको अैसे समय ही दिखानी होती है। क्या अैसी कला हम दिखा सकेंगे? अथवा हम स्वयं बीमारीके आंखोंके सामने खड़े होने पर अपना दिमाग खो बैठेंगे और अपनी श्रद्धा व समझ गंवा देंगे?

बड़े बड़े प्रसिद्ध वैद्यों और डॉक्टरोंके बारेमें कहा जाता है कि जब वे स्वयं बीमार पड़ते हैं अथवा अुनके घरमें कोअी अपना आदमी बीमार पड़ता है, तब वे बहुत घबरा जाते हैं और अिस तरहका व्यवहार करने लगते हैं मानो अपनी सारी विद्या भूल गये हों। सामान्य मनुष्यकी तरह वे दूसरे डॉक्टरोंके यहां भागदौड़ करते हैं, बीमारका दुःख भुलानेके लिअे किसी अज्ञानी मनुष्यकी भांति वह जो मांगे सो अुसे देते हैं और अुसके सामने रोने बैठकर अुसकी हिम्मत छुड़ा देते हैं। यह केवल डॉक्टरोंके ही मामलेमें होता हो अैसी बात नहीं। क्या हम सेवकोंको यह आत्म-विश्वास है कि हम अिस प्रकारकी दुर्बलताके वश नहीं होंगे? दूरके रोगियोंके बारेमें हम जो सयानापन और धीरज दिखाते हैं, वही जब हमें या हमारे निकटके सम्बन्धियोंको अथवा जिनकी हम पर जिम्मेदारी हो अैसे विद्यार्थियोंको बीमारी हो जाय तब भी क्या हम दिखा सकेंगे? अथवा अैसी कसौटीके समय हम भी अपने विचार और विश्वास छोड़कर साधारण लोगोंकी तरह आचरण करने लगेंगे?

पढ़े-लिखे लोगोंमें बीमारी होते ही जैसे डॉक्टर और दवा ही सूझती है, वैसे देहातमें लोगोंको जादू-टोने सूझते हैं। अुन्हें तुरन्त शंका होती है कि कोअी भूत-प्रेत अथवा डायन दुःख दे रही है, किसीकी नजर लग गअी है अथवा किसी दुश्मनने मूंठ चला दी

है। ओझा आकर सिर हिलाते हैं, झाड़ू घुमाते हैं, बकरे-मुर्गेका भोग चढ़ाते हैं, अुतारा रखवाते हैं और तरह तरहके खर्च और ढोंग करवाते हैं।

गांवोंमें भी बहुतसे सुधारक मानते हैं कि यह सब अन्धविश्वास है। परन्तु जब अपने घरमें बीमारी आ जाती है तब वे अपने सुधारक विचारों पर दृढ़ नहीं रह पाते और परम्परासे चले आ रहे अन्धविश्वासोंके आगे सिर झुकाकर ओझाओंकी शरणमें चले जाते हैं। "शायद लोगोंका अन्धविश्वास सही हो; डायन भोग न मिलनेसे कुपित होकर कहीं प्राण ले ले तो? कुछ समयके लिअे सुधारको दूर रखनेमें ही सलामती है।" कमजोरीमें अुनका मन अिस तरह विचार करता है और वे ओझाओंका आश्रय लेते देखे जाते हैं।

हम पढ़े-लिखे लोग छुटपनसे अिस प्रकारके अन्धविश्वासोंमें नहीं पले होते, अिसलिअे हमें ग्रामवासियोंके अिन अन्धविश्वासों पर हंसी आती है और अुन पर दया आती है। परन्तु अुनके यदि अपने अन्धविश्वास हैं तो हमारे भी अपने अन्धविश्वास हैं। जिस घबराहटके अधीन होकर वे ओझाओंकी शरण ढूंढ़ते हैं, वैसी ही घबराहटके वश होकर क्या हम वैद्य-डॉक्टरोंकी शरण नहीं ढूंढ़ते? असली भूत और असली डायन तो यह है कि हमने खाने-पीने और रहन-सहनमें ज्ञान अथवा संयम नहीं रखा और प्रकृतिके नियमोंको तोड़ा। अिस बातको जैसे वे नहीं समझते वैसे हम भी नहीं समझते। कभी कभी तो अन्धविश्वासी देहातियों पर हंसनेवाले पढ़े-लिखे लोग बीमारी आने पर अैसे घबरा जाते हैं कि वे भी ओझाओंको बुलाकर डुगडुगी बजवाने लगते हैं। "कहीं गांवके लोगोंकी मान्यता सच हो तो? सिर्फ अिस अवसर पर ओझा बुलवा लेनेमें क्या नुकसान है? व्यर्थ क्यों डायनके शिकार बननेका खतरा मोल लिया जाय?" अुनका घबराया हुआ दुर्बल मन अिस प्रकार विचार करने लग जाता है।

बीमारीकी घबराहटमें लोग अेक जो बड़ी दुर्बलता दिखाते पाये जाते हैं अुसका अुल्लेख भी यहीं कर दूं। साधारणतः जो लोग वंश-परंपरासे मांस-मदिरा नहीं खाते-पीते और जिन पर अिनके विरुद्ध संस्कार पड़े होते हैं, वे जब बीमारीके फन्देमें फंस जाते हैं तब मनसे बिलकुल दुर्बल बन जाते हैं और दवा तथा पौष्टिक खुराकके तौर पर ये चीजें लेने लग जाते हैं। अिस प्रकार अंडे, मछलीका तेल, लीवरकी दवाओं, द्राक्षासव और ब्राण्डी जैसी चीजोंका प्रचार दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है।

कअी लोग तो अैसा कहते भी सुने जाते हैं कि हिन्दुस्तानके लोग अनेक पीढ़ियोंसे मांस-मदिराका सेवन छोड़नेसे रजोगुण-हीन बन गये हैं, दुर्बल शरीर और कायर स्वभाव-वाले बन गये हैं, यद्यपि आज मांसाहारी लोगोंमें और आहारशास्त्रका अध्ययन करने-वाले लोगोंमें अैसा मत जोर पकड़ता जा रहा है कि मांस शरीरमें अनेक रोग पैदा करता है और वह जो शक्तिवर्धक कहा जाता है अुसमें भी पूरा सत्य नहीं है। शराबको तो सभी लोग भयंकर और हानिकारक पेय मानते हैं। फिर भी अुन लोगोंके साथ विवादमें पड़नेकी हमें जरूरत नहीं है। मांसाहारी लोग खुराकमें भी अहिंसा पालन करने लग जायं, अैसी आशा रखनेकी जरूरत नहीं है। लेकिन जिन्होंने पीढ़ियोंसे अिन

चीजोंको छोड़ रखा है, जो अिसे अपनी बड़ी विरासत मानते हैं और अुसके लिये अपने पूर्वजोंका ऋण स्वीकार करते हैं, वे बीमारीकी घबराहटमें अपने पूर्वजों द्वारा अुपार्जित सद्‌गुणोंको फेंक दें, यह क्या अुन्हें शोभा देता है?

फिर जिन चीजोंको मूल रूपमें वे हाथसे भी नहीं छूते, अुन्हें चूर्ण या चाटनेकी औषधिके रूपमें लेने लगें अथवा अुनके अिंजेक्शन लें यह क्या ठीक है?

लेकिन यहां भी मांसाहार करके वे पीढ़ियोंकी टेक खोते हैं, अिस मुद्दे पर हम जोर देना नहीं चाहते। लेकिन बीमारीमें अितनी घबराहट होना कैसी दीन दशाका द्योतक है, अिसी ओर हम अिशारा करना चाहते हैं। वास्तवमें, बीमारीसे अिस हद तक डरना, दीन बन जाना मनुष्यकी मनुष्यता पर बड़ा लांछन ही है।

और आज हमने देखा कि यह डर कितना कल्पित और बेकार है। मैं आपको कह चुका हूं कि अस्सी फी सदी बीमारियां तो जरा भी डरने जैसी नहीं होतीं। हम स्वयं अपना व्यवहार ठीक करके प्राकृतिक सिद्धान्तोंके अनुसार खान-पान रखने लगें, तो किसी वैद्य-डॉक्टरके पास गये बिना ही हम बीमारीको स्वयं मिटा सकते हैं। बहुतसी छोटी-छोटी बीमारियां तो लोग कुछ न करें, संयम पालन करके कुदरतको मदद न करें, तो भी अपना शरीर-शुद्धिका काम करके तीन-चार दिनमें शान्त हो जाती हैं। लेकिन धीरज किसे रहता है? डॉक्टरवाले डॉक्टरके पास दौड़ जाते हैं और ओझावाले ओझोंके पास दौड़ जाते हैं; न खाने लायक चीज खाते हैं, न पीने लायक चीज पीते हैं, निर्दोष जानवरोंकी जान लेते हैं, और जो यश प्रकृतिका अपना होता है अुसे अिन झूठे अिलाजोंके नाम लिखवाते हैं।

प्रवचन ३१

मृत्युके साथ कैसा सम्बन्ध रखा जाय?

अब तक हमने सादी बीमारियोंके बारेमें ही विचार किया, परन्तु जीवनमें सच्ची गंभीर बीमारियोंके अवसर भी प्रत्येकके भाग्यमें कभी न कभी आते ही हैं; और अुनमें से कोअी कोअी बीमारी मौत तक पहुंचा देनेवाली भी साबित होती है।

अैसे मौकों पर जानकार वैद्य-डॉक्टरोंकी सलाह लेनी ही चाहिये। परन्तु यह मानना भूल है कि वैद्य या डॉक्टरकी गोली ही सब कुछ कर देगी। अैसे मौकों पर तो सेवा-शुश्रूषाकी अुत्तमसे अुत्तम कला दिखानेकी, रोगीको प्रेम और सेवासे नहलाकर अुसमें साहस और आशा बनाये रखनेकी और रोगके साथ युद्ध करनेमें अुसका सहयोग प्राप्त करनेकी खास जरूरत होती है। अैसा करते हुअे मृत्युको लौटाया न जा सके तो भी बीमारके अंतिम दिनोंमें अुसे सुख-शांति, आशा और प्रेमका वातावरण तो दिया ही जा सकेगा। मैंने कहा कि गंभीर बीमारीमें वैद्य या डॉक्टरकी सलाह और सहायता ली जाय। परन्तु हम सेवक तो गरीबीका व्रत लिये होते हैं। हम गांवोंमें रहते हैं। वहांके लोग भी अत्यंत कंगाल स्थितिमें होते हैं। और अिस जमानेके

वैद्य-डॉक्टर सेवाभावसे काम करनेमें विश्वास नहीं रखते, तथा अुनकी दवाअियां भी सस्ती नहीं होतीं। अिसलिअे चाहें तो भी अुनकी सलाह या सहायताका लाभ हम बहुत थोड़ी मात्रामें ले सकते हैं।

जो अच्छेसे अच्छे डॉक्टर माने जाते हैं, वे ज्यादातर शहरोंमें ही रहते हैं। बेचारे गांव अुन्हें कैसे निबाह सकते हैं? गांवसे कोअी दुःखका मारा अुन्हें बुलाने जाय तो कष्टपूर्ण प्रवास और अुसमें लगनेवाला बहुतसा वक्त, अिन दोनोंका हिसाब लगाकर वे अुससे शहरी ग्राहकोंकी अपेक्षा भी अधिक फीस मांगते हैं। गांवके साधारण लोग अैसे अवसर पर बहुत रोना-पीटना मचाते हैं, रोगीको तड़पता छोड़कर डॉक्टरको बुलाने शहर जाते हैं, अपना बूता न हो तो भी कर्ज करके अुसकी भारी फीस चुकाते हैं और भारी किराया देकर अुसके लिअे गाड़ी या मोटर ले आते हैं। परन्तु गांवकी आबादीमें अैसा कर सकनेवाले मुश्किलसे सौमें दो-चार आदमी ही होते हैं। अधिकांश लोगोंको तो मन मसोसकर ही रह जाना पड़ता है।

सेवक अैसे समय दुखी नहीं होगा। वह जानता है कि अैन वक्त पर कुशल डॉक्टरकी मदद मिल सकने पर रोगियोंको लाभ जरूर हो सकता है, परन्तु यदि यह अुसके बूतेसे बाहरकी चीज हो तो वह अफसोस करने नहीं बैठेगा, बल्कि अुसके हाथमें जो भी अुपाय होगा अुसीमें अपना मन पिरोयेगा। वह जानता है कि बड़ेसे बड़ा डॉक्टर ला सकने पर भी अुसके पांच मिनटके लिअे आ जानेसे और अुसकी कीमतीसे कीमती दवासे भी सब काम पूरा नहीं होता। अुसके बाद भी खुद रोगीको और अुसके सेवकोंको बहुत कुछ करना बाकी रह जाता है। दवा और डॉक्टरकी अपेक्षा रोगीको बचानेकी कुंजी अुनके अपने ही हाथमें अधिक है। अैसा मानकर सेवक तो प्रेम और सेवा करनेमें कमाल कर देगा। रोगीको भी यह देखकर हिम्मत बंधेगी कि दिनरात चिन्ता रखकर अुसकी छोटीसे छोटी जरूरतको देखनेवाला कोअी है। अिससे रोगीका अपना हृदय भी प्रेम और आनन्दमें रहेगा। और अिस आनन्दके प्रभावसे बहुत संभव है वह बच भी जाय।

अंतिम बीमारीमें सगे-सम्बन्धी और डॉक्टर बीमार मनुष्यको अुसकी सच्ची हालतके बारेमें अंधेरेमें रखनेको सयानापन मानते हैं। वे अुसे अनेक झूठी बातें कहकर अिस बातको भुलानेकी कोशिश करते हैं कि मौत नजदीक आ रही है। परन्तु अिसमें कभी किसीको सफलता मिली हो अैसा मैंने नहीं देखा। वे खुद मौतके विचारसे पूरी तरह घबराये हुअे होते हैं और अुनका बोलना-चालना, अुनकी आंखें, अुनका चेहरा, अुनकी अेक-अेक हलचल अिस घबराहटको स्पष्ट बता देती है। रोगी अिसे समझे बिना नहीं रहता, अुलटे वह तो सच्ची हालतसे भी अधिक गम्भीर स्थितिकी कल्पना कर लेता है और मृत्युको भूलनेके बजाय अधिक निराश हो जाता है।

हम सेवक अैसी नीतिमें विश्वास नहीं रखते। हम यह नहीं मानते कि झूठका जाल खड़ा करनेसे किसीको कोअी लाभ हो सकता है। हम नहीं मानते कि अिस तरह किसीको लम्बे समय तक अंधेरेमें रखा जा सकता है। हमें अिसमें समझदारी नहीं परन्तु अुससे अुलटी ही बात दिखाअी देती है।

अपनी बीमारीका सच्चा स्वरूप जाननेसे रोगी हिम्मत नहीं हारता। यदि अुसके आसपास प्रेम और सेवाका स्फूर्तिमय वातावरण रखा जाय तो सच्ची स्थितिको समझनेसे बीमार हमारी सेवा-शुश्रूषामें हार्दिक सहयोग देता है। यदि रोग असाध्य हो तो वह धीरे धीरे अपने मनको अंतिम विदाअीके लिअे तैयार करता है और नासमझ सम्बन्धी यदि घबराहट दिखाते या रोना-पीटना करते हैं तो अुन्हें सांत्वना देता है। अिस प्रकार मनसे तैयार हो जानेके कारण जब अन्तकाल आता है तब वह अितनी शान्तिपूर्वक प्रयाण कर सकता है मानो किसी दूसरे गांव जा रहा हो। अंतिम दिनोंमें सुन्दर सेवा और प्रेम मिलनेके कारण अुसका मन आखिरी समय तक प्रसन्न रहता है। वह अपनेको परम सौभाग्यशाली मानता है। अिस दुनियाके दुःख-दर्द और क्लेश-कष्ट भूलकर अुसके मीठे स्मरण लेकर विदा होता है और अुसका जीवन और मृत्यु दोनों सुधरे, जिसके लिअे सगे-सम्बन्धियोंका अुपकार मानते हुअे तथा परमात्माका यश गाते हुअे अिस लोकसे चल देता है।

बीमारीके सम्बन्धमें सेवकोंके धर्मका विचार करते हुअे संक्रामक रोगोंका भी विचार कर लेनेकी जरूरत है। कोढ़ जैसा भयंकर रोग जब किसी अभागे मनुष्यको लग जाता है तब अुसके निकटतम सम्बन्धी भी डर कर अुसका त्याग करते देखे जाते हैं। अेक ओर अुसके घाव अितनी बदबू मारते हैं कि अुसके नजदीक रहकर सेवा करना कड़ी परीक्षाका काम होता है; दूसरी ओर रोगकी छूत लग जानेका भय भी काम करता रहता है।

गांवोंके लोगोंसे पढ़े-लिखे लोग छूत लग जानेके विचारसे अधिक भयभीत होते हैं। यद्यपि यह छूतकी बात गलत नहीं और अुससे मुक्त रहनेके लिअे समझपूर्वक प्रयत्न करना चाहिये, परन्तु अुससे डर कर रोगीसे दूर भागना तो हमारी मनुष्यताके लिअे कलंक ही है। अुसका रोग अितना कष्टदायक और भयंकर है, अिसी कारणसे तो वह हमारी सेवाका अधिक पात्र है। हमने संबंधीके रूपमें जो प्रेम दिखाया, मित्रके नाते जो स्नेह बताया और सेवककी हैसियतसे सहानुभूतिका जो भाव प्रगट किया, अुसे अुसके सच्चे संकटके समय कायम न रख सकें तो हम झूठे ही साबित होंगे। जो मनुष्य छूत लगनेसे अितना अधिक डरता है, अपने जीवको अितना प्यारा बना लेता है, वह कभी सच्चा मित्र या सच्चा सेवक नहीं बन सकता।

कभी कभी गांवोंमें हैजा और प्लेग जैसे संक्रामक रोग फैल जाते हैं। घर-घर खाटें पड़ जाती हैं और अनेक घरोंमें तो सभी सदस्य अिकट्ठे बीमार पड़ जाते हैं और कोअी किसीको पानी पिलानेवाला भी नहीं रहता। लोग विचार कर सकें और आयी हुअी आफतको समझ सकें, अिससे पहले तो बीमार पटापट मरने लगते हैं; और मरने-वालोंकी सेवा करनेकी बात तो दूर रही, मुर्दोंको अुठाकर ले जानेवाला भी कोअी नहीं रहता। अैसा दृश्य हो जाता है मानो यमराजने अपनी तमाम फौज लेकर गांव पर आक्रमण कर दिया हो।

अैसे समय अच्छे अच्छे लोगोंमें घबराहट फैल जाती है। मौतकी मारसे बचनेके लिअे जिसे जिधर सूझता है वह अुधर भागने लगता है। जिनके पास साधन हों वे गांव छोड़कर भाग जाते हैं, जिन्हें सुविधा हो वे अस्पतालका आश्रय लेते हैं। संबंधी संबंधियोंकी प्रतीक्षा नहीं करते, मित्र मित्रोंको संभालनेके लिअे नहीं ठहरते। और सार्वजनिक सेवक? वे भी बहुत बार झूठे साबित होते हैं और अपने सेवक-धर्मको तिलांजलि देकर प्राण बचानेको भाग जाते हैं।

परन्तु मौतका भय सिर पर सवार होता है तब जैसे लोगोंमें घबराहट फैल जाती है वैसे किसी किसी बहादुरकी छातीमें शौर्य भी स्फुरित हो जाता है। अैसे व्यक्ति निकल आते हैं जो अपनी अथवा अपने परिवारवालोंकी जानकी रक्षाका काम अीश्वरको सौंप कर अैसे समय बीमारोंके पास रहते हैं, अुनकी सेवा करते हैं और मुर्दे अुठाते हैं।

अैसे भयंकर संक्रामक रोग फैल जाते हैं, तब हमारे जैसे सेवकों पर विशेष कर्तव्य आ जाता है। जैसे रोगका आक्रमण सामुदायिक रूपमें होता है, वैसे अुसका सामना भी सामूहिक रूपमें करना जरूरी हो जाता है। सारा गांव घबराहटमें हो और अपने अपने लिअे विचार करनेके सिवा किसीको कुछ सूझता न हो, अुस समय यदि हम सेवक अपना दिमाग काबूमें रखें, साहस और शौर्य धारण करें और गांवके संकटके समय अुसका त्याग न करनेका संकल्प घोषित करें, तो हम गांवका सारा वातावरण बदल सकते हैं। अिससे घबराहटके बजाय लोगोंमें हिम्मत पैदा होगी, भाग-दौड़के बजाय स्वयंसेवकोंके दल बनेंगे, बीमारोंकी अच्छी तरह सेवा-शुश्रूषा होगी, अुसके लिअे कामचलाअू अस्पतालों जैसी कोअी व्यवस्था खड़ी हो जायगी और वैद्य-डॉक्टरोंकी भी मदद आ मिलेगी। अिस प्रकार ठीक समय पर यदि सच्चा सेवक मिल जाय तो भय, पलायन और स्वार्थवृत्तिके बजाय गांवमें साहस, सेवा और संगठनकी भावना पैदा हो जायगी। रोग अपना भोग लिअे बिना तो नहीं जायगा। गांव थोड़ेसे आदमी भले गंवा दे, फिर भी अन्तमें साहस और सेवाका पदार्थपाठ लेकर और अधिक सीधा खड़ा होगा।

अैसा करते हुअे कौन यह कह सकता है कि सेवक हमेशा सही-सलामत रहेगा और अुसे कुछ भी खतरा नहीं होगा? यदि खतरा न हो तो अुसके कामकी कीमत ही क्या?

जोखिम अुठानेमें यदि वह अैसे रोगका शिकार हो जाय तो क्या होगा? कोअी सेवक २०–२५ वर्षसे सेवाका अनुभव लेकर आज परिपक्व हुआ है और हजारों लोगोंको प्रेरणा दे सकता है। क्या अुसे अपना परिपक्व जीवन अैसे खतरेके काममें डाल देना चाहिये? कोअी खादीकार्यका विशेषज्ञ हो गया है, कोअी राष्ट्रीय शिक्षाका विशेषज्ञ बन गया है, किसीके पास अितिहास, साहित्य अथवा विज्ञानका ज्ञान जीवन भरके परिश्रमके फलस्वरूप अिकट्ठा हो गया है। अुसे वह अेक भयंकर महामारीको भेंट चढ़ा दे, यह क्या निरा पागलपन नहीं? अैसे समय सुरक्षित जगह खिसक

जाने और जीते रहकर अपने अनुभवके क्षेत्रमें लम्बे समय तक सेवा करते रहनेमें ही क्या अधिक सच्ची सेवा नहीं है?

और फिर रोगसे जूझना सेवकका मुख्य कार्य नहीं है। मनुष्य अपना मुख्य काम छोड़ दे तो ही वह दोषी ठहरता है; रास्ते चलते जो काम आ पड़े अुसीको हाथमें लेता जाय तो वह कभी निर्दिष्ट स्थान पर नहीं पहुंचेगा और बीच ही में लटक जायगा — अिस तरहकी सलाह देनेवाले अुस नाजुक समयमें बहुत मिलेंगे। सेवकके अपने मनके भीतरसे भी यह आवाज अुठेगी। वह कितनी ही मोहक क्यों न हो, हमें अपने सबसे सच्चे धर्मसे भ्रष्ट करनेवाली है; वह खतरेसे भागनेकी अिच्छासे, मौतके डरसे पैदा हुआी है। अगर हम अैन वक्त पर मौतका खतरा हंसते हंसते अुठानेको तैयार न हो सकें, हानि-लाभका हिसाब लगाने बैठ जायें और अुससे डर कर भाग जायं तो हमारा जीवन निष्फल ही माना जायगा। यही समझना चाहिये कि हमारा सारा ज्ञान, हमारी सारी जानकारी और अनुभव हमारे किसी काम न आया।

बीमारीके समय और मौतके समय भी हम ठीक तरहसे आचरण करेंगे, तो मौतके बाद रोने-पीटनेके रिवाज अपने-आप हमारे लिअे अस्वाभाविक हो जायेंगे, हमें अिस बातका संतोष होगा कि हमने मरनेवालेकी यथाशक्ति सेवा की है और मरनेवाला खुद भी सुख और संतोषके साथ तथा हम सबका अुपकार मानते हुअे विदा लेगा। सदाके लिअे विदा लेना कुटुम्ब या संस्थामें अेक गम्भीर घटना तो होगी ही। परन्तु बीमारीमें हमने सही ढंगसे बरताव किया होगा, तो हमें शोक-प्रदर्शन करना अच्छा नहीं लगेगा। अुस समय तो हम गम्भीर भावसे अन्तरमें गहरे अुतरेंगे, परमेश्वरकी महिमाको अधिक अच्छी तरह समझेंगे और सेवाधर्मके पालनमें अधिक मजबूत बनेंगे।

समाजमें मृत्युके बाद रोने-पीटनेका दिखावा करनेका रिवाज प्रचलित है। आश्रम जैसे स्थानोंमें भी अुसकी छाया प्रसंगोपात्त दिखाअी दे जाती है। सेवक स्वयं ये सब विचार अपना नहीं पाते अथवा अपने सब स्वजनोंके जीवन पर वे अिन विचारोंका प्रभाव नहीं डाल पाते। अैसे समय केवल अुलहना देनेसे, भाषण सुनानेसे अथवा हंसी करनेसे ये रिवाज नष्ट नहीं होते। परन्तु बीमारीके समय जिसने अूपर बताया प्रेम और सेवाका वातावरण देखा होगा, जिसने मरनेवालेको संतोष और आनन्दके साथ विदा लेते देखा होगा, वह स्वयं समझ जायगा कि मरनेके बाद रोने-पीटनेका प्रदर्शन करना अैसे अवसरकी गंभीरताको शोभा नहीं देता। वह अपने-आप समझ लेगा कि बीमारकी खाटके पास व्यर्थकी भागदौड़ और घबराहट दिखाना जितना गलत है, अुतना ही अुसके मरनेके बाद शोक-प्रदर्शन करना भी गलत है।

अितना विचार करनेके बाद अिस बारेमें क्या सचमुच अलग विचार करना बाकी रह जाता है कि हमारी अपनी मौत आ चढ़े तब हम क्या करें, अुसका कैसे स्वागत करें? वह दुःखकी होगी या सुखकी, सूचना देकर आयेगी या अचानक, असमयमें होगी अथवा पूरा समय होने पर होगी, क्या सचमुच अिसकी भी चिन्ता करना रह जाता है? हमें तो विश्वास है कि यदि जीवन अुत्तम प्रकारसे जीना आता है तो मौत भी अुत्तम

प्रकारसे मरना आयेगा ही। यदि जीवन संयमका होगा तो मरण यातनाका नहीं परन्तु आनन्दका ही होगा। यदि जीवन सेवकका विताया होगा, तो मृत्यु भी सेवकको शोभा देनेवाली — अर्थात् रोगशय्या पर नहीं परन्तु आत्म-समर्पण और वलिदानकी ही होगी। हम सच्चे सेवककी तरह, सत्यके आग्रहीके रूपमें जीयें, तो मृत्यु हमारे लिअे अनजान चोर-डाकू जैसी नहीं रहेगी। वह अन्तिम रूपमें आये अुससे पहले तो हम कितनी ही वार अुसके हाथोंमें ताली मार आये होंगे, और अुसके साथ हमने वहुत निकटका प्रेम-सम्वन्ध वना लिया होगा। अुसके वारेमें हमारे हृदयमें किसी प्रकारकी घवराहट नहीं रहेगी।

सच्चा जीवन तव माना जायगा जव हम मौतके डर या चिन्ताको अुड़ा देंगे। 'जीना है तो सिद्धान्तोंकी रक्षा करके ही जीना है; अिसके लिअे किसी भी क्षण मृत्युकी भेंट करनेको तैयार रहना है' — अिस प्रतिज्ञाके साथ जीना ही अुत्तम और सच्चा जीवन है। केवल धोंकनीकी तरह सांस लेना और भट्टीकी तरह भक्षण करना कोअी जीवन नहीं है। सच्चा जीवन तो मौतके साथ खेलते खेलते ही जीना होता है। अन्तमें मृत्यु कव और कैसे आयेगी, अिसकी चिन्ता परमात्माको सौंपकर हम तो निर्भयतासे सेवाका जीवन विताते रहें और अैसा जीवन विताते हुअे मृत्युको अपने प्रिय साथीके रूपमें सदा साथ ही रखें।

प्रवचन ३२

बुढ़ापेके चिह्न

हम वीमारी और मौतका विचार कर चुके हैं। आज हम थोड़ा वुढ़ापेका विचार करेंगे। वुढ़ापेके वारेमें मैं वात करना चाहता हूं अिसका अर्थ आपमें से कोअी अैसा तो नहीं करता कि वूढ़े होने पर भी हम क्या खायें, अथवा वुढ़ापा जल्दी न आने देनेके लिअे कैसी दवाअें ली जायं वगैरा वातें मैं कहूंगा? मैं तो आपको सावधान करना चाहता हूं कि वुढ़ापेका डर मौतके डरसे भी भद्दा है। आपमें से ज्यादातर लोग तरुण हैं, फिर भी वुढ़ापेसे गाफिल रहनेकी वात नहीं है। आपमें से वहुतसे नये ताजे जवान हैं। आपके दिमागमें देशसेवा करनेकी वड़ी वड़ी अुमंगें अुछल रही हैं, आप अुत्साहसे नाच रहे हैं। सेवाके लिअे गांवमें रहेंगे तव वहां कैसी कैसी मुश्किलें आयेंगी, अिसकी वातें कोअी अनुभवी आपसे कहता है तव आप अुत्साहमें अुन्हें हंस कर अुड़ा देते हैं। "अिस नये जीवनमें सत्याग्रह आयेंगे, जेल-यात्राअें होंगी" — अिस तरह कोअी याद दिलाता है, तो अुसे सुनकर आपका खून अधिक गरम होकर दौड़ता है। यह अनुभव तो आप जल्दीसे जल्दी करना चाहते हैं।

कभी कभी आप अपने घर अपने प्रियजनोंके वीच जाते हैं। वहां वे आपको और घवरा देते हैं — "आज तो तू अुगता हुआ जवान है, तुझे साहसके काम करनेका शौक है, आज तुझे भविष्यका विचार नहीं सूझ सकता। परन्तु हमेशा तू अैसा तरोताजा

नहीं रहेगा। कभी न कभी बीमार भी होगा। आज तू किसीके यहां भी पड़ा रह सकता है और कैसा भी खाना खा सकता है, परन्तु यह शक्ति हमेशा रहनेवाली नहीं है। आज तो तू अकेला है, अिसलिअे रोटी मिल गअी कि निश्चिन्त होकर, राजाकी तरह मस्त होकर, घूमता है। परन्तु आगे चलकर तू बाल-बच्चेवाला बनेगा और तुझ पर जिम्मेदारियोंका बोझ बढ़ेगा।"

अिसके सिवा, सगे-संबंधी यह भी कहेंगे: "आज तो हमारे हाथ-पैर चलते हैं। हम रोजगार-धंधा करके घरका खर्च चला सकते हैं और मौका आने पर तेरा भी भार अुठा लेते हैं। परन्तु हमारी शक्ति कब तक बनी रहेगी? अब हम बूढ़े होंगे। यदि तू अिसी प्रकार जीवन बितायेगा और कमायेगा नहीं, तो बुढ़ापेमें तू हमें किस तरह सहारा दे सकेगा? परन्तु हमारी बात जाने दे। तू अपना ही विचार कर। क्या तू खुद भी किसी न किसी दिन बूढ़ा नहीं होगा? आज कमाकर बुढ़ापेके लिअे अगर बचायेगा नहीं तो अुस समय तेरा कौन बेली होगा?"

ये सब सलाहें और चेतावनियां आप सुनते हैं और अुन पर खिलखिला कर हंस देते हैं। सभी सेवक सेवाके क्षेत्रमें नये नये आते हैं तब आपके जैसे ही अुत्साहमें होते हैं। हम सब भी यहां अुत्साहसे ही आये थे, परन्तु आज हमारे अुत्साहका पारा कहां है? आप सबके परिचयमें अधिकाधिक आते जायेंगे तब आपको मालूम होगा कि हमारा पारा अेकसा नहीं टिका। किसीका कम तो किसीका अधिक अुतर गया है।

यदि हमें अपना तरुणाअीका अुत्साह स्थायी रूपसे बनाये रखना हो और दिन-प्रतिदिन बढ़ाना हो, तो अपने जीवनकी मर्यादाअें समझकर अुन पर दृढ़तासे कायम रहना होगा। जो सेवक अैसा नहीं कर सके हैं, अुनके अुत्साह पर जोर पड़ा है और अन्तमें वे अुत्साह-हीन होकर टूट गये हैं।

अपने गृह-जीवनमें विवेक न रखकर समाजके साधारण विचारहीन मनुष्योंकी भांति जो अपना सन्तान-विस्तार बढ़ाते ही जाते हैं, वे लम्बे समय तक यह अुत्साह कायम नहीं रख सकते। अपने निर्वाहकी व्यवस्था वे अपने कार्यक्षेत्रमें कर लेते हों, तो थोड़े ही वर्षोंमें वे देखेंगे कि अुनके बढ़े हुअे खर्चका बोझ दरिद्र गांवका क्षेत्र अुठा नहीं सकता। अपनी जरूरतोंका आंकड़ा सेवकको खुद ही अितना बड़ा लगेगा कि ग्रामवासियोंके सामने रखनेमें अुसे शर्म आयेगी और देर-सवेर बगलमें बिस्तरा दबाकर वह वहांसे चला जायगा।

निर्वाहकी व्यवस्था यदि किसी संस्थाकी तरफसे होती होगी और वह संस्था भी यदि अुसीके जैसी होगी और अुसका बढ़ता हुआ भार कुछ कहे बिना अुठाती रहेगी, तो संस्थाका आर्थिक बोझ बहुत बढ़ जायगा, अुसके महत्त्वपूर्ण कार्यकर्ताओंको सेवाका मुख्य काम छोड़ कर शहरोंमें धनवानोंके दरवाजे भीख मांगनेका धंधा स्वीकार करना पड़ेगा अथवा संस्थाका काम समेट लेना होगा। संस्था अपनी मर्यादा समझनेवाली होगी तो अैसे सेवकोंको कह देगी, "आज तक आपने जो सेवा की अुसके लिअे आपको

धन्यवाद है। परन्तु अब आपका भार बढ़ गया है। अुसे संस्था अुठा नहीं सकती और मजबूर होकर आपको छोड़ती है।"

बच्चोंवाले सेवक बच्चोंकी शिक्षाका प्रश्न खड़ा होने पर यदि अुसे अपनी मर्यादामें रहकर हल नहीं करते, परन्तु साधारण लोगोंकी तरह स्कूल-कॉलेजों और बोर्डिंगोंके खर्च सिर पर ले लेते हैं, तो भी वे अपने लिअे अैसी ही नाजुक परिस्थिति पैदा कर लेते हैं।

अिसी तरह बीमारीके मौकों पर जो सेवक अपनी मर्यादामें नहीं रहते और साधारण लोगोंकी तरह वैद्य-डॉक्टरों और दवावालोंके बिल चुकानेको तैयार होते हैं, अुनके जीवनमें भी आगे-पीछे ग्रामसेवाके कार्यसे अलग हो जानेका अवसर आये बिना नहीं रहता।

जो अपने आहार-विहारमें — रोजाना जिन्दगीमें खुला हाथ रखनेकी आदत डाल लेते हैं, मेहमानोंके आने पर खिलाने-पिलाने वगैरामें संसारका कोअी भी कमाअू सद्-गृहस्थ जिस ढंगसे व्यवहार करता है वैसा ही करते हैं, अुन्हें भी सेवाके क्षेत्रमें थोड़े ही दिनके मेहमान समझना चाहिये।

जो सेवक सगे-संबंधियोंके बीच दूसरे संबंधियोंके जैसा व्यवहार करने लगता है, घर जाने पर अुदार हाथों छोटों-बड़ोंको भेंट देता है, बहन-भानजियोंको कपड़े, गहने आदि देकर खुश करना चाहता है, यह मानता है कि कौटुम्बिक खर्चमें अपना हिस्सा देना चाहि`, कुटुम्बियोंको आग्रह करके अपने पास बुला लाता है और अुनसे खर्च मांगनेमें शरमाता है, वह सेवा-जीवनको छोड़`का ही रास्ता तैयार करता है — भले दुनियवी व्यवहारमें यह सब अच्छा माना जाता हो। अैसा करनेके कारण कितने ही सेवक वर्षोंके सेवा-जीवनके बाद हारकर खानगी धन्धे कर` लगे हैं। किसी सेवकके ज़ीवनका यह कैसा करुण अन्त है!

अिस प्रकार सेवा-जीवन छोड़कर सदाके लिअे हट जानेसे पहले हम अपने विचारोंसे धीरे धीरे खिसकते जाते हैं। अुपरोक्त खर्चीली आदतें डाल लेनेवाले सेवकोंके मनमें कैसे कैसे विचार आने लगते हैं सो अब देखिये:

पहला विचार यह आयेगा: "मुझे अपने कामको पक्की बुनियाद पर खड़ा करना चाहिये। हर साल लोगोंके पास भिक्षा मांगने तथा कोअी कुछ कहे और कोअी कुछ कहे सो सुनते रहनेके बजाय बम्बअी, मद्रास और कलकत्तेका चक्कर लगा आअूंगा और अेक बड़ा कोष अिकट्ठा करके संस्थाको मजबूत बना दूंगा। फ़िर निश्चित होकर व्याजसे काम चलाअूंगा।"

अैसी बात नहीं है कि अिस तरह चन्दा जमा होना बहुत आसान है और यह बात भी नहीं है कि शहरोंमें दाताओंके वाग्बाण सहन नहीं करने पड़ते। तो फिर नजदीकके दाताओंके ही क्यों न सहन किये जायें? वे हमारे कामको प्रत्यक्ष देखते हैं, अिसलिअे सम्भव है अुनकी कटु आलोचनामें हमारे कुछ सच्चे दोष समाये हुअे हों।

दूसरे, अैसे चन्दे जब तक देशमें थोड़ी संस्थायें हैं तब तक शायद मिल जायं, परन्तु ग्रामसेवकोंके लिअे तो हम यह चाहते हैं कि वे देशके सात लाख गांवोंमें बैठें। सात लाखके बजाय वे सात हजार गांवोंमें ही बैठें और सब झोली लेकर शहरोंमें निकल पड़ें तो भी क्या स्थिति हो, अिसका विचार करने लायक है।

और मान लें कि चन्दा करना आसान है, तो भी अपनी स्थिति अैसी मजबूत और सुरक्षित कर लेना, अैसी हालत बना लेना कि हमें जनताकी कोअी गरज ही न रहे, हमारे ग्रामसेवाके कामके लिअे घातक है। अुससे पहले तो हम ग्रामवासियोंसे अलग पड़ जायेंगे और यह मानकर कि हमें अुनकी गरज नहीं है, शायद अुनके साथ हम अधीरता और अुद्धतताका बरताव भी करने लगेंगे। अुन्हें भी हमारे कामके प्रति ममता अथवा आदर न रहेगा। अैसा होना क्या अपने बैठनेकी डाली पर ही कुल्हाड़ी मारना नहीं होगा?

सुरक्षित होनके प्रयत्नमें दूसरे दोष भी हमारे स्वभाव और कार्यप्रणालीमें आये बिना नहीं रहेंगे। पैसेका जोर बढ़ जायगा तो हमारा मन भी झोंपड़ीसे पक्के मकान बनाकर सुख-सुविधाअें बढ़ानेका होगा, अेक आदमीसे काम चलता होगा वहां तीन आदमी रखनेकी अिच्छा होगी, हम अपने रेल-किराये और फुटकर खर्चमें खुला हाथ कर लेंगे। अिसके अतिरिक्त हमें काल्पनिक योजनाअें बनाकर कामका विस्तार करनेका मोह होगा।

अिस प्रकार फण्ड अेकत्र करके संस्थाकी स्थिति सुरक्षित बनानेसे हमारा आराम और कामका विस्तार बढ़ेगा, सच्ची ग्रामसेवा मन्द पड़ जायगी और अेक दिन बिना बुनियादवाले बंगलेकी तरह हमारा यह कृत्रिम ढंगसे बढ़ाया हुआ काम अेकाअेक ढह पड़े तो कोअी आश्चर्यकी बात नहीं होगी।

अब खर्चीली आदतें बना लेनेवाले सेवकोंको दूसरा विचार कैसा सूझेगा यह देखें: "मुझे अपने कुटुम्बियोंका भार तो पूरी तरह अुठाना ही चाहिये और सबको सन्तोष देना ही चाहिये। क्या मैं अितना निकम्मा हूं कि अुन्हें सन्तोष देने लायक भी न कमा सकूं? अलबत्ता, ग्रामसेवाकी संस्थासे मुझे अधिक वेतन नहीं मांगना चाहिये। वहांसे तो मैं नियमानुसार ही लूंगा, अथवा कुछ नहीं लूंगा। मैं अपना सेवाका काम करनेके अलावा कुछ न कुछ सहायक धन्धा करूंगा। मैं चाहूं तो अैसे अनेक अुद्योग ढूंढ़ सकता हूं, जिनमें मुझे थोड़ा समय देना पड़े और फिर भी मेरी व्यावहारिक जरूरतें अच्छी तरह पूरी हो जायें। अुत्तम धन्धा खेतीका है, अिसलिअे मैं वही करूंगा। कोअी अच्छी जमीन ढूंढ़कर खरीद लूंगा। फिर कोअी अच्छी रकम देनेवाला किसान ढूंढ़कर जमीन अुसे दे दूंगा। अिससे न तो मुझे कोअी चिन्ता करनी पड़ेगी और न समयकी कुरबानी देनी पड़ेगी। और घर बैठे आमदनी होती रहेगी। अथवा मजदूर रखकर खुद खेती कराअूं तो भी मुझे अुसमें बहुत दिन नहीं लगाने पड़ेंगे। यह तो अनुभव और होशियारीका ही सवाल है।"

अिस प्रकार सेवक अपनी जानकारी और होशियारीके अभिमानमें होश भूल जाता है। 'अुत्तम खेती' की कहावत पकड़ कर वह भ्रममें पड़ जाता है, परन्तु वह कहावत क्या अैसी खेतीके लिअे लागू हो सकती है? जो खेती समय अथवा परिश्रमकी भेंट चढ़ाये विना घर वैठे आमदनी दे, अुस खेतीको यह कहावत कैसे लागू हो सकती है? सेवकको सोचना चाहिये कि अिस तरह खेतीका धन्धा करनेसे क्या ग्रामसेवकके अेक भी सिद्धान्तकी रक्षा होती है? वह खेतमें कौनसी फसल अुगायेगा? अुसे गांवकी स्थिति सुधारनी है; अिसका अुसमें ध्यान रखा जा सकेगा? वह मजदूरोंके साथ किस तरहका वरताव करेगा? दूसरे किसानोंकी तरह अुनकी मेहनतका लाभ खुद खा जायगा अथवा अुनके लिअे पैदावारका वड़ा भाग रहने देनेकी हिम्मत करेगा? अुसके मनमें तो अव कोअी खानगी धन्धा करनेकी अुमंग पैदा हो गअी है। अिसलिअे अैसे विचार अुसे शायद ही सूझेंगे। अिससे अपने केन्द्रमें ग्रामसेवक और धन्धेके स्थानमें धन्धेदार — अैसा अुसका द्विमुखी जीवन वन जायगा।

किसी सेवकको संबंधियों अथवा मित्रोंका वल होता है, तो अुनके मारफत वह कोअी व्यापार खड़ा कर लेता है अथवा अुनके चलते व्यापारमें कुछ भाग रखवा लेता है। और व्यापार तो व्यापार ही है! अुसमें ग्रामसेवाके सिद्धान्तोंको वाधक होने देना पठितमूर्खका काम माना जायगा। व्यापार शुरू किया फिर तो जैसा मौका और जैसा संयोग हो अुसका लाभ अुठाना ही चाहिये, जिसमें आसानीसे फायदा होता हो वही धन्धा करना चाहिये। यह धन्धा करने लायक है और यह धन्धा करने लायक नहीं है, अितनी वारीकीमें जो जाने लगे अुससे कुछ नहीं हो सकता। पीसने-कूटनेकी मिल लगानेकी सुविधा होगी तो वह मिल चालू कर देगा; फिर अपने केन्द्रमें आकर वहनोंको चक्कियां चलानेका अुपदेश देगा और संभवतः खुद भी पीसने वैठ जायगा! मौका देखेगा तो मिलके कपड़ेकी दुकानमें या रुअीके व्यापारमें हिस्सा रख लेगा और अपने केन्द्रमें खादीका व्रतधारी वनकर फिरेगा! अपने पास पैसेका जोर होगा तो अुसे अैसे शेयरोंमें लगायेगा जिनसे अच्छा व्याज मिले, फिर भले अुस पैसेसे कोअी राष्ट्रके लिअे हानिकारक और गांवके लिअे विघातक धन्धा ही क्यों न चलता हो।

यह न समझिये कि सेवक लाचार होकर जव अैसे धन्धेमें पड़ते हैं तव अुनका मन अन्दरसे दुखता नहीं होगा। जरूर दुखता है। परन्तु व्यवहार तो चलाना ही चाहिये, प्रतिष्ठाका जीवन तो विताना ही चाहिये और अुसके लिअे कमाअी किये सिवा कोअी चारा नहीं — यह खयाल होनेसे वे मन मारकर अैसे धन्धे करते हैं और कभी कभी शर्मके मारे अपने जीवनका यह पहलू सेवाक्षेत्रके साथियोंसे गुप्त रखनेकी कोशिश करते हैं। परन्तु अैसा करनेसे वे दम्भके अपराधमें फंस जाते हैं और अन्तमें लोगोंमें मान-प्रतिष्ठा खोकर सेवक होनेकी अपनी योग्यता भी गंवा देते हैं।

अैसे धन्धे करनेमें पूंजीकी जरूरत सबसे पहले होती है। सेवकको समयकी कुरवानी किये विना कमाना है, अिसलिअे अुसे तो पूंजीके जोर पर ही कूदना होगा। सव सेवकोंके पास वह जोर नहीं होता। अिसलिअे वे आशा ही आशामें कर्ज लेनेको प्रेरित होते हैं।

और लाभवाले व्यापार-धन्धे मिल जाना कोअी सबके लिअे थोड़े ही संभव है? वे मिल नहीं सकते, फिर भी लोक-रिवाजके खर्च तो करने ही पड़ते हैं। अैसे सेवकोंको भी अन्तमें कर्ज करनेके सिवा और क्या सूझ सकता है?

अिस प्रकार कर्जके रास्ते पर अेक बार सेवक लग गया कि अुसमें फंसकर अुसे आगे-पीछे अपने सिद्धान्तोंको और सेवामय जीवन बितानेके संकल्पको छोड़ना ही पड़ता है। कर्ज करनेकी आदत भी अेक तरहका व्यसन है। पहले-पहल अुसमें पड़ते समय मन आनाकानी करता है। परन्तु हम चेत न जायं तो धीरे धीरे अधिकाधिक कर्ज लेनेका साहस होता जाता है।

हमारे किसान अिस आदतमें फंसकर कितने बरबाद हो गये हैं, यह ग्रामसेवकोंसे छिपा नहीं है। अुस आदतसे अुन्हें छुड़ाना हमारे सेवाके कार्यक्रमका अेक महत्त्वपूर्ण अंग है। सेवक खुद ही यदि कर्जका व्यसनी बन जाय तो यह काम वह कैसे करेगा? और कर्जका बोझ अुसे गांवमें कब तक चैनसे बैठने देगा? कर्ज करनेको मनुष्य निर्दोष वस्तु समझता है। 'हमें कहां किसीका रुपया मुफ्त लेना या छीनना है?' अैसी दलीलों द्वारा वह अपने-आपको भुलावेमें डालता है। परन्तु सेवकके लिअे तो कर्ज करना सचमुच अपने धर्मका बड़ा द्रोह ही है।

पैसा कमानेकी लालसा पैदा होनेके कुछ कारणों पर हम विचार कर चुके हैं। अैसा ही अेक कारण है बुढ़ापेका डर। यदि सेवक नित्य नया, नित्य ताजा, नित्य तरुण न रहे, लकीरका फकीर बन जाय, तो वह अपने सिद्धान्तोंमें जरूर शिथिल हो जायगा। और शिथिल होने पर अुसे बुढ़ापेका डर सताने लगता है। अुसे दुर्बलताके क्षणोंमें ये विचार आने लगते हैं: "ग्रामसेवामें तो कभी अेक पाअी बचानेकी आशा नहीं हो सकती। फिर जब बुढ़ापे या बीमारीसे काम करनेकी शक्ति खो बैठेंगे तब हमारा क्या होगा? आज हममें पूरी शक्ति है तब भी जैसे तैसे निर्वाह होता है; लोग आधे खुशीसे और आधे बेमनसे तथा आलोचनाअें करते हुअे पैसे देते हैं। परन्तु अुस समय क्या वे हमें याद करेंगे? हमने सारी जिन्दगी अुनकी सेवामें बिता दी। क्या वे अिसकी कद्र करेंगे? हमने किसी अेक आदमीकी नौकरी की हो तो अुसकी तरफसे कद्रकी आशा रख सकते हैं, परन्तु यह तो सारी प्रजाकी सेवा ठहरी। सबका काम किसीका काम नहीं! और फिर अुसमें हमारे बहुतसे कार्यक्रम अैसे भी होते हैं जिनसे लोग नाराज हो जाते हैं। सचमुच बुढ़ापेका विचार करनेके बारेमें संबंधी लोग जो बात कहते थे वह हंसीमें अुड़ा देने लायक नहीं थी। और अपना ही विचार करके बैठे रहना भी हमारे लिअे अुचित नहीं होगा। हमें कुछ हो जाय तो बादमें स्त्री-पुत्रोंका क्या होगा, अिसका भी विचार न करें तो कहा जायगा कि हमने गृहस्थ-धर्मका पालन नहीं किया।"

आपका मस्तिष्क अैसे विचार-विभ्रममें फंसा कि आप संसारमें चारों ओर चल रहे व्यवहारकी ओर दृष्टिपात करेंगे और भविष्यकी सुरक्षाके लिअे दूसरे धन्धोंवाले और नौकरीपेशा लोग जो युक्तियां आजकल करते हैं वही सब करनेकी आपकी भी अिच्छा होगी। आप सोचेंगे: "मेरी संस्था भले ही सेवाके लिअे स्थापित हुअी हो, परन्तु यह

निरा अन्याय माना जायगा कि वह सेवकको आजकी रोटीके लायक ही दे। हम जैसे सेवकोंकी बीमारी और बुढ़ापेका विचार करके हमें आजकी जरूरतसे ज्यादा देना अुसका कर्तव्य है। और किसी धन्धेकी अपेक्षा हमारी संस्थाओंका यह कर्तव्य अधिक है, क्योंकि हमें देहातमें अनेक असुविधाअें सहकर रहना पड़ता है, वहांके जलवायुमें बीमारीकी संभावना काफी मात्रामें रहती है, हमेशा तंगीमें रहना पड़ता है, काममें भी न दिन-रात देखना होता और न छुट्टी भोगनेका मौका मिलता है, और बहुत बार हमारे हिस्से लड़ाअियोंमें पड़नेकी जिम्मेदारी आनेके कारण जेलके कष्ट भी हमें भोगने पड़ते हैं। अिस प्रकार हर दृष्टिसे शरीरकी घिसाअी दूसरे किसी भी धन्धेसे हमारे काममें अधिक होती है। संस्था वेतनकी रकम निश्चित करते समय अिन परिस्थितियोंका विचार करे, अैसी मांग करनेका हमारा हक है। अुसे वेतनका क्रमिक स्तर निश्चित करना चाहिये, ताकि समय समय पर हमें संचालकोंका मुंह ताकने न जाना पड़े।"

अिसीमें से आगे चलकर अिस विचारकी शाखा अपने-आप फूटेगी: "मुझे जीवन-भर अपना काम करना हो, तो मेरी संस्थाको पेंशनकी कोअी न कोअी योजना क्यों नहीं बनानी चाहिये? यह व्यावहारिक न दिखाअी दे तो अुसे दूसरी किसी धन्धा करनेवाली संस्थाकी तरह प्रोविडेण्ट फंडकी योजना बनानी चाहिये, जिससे मैं अपने वेतनमें से थोड़ी थोड़ी रकम नियमित बचाता रहूं और अुसमें संस्था भी अपना अुचित हिस्सा जोड़ती रहे।"

जिसके विचार यहां तक जायं वह अपनी मृत्युके बाद रहनेवालोंकी सुरक्षाके लिअे बीमा करानेकी समझदारी न दिखाये, यह तो हो ही कैसे सकता है?

ये सारे सुरक्षाके विचार मजबूतसे मजबूत मनोबलवाले सेवकोंको भी जीवनमें समय समय पर आते रहते हैं। ग्रामसेवकोंके जीवनमें भी अैसा प्रसंग आये बिना कैसे रह सकता है? शायद अुनके धंधेकी अस्थिरताके कारण अुन्हें वे अधिक मात्रामें आते होंगे। गम्भीर बीमारियोंके समय मन कमजोर हो जाता है, तब रक्षाका विचार सूझे बिना नहीं रहता। काममें यश न मिले, बढ़-बढ़कर पीछे हटना पड़े, तब भी दिमाग अिस दिशामें चलने लगता है। समय समय पर आनेवाले जेलयात्राके अवसरों पर आश्रितोंकी चिन्ता खड़ी होती है, अुस समय भी अैसे विचार मस्तिष्क पर आक्रमण करते हैं।

कोअी अैसे विचार करे तो व्यवहार-कुशल मनुष्योंको अुसमें कोअी अनुचित बात मालूम नहीं होगी, बल्कि जो न करे अुसे ही वे मूर्ख समझेंगे।

परन्तु आप अिस बातसे सहमत होंगे कि यदि हम सेवक सुरक्षा ढूंढ़ने लगें और व्यवहार-कुशल लोगोंके विचारके अनुसार चलने लगें, तब तो हमें देशकी कुछ भी सेवा करनेकी आशा छोड़ ही देनी चाहिये। हमारा आधार रुपयेकी पूंजी पर, ब्याज पर या बीमे पर नहीं है, परन्तु हमारी अपनी गहरी श्रद्धा पर है। जिस अुत्साहसे आज हम सेवाका जीवन स्वीकार करनेके लिअे आगे आये हैं, वही अुत्साह जिन्दगीके आखिर तक हमें कायम रखना है। आज आप जिस तरह बुढ़ापेकी सुरक्षा और बीमेके विचारोंको सुनकर

तिरस्कारसे अुनकी तरफ हंसते हैं, वैसा ही भाव हमें अंत तक कायम रखना है। हमें अपने सेवाके काममें रस है, हमारा यह विश्वास है कि वह जीवन अर्पण करने लायक काम है। हमें अपनी जनता पर प्रेम है, हमें अपने राष्ट्र पर श्रद्धा है और हमें परमेश्वर पर श्रद्धा है। हमारी यह श्रद्धा ही हमें चाहे जैसी आफतसे बचायेगी। वही हमारी बचाओी हुओी पूंजी और वही हमारा बीमा है।

आप अुत्साही और नये खूनवाले युवक हैं, अिसलिअे आपको श्रद्धाकी यह बात स्वाभाविक प्रतीत होती है। जब अिस पर शंका होने लगे, भविष्यकी सलामती और बीमेके विचार आने लगें, तब समझ लीजिये कि हमारी जवानीका पानी ढलने लगा है और हममें बुढ़ापा घुसने लगा है, फिर भले हमारी अुम्र २५ वर्षकी हो और हमारा शरीर लोहे जैसा मजबूत हो।

बुढ़ापेसे अिस प्रकार डरना किसी भी नौजवानके लिये लांछन जैसा है। और सेवक तो कितना ही बूढ़ा हो जाय फिर भी अुसे अपना मन सदा जवान रखना होगा। हमारा काम कष्टका है, साहसका है, सतत सत्याग्रहका है। परन्तु साथ ही अुसमें निरन्तर नये नये अनुभव और नये नये प्रयोग होते रहनेके कारण वह हमें नित्य नये और नित्य तरुण रख सकता है। परमात्मासे प्रार्थना करें कि हम सदा ताजे तरुण सेवक ही बने रहें। शरीरसे बूढ़े हो जायं तब भी मनसे तरुण ही रहें; हम सलामती ढूंढ़नेवाले बूढ़े कभी न बनें।

प्रवचन ३३

हमारा जाति-सुधार

हम सेवक अपने स्त्री-बच्चों और कुटुम्बियोंके प्रति अपना धर्म किस तरह पालें, अुनकी सेवा किस ढंगसे और किस भावनासे करें, अिस बारेमें हम काफी लम्बाओीसे विचार कर चुके हैं। आज मैं जातिके प्रश्नकी चर्चा करना चाहता हूं।

यहां आश्रममें हम ब्राह्मणसे लेकर भंगी तक सब जातियोंके लोग अेकसाथ रहते हैं और अिस तरह व्यवहार करते हैं जैसे अेक जातिके हों और अेक पिताकी संतान हों। आम तौर पर जिन्हें जातिके बन्धन समझा जाता है — अर्थात् खाने-पीने और छूतछातके बन्धन — अुनका हम सेवक पालन नहीं करते। हम सब देशसेवाके समान ध्येयसे साथ रहनेवाले और साथ मिलकर सेवा करनेवाले हैं। हम छुआछूत तो रख ही कैसे सकते हैं? अेक परिवारके हम सब लोग साथ मिलकर अपने हाथसे खाना बनाते हैं, और साथ बैठकर भगवानका स्मरण करके भोजन करते हैं। अिसमें हम कोओी असाधारण वस्तु करते हैं, अैसा हमें खयाल तक नहीं आता।

कभी कभी जब पुराने विचारोंके कोओी मेहमान आ जाते हैं अथवा ग्रामवासियोंके अपने वृद्ध सगे-सम्बन्धी आते हैं, तभी याद आता है कि हम समाजमें प्रचलित जाति-

व्यवस्थाके नियमोंसे अलग प्रकारका व्यवहार कर रहे हैं। हमारा आचरण देखकर अुन्हें थोड़े दिन तो बड़ी परेशानी होती है।

अेक तरफ वे देखते हैं तो दूसरे जाति-भाअियोंकी तुलनामें हम अपने व्यवहारमें अधिक धर्मबुद्धि रखते जान पड़ते हैं। हम दूसरोंसे ज्यादा संयम और सादगीसे रहते हैं, छल-कपटके काम नहीं करते, पुरानी संस्कृतिके अुत्तराधिकार जैसा चरखा कातते हैं और मोटी खादी पहनते हैं, सत्यके पालनका थोड़ा-बहुत आग्रह रखते हैं, और यद्यपि हम न देवालयोंमें जाते हैं और न संध्या-वंदन या होम-हवनका पुराना ढंग अपनाते हैं, फिर भी श्रद्धासे प्रार्थनायें करते हैं, भजन गाते हैं और गीता-पारायण करते हैं।

दूसरी तरफ वे देखते हैं कि हम सबको छूते हैं और सबके साथ बैठकर खाते-पीते हैं। अुसमें न तो ब्राह्मण-भंगीका जातिभेद है और न हिन्दू, मुसलमान, अीसाअीका धर्मभेद है। परम्परासे चली आ रही जाति-व्यवस्थाके अनुसार तो यह कितना भयंकर पाप है? कैसा घोर अधर्म है?

अुनकी पुरानी समझमें यह बात आती ही नहीं कि अेक तरफ तो अैसा घोर अधर्म और दूसरी तरफ अुपरोक्त काफी निर्दोष जीवन — ये दोनों हममें अेकसाथ कैसे रह सकते हैं; हम अैसे पापके शापसे जल क्यों नहीं मरते? अुनकी पुरानी विचारधाराके अनुसार तो हम शराबी, लम्पट, कपटी और पापी होने चाहिये।

साथ ही, दूसरा भी विचित्र दृश्य अुन्हें देखनेको मिलता है। अुनके सजातीय लोगोंमें हमारे जैसे सेवामार्ग पर लगे हुअे कुछ ही आदमी हैं। अधिकांश तो दुनियामें दुनियाकी रीतिसे जीवन बिताते हैं। अुनमें से ज्यादातर जाति-व्यवस्थाके नियमोंका पालन करते हैं, अथवा गांवमें सगे-सम्बन्धियोंके बीच आते हैं तब तो पालन करते ही हैं। वे खाते समय रेशमी वस्त्र पहनते हैं, अलग अलग जातिवालोंके साथ खानेका अवसर आने पर आड़ी लकड़ीकी पाल बांधकर धर्मकी रक्षा करते हैं। वे हरिजनोंको अपने घरका पाखाना साफ करनेके लिअे भी घरमें आनेकी छूट नहीं देते, फिर अुन्हें छूनेकी तो बात ही कहां रही?

पुराने लोगोंको यह सब सन्तोषजनक मालूम होता है। परन्तु अिस अूपरकी चमड़ीके नीचे देखें तो अुन्हें क्या दिखाअी देगा? बीड़ी-तम्बाकू और अुससे भी गन्दे व्यसनों पर अुन्हें आपत्ति नहीं। वे खाने-पीने और बोलने-चालनेमें कोअी संयम या स्वच्छता नहीं रखते, अुन्हें रोजगारमें सच-झूठकी परवाह नहीं होती। अुन्हें गहने-गांठे और तरह-तरहके कपड़े पहनकर जातिमें दिखावा करनेकी आदत है। घरमें वे स्त्रियोंके साथ, मां-बापके साथ अपमानका, अुद्धतताका और झगड़ेका बरताव करते हैं। अिसके अलावा, पुराने लोग ध्यान नहीं देते, हालांकि वे जानते तो हैं कि ये लोग स्पर्शास्पर्शमें शायद ही कभी जातिके नियमोंका पालन करते हैं।

अिन दोनोंमें से बुजुर्गोंके हृदय किसे आशीर्वाद दें? दूसरे लोग जातिवालोंके बीच आते हैं तब सबके जैसे बनकर रहते हैं और कुलकी प्रतिष्ठा बनाये रखते हैं। मौका देखकर

जातिभोज देकर अुसमें वृद्धि भी करते हैं। यह सब बुजुर्गोंको अच्छा लगता है और अिससे दबकर अुनका अधर्मी आचरण वे सह लेते हैं। हममें धार्मिकता जैसी कोअी चीज है, यह अुनकी आत्मा स्वीकार करती है। अिसलिअे वे हमें शाप नहीं दे सकते। परन्तु हम जात-पांतमें अुनकी अिज्जतको धक्का पहुंचाते हैं, यह अुनसे कैसे सहन हो सकता है? न हमारा व्यवहार सहन होता, न हमें सच्चे दिलसे शाप ही दिया जाता, अिस प्रकार हम दो तरफसे अुन्हें परेशानीमें डालते हैं।

यह तो पुराने चश्मेवाले वृद्धोंकी बात हुअी। परन्तु आपमें जो नये सेवक आश्रम-जीवनका स्वाद लेने अभी अभी आये हैं अुन्हें भी यहां विचारमें पड़ जाने लायक बहुतसी बातें देखनेको मिलेंगी।

यहां छुआछूतमें और भोजनमें जातिभेद नहीं रखा जाता, अितना तो आप पहलेसे जानकर आये हैं। आपके अितने तैयार होने पर भी आपको बहुतसी बातोंमें परेशानी होगी। अैसी कुछ बड़ी बड़ी बातों पर अब हम विचार करेंगे और यह देखेंगे कि हमारी अुन विचित्रताओंके पीछे कोअी न कोअी अूंचा हेतु किस तरह छिपा हुआ है। अितना तो आप देखेंगे ही कि हम जो कुछ करते हैं वह धर्मबुद्धिसे ही करना चाहते हैं। हम सेवकको शोभा देनेवाले ढंगसे जीवन बितानेकी अिच्छा रखकर चलते हैं। अिसमें जाति-भाअियोंको अथवा अन्य किसीको दुःखी या तंग करनेका हमारा हेतु बिलकुल नहीं है, न होना चाहिये। आप यह भी देखेंगे कि हम पुराने लोगोंके बहुत-से रीति-रिवाजोंके पुजारी हैं। हम पिछली पीढ़ीके सुधारवादियोंकी तरह अपनी जाति-व्यवस्थाको और दूसरी तमाम संस्थाओंको निरे जंगलीपनकी निशानियां नहीं मानते। हम सुधारक तो अवश्य हैं, परन्तु पिछली पीढ़ीके सुधारवादी और हम अेक नहीं हैं। फिर भी अूपरसे देखनेवाले लोग हमें अुनकी पंक्तिमें बिठा देते हैं। आपने भी जाने-अनजाने अपने मनमें अैसा किया होगा।

अिन पुराने सुधारवादियोंका सुधार कैसा था? वे तो पश्चिमसे आअी हुअी नयी सभ्यताकी तड़क-भड़कसे अन्धे हो गये थे। अपने देशकी तमाम बातोंसे वे शरमाते थे और पश्चिमकी भली-बुरी प्रत्येक वस्तुका अनुकरण करनेमें ही जीवनकी सार्थकता मानते थे।

वे अपने गोरे गुरुओंसे सीखे थे कि हम भारतीय जंगली और पिछड़े हुअे लोग हैं, जातिभेदों, धर्मभेदों और भाषाके भेदोंसे छिन्न-भिन्न हो गये हैं, और अिसलिअे गौरांग प्रभुओंकी गुलामी करनेके ही योग्य हैं। अुनकी सबसे बड़ी आकांक्षा यही रहती थी कि अिस जंगली समुदायमें से जैसे भी हो अलग हो जायं और हर बातमें गोरे साहबोंकी नकल करके काले साहब बन जायं।

कपड़ोंमें अुन्होंने अपने अर्धनग्न जंगली जाति-भाअियोंका तरीका छोड़कर गोरे साहबोंकी पोशाक पहनना शुरू कर दिया। और यहांकी गरमीमें भी बूट-मोजे और चुस्त कोट-पतलून वगैरासे भुन जाना पसंद किया।

मातृभाषासे वे शरमाने लगे; अपने बच्चोंको बचपनसे अंग्रेजी सिखाने लगे। बाप-बेटा, पति-पत्नी वगैरा अंग्रेजीमें ही बोलने और पत्र-व्यवहार करने लगे। अुनकी पत्नी अंग्रेजी पढ़ी-लिखी न हो तो गोरोंके बीच वे शरमसे आंख अुठाकर भी नहीं देख सकते थे और बूढ़े मां-बापसे तो वे अितने लज्जित होते थे कि कअी बार सभ्य मित्रोंके सामने यह कहकर अपनी अिज्जत बचाते थे कि ये लोग घरके रसोअिये अथवा नौकर हैं।

खान-पानके मामलेमें भी अुन्हें गोरोंके सामने कितना शरमिन्दा होना पड़ता था? मेज़ पर बैठनेके बजाय हमारे लोग जंगलियोंकी तरह जमीन पर बैठकर खाते हैं! छुरी-कांटेके बजाय जंगलियोंकी तरह हाथसे खाते हैं! और सभ्यताके झंडे जैसे मांस, मदिरा तथा चुरुटके प्रति जन्मसे ही घृणा करना सीख लेते हैं! फिर गोरोंका सभ्य समाज अुन्हें अपनी मेज पर स्थान कहांसे दे?

आप देखेंगे कि हम आश्रमवासी सेवक सुधारक हैं और जड़मूलसे सुधार करनेवाले हैं। परन्तु अुन सुधारकोंसे हमारी जाति बिलकुल अलग है। तलवार भी लोहेकी होती है और हल भी लोहेका होता है, परन्तु दोनोंकी जाति तो अलग-अलग होती है न?

जाति-व्यवस्थाके सम्बन्धमें हम किस प्रकारके सुधारक हैं, अुसके पुराने तत्त्वोंमें से किन्हें हम सोने जैसे कीमती मानते हैं और किन्हें रोगके समान, अिसकी थोड़ी तफसीलमें अुतरें।

जातियोंमें अेक जाति अूंची और अेक जाति नीची, अिस पुरानी कल्पनाको हमने छोड़ दिया है। पुराने लोगोंने तो ब्राह्मणोंसे भंगी तककी अूंची नीची जातियोंकी मानो क्रमवार सीढ़ी ही बना दी है। अुसमें कौन किसके हाथका खा सकता है और कौन किसे छू सकता है, अिसका क्रमबद्ध शास्त्र बना लिया गया है! अुस सीढ़ीके निचले छोरकी जातियोंको तो छुआ भी नहीं जा सकता और सबसे आखिरी जातिकी तो परछांअी भी नहीं पड़ने दी जा सकती, अैसी व्यवस्था कर दी गअी है!

सब अीश्वरकी सन्तान हैं — अुनमें अूंचनीचके भेद मानना हमें महापाप दिखाअी देता है। मनुष्य जैसा मनुष्य — अुससे यह कहना कि मैं तुझे छुअूंगा नहीं, तेरे साथ बैठकर खाअूंगा नहीं, तेरे घड़ेका पानी नहीं पीअूंगा, तेरे तवेकी रोटी नहीं खाअूंगा, अिससे बड़ा अपमान अुसका और क्या हो सकता है? तू नीचा और मैं अूंचा, अिस मान्यताके जैसा घोर अभिमान और कौनसा है? लेकिन हम तो सेवाधर्मको स्वीकार करनेवाले ठहरे; हम अभिमान रखें तो सेवक कैसे बन सकते हैं? और किसीका अैसा अपमान करें तो अुसकी क्या सेवा कर सकते हैं?

छुआछूत और खान-पानके रिवाज जाति-व्यवस्थाके अतिरेक हैं। हमने अुन्हें खुल्लमखुल्ला छोड़ दिया है। हम मानते हैं कि जातियां भी अिस मैलको धो डालें तो शुद्ध हो जायंगी।

हमारे व्यवहारसे जातिबन्धु दुःखी होते हैं, क्रोधमें आ जाते हैं। परन्तु हम पहलेके सुधारवादियोंकी तरह न तो अुनके साथ झगड़ा करने जाते हैं और न अुनकी निन्दा करते हैं। वे हमें जाति-बहिष्कृत कर देते हैं तो हम नम्रतासे अुसकी असुविधायें सहन कर लेते हैं, अुनकी सेवा करनेके लिअे सदा तत्पर रहते हैं, और अुनकी तरफसे मिलनेवाले लाभों और सुविधाओंका बलिदान करते हैं। अिसका परिणाम अच्छा आ रहा है। दिन-दिन अुनका रोष कम होता जाता है, हमारे आचरणके प्रति वे अुदार बनते जा रहे हैं और छुआछूत तथा खान-पानके भेदोंके रोग जातिके शरीरमें से भी हटते जा रहे हैं।

प्रवचन ३४

सच्चा वर्ण-धर्म

जाति-व्यवस्थाके अनेक तत्त्वोंके विरुद्ध हमने विद्रोह किया है, परन्तु धंधोंके बारेमें जातियां जिस सिद्धांत पर जोर देती हैं अुसे हम अन्तःकरणपूर्वक शिरोधार्य करते हैं। वह सिद्धान्त क्या है? "बेटा बापका धंधा करे। अधिक रुपया कमानेके लोभमें दूसरी जातियोंका प्रतिद्वंद्वी बनने न दौड़े।"

खूबी तो देखिये कि जो लोग खाने-पीने और छुआछूतके जातिधर्मका पालन करनेमें बड़े कट्टर दिखायी देते हैं, वे जातिके अिस मूल धर्मका पालन करनेकी जरा भी परवाह नहीं करते; और हम जो जातिप्रथाके विरुद्ध विद्रोह करनेवाले माने जाते हैं वे अुस पर मोहित हैं।

रुपयेका लोभ यदि जातिबंधुओंमें निन्दाका पात्र माना जाता हो, अुससे दुनियामें अिज्जत-आबरू बढ़ती न हो और जातिका धंधा करते हुअे स्वाभिमानपूर्वक गुजारा हो जाता हो, तो मनुष्य चाहे जिस धंधेके पीछे क्यों पड़े? क्यों दूसरोंके धंधोंमें हिस्सा बंटाने जाय? क्यों अपने धंधेमें धोखा-धड़ी या मिलावट करे? क्यों दूसरे लोगोंको चूस कर खुद अुनकी मेहनतका फल चुराये?

किसी वणिकको रुपयेका लोभ होता है तो वह अेक जगहका माल दूसरी जगह लाने ले जानेका अपना जातिधर्म छोड़कर जुलाहोंके धंधेमें हाथ डालता है। वह खुद करघे पर बैठता और अपने दोनों हाथोंसे बुनता तब तो हमें बहुत अेतराज न होता; हम यह मान लेते कि गांवमें अेक और जुलाहा पैदा हो गया। परन्तु वह तो सैकड़ों जुलाहोंको अिकट्ठा करके अुनके हाथोंके द्वारा कपड़ा बुनता है, मिल खोलकर हजारों मजदूरोंके हाथोंसे कातता है, पींजता है और बुनता है, और अुनके परिश्रमके फलका शोषण करता है।

कोअी किसान रुपयेके लोभमें पड़ता है तो खेतीका जातिधर्म छोड़कर व्यापार करने लगता है। अुसके घरमें किन चीजोंकी जरूरत है अिसका विचार छोड़कर वह यह देखता है कि बाजारमें किस चीजके खूब पैसे पैदा होते हैं और फिर अुसे पैदा करनेके लिअे सैकड़ों मजदूरों और बैल-जोड़ियोंका पसीना बहाकर अुन्हें निचोड़ लेता

है। लोभकी कोअी सीमा नहीं होती। अिसलिअे वह गांवकी जमीनको अपने हाथमें करनेसे हिचकता नहीं और खुद परिश्रम करनेवाले किसानको भूमिहीन बना देता है। पैसावाला हो तो ट्रेक्टर जैसी मशीनें लाकर अुन्हें बेकार कर देता है। यह जाति-धर्मका कितना भयंकर द्रोह है? अैसे थोड़ेसे लोभी गांवमें निकल आते हैं तो गांवके किसानोंको किसान न रहने देकर मजदूर बना देते हैं, जातिका धंधा करके आनन्द करनेवाले मोहल्लोंके मोहल्लोंको बेकार और दरिद्र बना डालते हैं, और अुन्हें पेट भरनेके लिअे जहां तहां भटकनेवाले बना देते हैं।

आज जुलाहोंके मोहल्ले देखिये, रंगरेजोंकी वस्तियां देखिये, मोचियों और चमारोंके मोहल्ले देखिये। पैसेके लोभियोंने सबको अुजाड़ दिया है। बकरोंके बीचसे शेर निकल जाता है या मुर्गोंके बीचसे गीदड़ निकल जाता है तो भी अितना नाश नहीं होता। वे अेक या दो प्राणियोंको अुठाकर भाग जाते हैं; वे घबराहट फैलाते हैं परन्तु वह थोड़ी देरमें मिट जाती है। लेकिन पैसेके लोभियोंने अैसी स्थिति पैदा कर दी है मानो लोगोंके बीच रोग फैल गया हो और अुसने सबको खतम कर डाला हो।

सच पूछें तो जातियोंको हम खान-पानका धर्म छोड़नेवालोंने नष्ट नहीं किया है। परन्तु अिस धंधेके धर्मको आग लगानेवाले लोभियोंने ही अुनका सत्यानाश किया है।

अब हम जातिके महाजनों अथवा पंचायतोंकी संस्थाका विचार करें। आजकल सरकारी अदालतोंके कानून चल पड़े अिसलिअे अुनका बल घट गया है। अुनकी आज्ञाको लोग पहलेकी तरह नहीं मानते। फिर भी बहुतसी जातियोंमें यह संस्था अपने सदस्यों पर जबरदस्त हुकूमत चलाती है। रोटी-व्यवहार अथवा बेटी-व्यवहारके चले आ रहे कानूनको कोअी तोड़ता है, तो ये पंचायतें जाति-बहिष्कारका शस्त्र अुठाकर अुसे वशमें करती हैं। जातिभोज देनेके अवसर पर यदि कोअी अपना कर्तव्य पालन न करे और जाति-भाअियोंके मिष्टान्नके हकको मार दे, तो अुसे भी सजा देकर ये ठिकाने लाती हैं।

परन्तु अत्यन्त बलवान पंचायतें भी अपनी सत्ताका अिससे अधिक अुपयोग करती नहीं देखी जातीं; और काममें ली जानेवाली यह सत्ता भी पेटमें सोनेकी कटारी मारने जैसी है। कोअी आर्थिक दृष्टिसे कमजोर हो गया हो और जातिके लोगोंको भोज न दे सके, तो अुसकी रक्षा करनेके बजाय पंचायत अुसे दबाती है, अुसे घरबार बेचनेको मजबूर करती है। अैसी सत्ताका और किस तरह वर्णन किया जाये?

जातीय पंचायतोंकी सत्ताके शुभ मार्गमें अुपयोग होनेके आजकल बहुत ही कम अुदाहरण देखे जाते हैं। शराब और ताड़ी पीनेवाली जातियोंकी तरफसे कहीं कहीं अिस व्यसनके विरुद्ध बंधन लगानेकी घटनाअें हुअी हैं। सरकारके अन्यायके विरुद्ध कर-बन्दीके सत्याग्रह जैसी लड़ाअियां छेड़ी गयीं, तब किसान जातिने जातीय विधानका अुनमें काफी अुपयोग किया था।

परंतु जातिसत्ताका अैसा स्वरूप तो तभी देखनेको मिलता है, जब जातियोंके भीतर राष्ट्रीयताकी भावनाका संचार हो और नये खूनवाले लोग संकुचित और तमोगुणी पंचायतोंकी परवाह न करके अुनके खिलाफ सिर अुठायें। देशमें राष्ट्रीय वातावरण जमता है तब ज्यादातर तो पुरानी जातीय पंचायतें अुससे चौंककर दूर ही रहना पसन्द करती हैं। फिर भी गन्नेके साथ अेरंडको भी पानी मिल जाता है, अिस न्यायसे जातिकी पंचायतों पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। वे शादी-गमीके खर्चके रिवाजों, लेने-देनेके रिवाजों वगैरामें हलके हलके सुधार करके यह दिखानेका प्रयत्न जरूर करती हैं कि वे जीवित हैं।

परन्तु जातियोंमें सच्चा जीवन आ जाय तो अुनकी पंचायतें कैसे अच्छे अच्छे काम कर सकती हैं? वे अैसा अुच्च वातावरण पैदा कर सकती हैं कि रुपयेका लोभ करके जातिका धंधा छोड़नेवाले मनुष्य लोकलाजसे मरने जैसे हो जायं। जातिमें कोअी अनाथ हों तो अुनके नाथ बनकर अुन्हें रास्तेसे लगा सकती हैं, अपंगोंका पालन-पोषण कर सकती हैं। वे जातिके धंधेके विरुद्ध कोअी प्रतिद्वन्द्वी खड़ा हो जाय तो अुससे टक्कर लेकर जातिकी रक्षा कर सकती हैं। गांवके लोग अबुद्धिसे अथवा सस्ते मालके लोभमें पड़कर विदेशी या बाहरका माल लाने लगें और अपनी जातिको प्रोत्साहन देनेका राष्ट्रधर्म भूल जायं, तो पंचायतें जातिकी तरफसे पुकार अुठा सकती हैं, लड़ सकती हैं, सत्याग्रह छेड़ सकती हैं। साथ ही वे अिस बातकी भी सावधानी रख सकती हैं कि कोअी आदमी जातिके धंधेमें मिलावट और धोखा करके अुसकी प्रतिष्ठाको हानि न पहुंचाये।

अिसके सिवा, जातिके लोग आजकल जातिके जो धंधे करते हैं वे केवल यांत्रिक ढंगसे करते हैं। अिसलिअे बाप जितना जानता है अुससे लड़का कुछ कम ही जानता मालूम होता है। पंचायतें सजीव हों तो अपने धंधोंके शास्त्रका विकास कर सकती हैं, अुनमें कलाका विकास कर सकती हैं, संशोधन कर सकती हैं, शास्त्रीय शिक्षा देनेकी व्यवस्था कर सकती हैं — सार यह कि अपने धंधेमें बुद्धि लगाकर अुसकी प्रगति कर सकती हैं, और अिस प्रकार अपने धंधेके बारेमें जातिके बालकोंमें प्रेम और अभिमान पैदा कर सकती हैं।

जातिके बालक केवल जातिका धंधा सीखें, यहीं न रुककर ये पंचायतें अुन्हें सुन्दर सर्वांगीण शिक्षा देनेकी भी योजना बना सकती हैं। किसानोंके लड़के हल चलाना जानते हों तो भी अुन्हें आजकलके पढ़े-लिखे लोगोंके सामने नीचा देखना पड़ता है। कुम्हार और चमारके लड़कोंको अपने धंधे आते हों तो भी पढ़े-लिखोंकी बातें वे नहीं समझ सकते और शरमिन्दा होते हैं। अिसका और क्या परिणाम हो सकता है? जातिके बच्चों पर यही असर पड़ता है कि अुनके धंधे ही बुद्धिको जड़ बना देनेवाले और अप्रतिष्ठित हैं। असलमें अुन्हें अपने धंधेकी भी पूरी शास्त्रीय शिक्षा नहीं मिलती, तो फिर सर्वांगीण विशाल शिक्षाकी तो बात ही क्या की जाय? अैसी स्थितिमें जातिके बच्चे जातिके धंधे छोड़ दें, दुनियामें प्रतिष्ठित माने जानेवाले

धंधोंकी तरफ झुकें और जातियोंको नाशकी ओर ढकेलें तो कोअी आश्चर्य नहीं? पंचायतोंमें प्राण हो तो वे अिस नाशको रोककर जातिकी और अुसके धंधेकी प्रतिष्ठा बढ़ा सकती हैं।

कुछ धनिक जातियोंमें आजकल जातिके बच्चोंकी शिक्षाके लिअे कुछ प्रयत्न करनेका अुत्साह पाया जाता है। भाटियों, बनियों और पाटीदार वगैरा जातियोंमें बड़ी-बड़ी शालाअें और छात्रालय बनाकर अुनका लाभ जातिके बच्चोंको मुफ्त या सस्तेमें दिया जाता है। ये जातियां जातिके बच्चोंकी शिक्षाका कर्तव्य-पालन करनेका दिखावा करती हैं और अपने मनमें अिसका संतोष मान लेती हैं।

यह दिखावा और संतोष कितना झूठा होता है? प्रथम तो अैसी जातियां जो धंधे करती हैं अुनमें मूल जातिधर्मका केवल द्रोह ही होता है। जाति और राष्ट्र दोनोंके कल्याणका अुनमें कोअी विचार नहीं होता। अेकमात्र विचार धन कमानेका होता है। विदेशी कपड़े वगैरा चीजोंका व्यापार देशको गुलाम बनानेवाला होने पर भी वे अुसे नहीं छोड़तीं। अनेक जातियोंके धंधोंका अपहरण करनेवाले कारखाने खोलनेमें अुन्हें कोअी आपत्ति नहीं होती। और फिर वे सट्टे और जुअेको अिज्जतका धंधा मानती हैं। पंचायतोंकी धर्मबुद्धि जाग्रत हो तो वे अपने लोगोंको अैसे धर्म-विरोधी और राष्ट्र-विरोधी धंधे कभी न करने दें।

फिर अेरणकी चोरी करके जो सुअीका दान दिया जाता है अर्थात् केवल जातिके लिअे ही संस्थाअें खोली जाती हैं, अुसमें भी बिलकुल संकीर्ण दृष्टि पाअी जाती है। वास्तवमें वे जिन अनेक जातियों, लोगों और गांवोंसे धनके स्रोत अपनी तिजोरीमें लाती हैं, अुन सबका अुनके धनमें हिस्सा होता है, और अुन सबको अपनी संस्थाओंका लाभ देना अुनका फर्ज है।

अेक तीसरी दृष्टिसे भी मुझे अिसमें बड़ा दोष दिखाअी देता है। अुनकी संस्थाओंमें जातिके सच्चे धंधेकी शिक्षा देनेका प्रबंध नहीं होता। परन्तु सच्चे धंधेका नाश करनेवाली, धन और असंयमका रंग लगानेवाली अराष्ट्रीय शिक्षा ही अुनमें दी जाती है।

अब यदि जातीय धंधोंके बारेमें हम अैसे विचार रखते हैं और अुन्हें जाति-धर्मका गौरवपूर्ण नाम देते हैं, तो हम सेवक अपनी अपनी जातियोंके धंधोंमें क्यों नहीं लगे रहते?

पहली बात तो यह है कि जब देशमें गुलामीका दावानल फैला हुआ हो तब अुसे बुझानेके लिअे प्रत्येक जाति, संस्था या व्यक्तिको अपने काम-धंधे छोड़कर दौड़ आना चाहिये। हमने धनके लोभके कारण, हमारा घरका धंधा — खेती, कारीगरी या जो भी हो — लोगोंमें हलका माना जानेके कारण अथवा हमारे कामचोर शरीर अुसकी मेहनतसे बचना चाहते हैं अिस कारण नहीं, परन्तु देशका कार्य करनेके अुद्देश्यसे ही, अपनी जातियोंके धंधोंसे छुट्टी ली है। हमने सारा जीवन और सारी शक्ति देशकी सेवामें अर्पण कर दी है।

जातियोंमें प्राण होते तो वे ज्ञानपूर्वक अपने बालकोंका दान देशके चरणोंमें करतीं। आज अुनमें वह शक्ति नहीं है। बहुत बार तो वे यह मान लेती हैं कि हमारा देशकार्यमें लगना भी जातिके प्रति पाप करनेके बराबर है। फिर भी हम मानते हैं कि हमारी देशसेवा सब बातोंको देखते हुअे जातियोंको भी अूपर अुठाती है। जिन जातियोंमें से अधिक लोग विशाल देशकार्यमें लगते हैं और बलिदान देते हैं, अुन जातियोंका वातावरण राष्ट्रीय बन जाता है और वे अनेक सुधार अनायास कर लेती हैं। अिस प्रकार हम जातिसे निकले हुअे लगें पर भी अप्रत्यक्ष रूपमें अुसकी सेवा ही करते हैं।

और, हम सेवकोंका मुख्य कार्य क्या है? हमारे गांवोंके नष्ट हो चुके अनेक धंधोंको सजीव करना। पश्चिमके व्यापारी भयंकर राज्यबल और यंत्रबलके साथ हमारे देश पर चढ़ आये। अिस चढ़ाअीमें अेक भी जाति या अेक भी अुद्योग जीवित नहीं रह पाया। भागती हुअी सेना जैसे जान बचानेको जहां जी चाहे वहां छिप जाती है, वैसे ही लोगोंने जिसके हाथ जो धंधा लगा वह पकड़ लिया है। कुछ लोग अुन विदेशी व्यापारियोंके और अुनकी सरकारके दलाल बन गये हैं। परन्तु अधिकांश लोग तो अपने धंधे और धर्म खोकर दरिद्र और जड़ बन गये हैं। आज अैसी स्थिति हो गअी है कि जातिके धंधेसे चिपटा रहनेवाला भूखों मरता है। सारी जाति-व्यवस्था शिथिल हो गअी है। अपनी अपनी जातिके धंधे करते हुअे अनेक जातियोंके मोहल्ले आनन्द किया करते थे, लेकिन आज वे अुजाड़ हो गये हैं। अपने धंधेसे दाल-रोटी मिलनेमें संतोष माननेवाला जाति-स्वभाव मिट गया है। हमारे लोग जो चीज पैदा करें अुसीसे काम चला लेनेका स्वदेशी धर्म लोगोंमें लुप्त हो गया है। मेहनतसे हाथोंकी चमड़ी कड़ी न पड़े और कपड़ोंको दाग न लगें, अैसे अप्रामाणिक और स्वाभिमानको बेचनेवाले धंधोंके लिअे लोग स्पर्धा करने लगे हैं। सबको व्यापारी बनना है। सबको बड़ी बड़ी तनखाहें पाना है। परन्तु अिसमें सभी सफल हो जायं तो सरकारके सगे-संबंधी क्या करें? अधिकांश लोगोंको तो जातिके धंधोंकी अपेक्षा भी सख्त मेहनत करनी पड़ती है, अुनके कपड़े भी भूतोंकी तरह रंग जाते हैं और जाति-व्यवस्थासे जो सुख-संतोष अुन्हें मिलता था वह अब सपनेमें भी देखनेको नहीं मिलता।

आजकल लोग अपना परिचय 'मैं अमुक जातिका हूं' कहकर देते हैं। परन्तु जातिधर्म रहा कहां है? जातियोंका पूरी तरह संकर — मिश्रण हो गया है। पुरानी जातियोंके तो नाम ही शेष रह गये हैं। असलमें आज अजीब अजीब नये धंधे निकले हैं और अुनकी नअी जातियां बन गयी हैं। अिन्सानको जिसमें जड़ मशीनोंकी तरह अथवा बिना सींग-पूंछके बैलकी तरह काम करना पड़ता है, अैसी अनेक प्रकारकी मजदूर-जातियां निकल आअी हैं। मनुष्य-जातिकी प्रतिष्ठाको गिरानेवाली तरह तरहकी कारकुनी जातियां भी पैदा हो गअी हैं।

अैसी स्थितिमें पुराने विचारके लोगोंकी तरह हम थोथे जाति-अभिमानसे कैसे चिपटे रह सकते हैं? हमारे जैसे सेवकोंका आज अेक ही धर्म है — विदेशी व्यापार और

अुसे देश पर थोपनेवाले विदेशी राज्यके विरुद्ध युद्ध करना। हमने स्वदेशी और स्वराज्यके धर्मोंको देशमें फिरसे स्थापित करनेका सैनिक धर्म अपनाया है। आज तो वही हमारी जाति और वही हमारा धर्म है। अुसमें हम विजय प्राप्त कर लेंगे तब देशके गांवोंमें और अुद्योगोंमें नया जीवन आयेगा और जातियोंकी रचना फिरसे सही आधार पर होगी।

अिस अर्थमें हम किसी भी जातिके हों, तो भी जो धंधे सच्चे राष्ट्रीय हैं, जिनका नाश होनेके साथ राष्ट्रके प्राण निकल गये हैं, अुन खादी और ग्रामोद्योगोंमें हम लगे हुअे हैं; हम खुद अिन्हें सीखते हैं और लोगोंमें भी फैलाते हैं, अुनकी प्रतिष्ठा बढ़ाते हैं और अुनके शत्रुओंसे जूझते हैं।

अिस बीच आप देख सकेंगे कि जाति-व्यवस्थामें घुसा हुआ अेक भयंकर जहर निकालनेका भी हम प्रयत्न कर रहे हैं। अमुक धंधा मैला और अमुक अुजला है और अुसके कारण अमुक जाति अूंची और अमुक नीची है — यह विचार ही वह जहर है। हम सब राष्ट्रीय धंधोंको समान आदरके साथ करके अिस जहरको निकालनेकी कोशिश कर रहे हैं।

जुलाहेका पेशा संस्कारी निःस्वार्थ सेवकोंने अपना लिया है, अतः अब जुलाहा नीचा और अछूत रह ही नहीं सकता।

हलकेसे हलका काम भंगीका माना जाता है। वह भी हमने अपना लिया है। वह काम स्वच्छ, सरल और सुन्दर ढंगसे कैसे किया जाय, अिसकी कलाका हम विकास कर रहे हैं। छोटी बुद्धिके लोग डरते हैं कि अिससे भंगी सिर पर चढ़ जायेंगे, मैला काम करनेसे अिनकार कर देंगे, अुन्हें तो अज्ञान और दलित ही रखनेमें समाजका हित है। हमारी दृष्टिसे यह अत्यन्त पापपूर्ण कल्पना है। पाखाने साफ करनेके कामको समाजमें सबको पवित्र मानना चाहिये, अुससे घृणा न करनी चाहिये। भंगी स्वच्छ बन जायं और अुसे करनेसे अिनकार कर दें, तो भी हमें परेशानीमें पड़नेकी जरूरत नहीं होनी चाहिये। मेरी मान्यताके अनुसार हमारे समर्थनके कारण भंगी काम करनेसे शायद अिनकार नहीं करेंगे, परन्तु अपने कामके बारेमें शर्तें जरूर सामने रखेंगे। वे यह शर्त अवश्य रखेंगे कि पाखाने बड़े और हवादार होने चाहिये। अुनमें बाल्टी वगैरा सामान वे अच्छा मांगेंगे। वे यह भी कहेंगे कि हम बिगाड़े बिना अुनका अिस्तेमाल करने और मिट्टी डालने या ढक्कन ढांकनेकी सभ्यता सीखें। वे पानीकी काफी मात्राके बिना काम नहीं करेंगे और यह शर्त भी रखेंगे कि जब वे काम करें तब हम अुनकी मदद पर रहें। अन्तमें वे पशुकी भांति सिर पर मैलेकी टोकरी अुठानेको हरगिज तैयार नहीं होंगे, परन्तु अिसके लिअे सुविधावाली गाड़ियोंकी मांग करेंगे।

नीचेसे नीचे माने जानेवाले धंधोंकी और अुनके जरिये जातियोंकी प्रतिष्ठा बढ़ानेका सही रास्ता यही है कि अुन धंधोंको प्रतिष्ठित लोग करने लगें। हम सेवकोंने यह रास्ता अपनाया है। अिसलिअे हम देशमें यह परिणाम आया हुआ और आता हुआ प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

प्रवचन ३५

सुधारकका कन्या-व्यवहार

अब जातियोंके संबंधमें मुझे अेक ही विषयकी चर्चा करनी है। वह है वर-कन्या-व्यवहारका। जातियां भोजन-व्यवहारकी तरह अिसे भी अपना खास विषय मानती देखी जाती हैं, और कुछ अच्छे परन्तु अधिकांश हानिकारक नियम बनाकर वे अत्यन्त कठोरतासे जातिके लोगों द्वारा अुनका पालन कराती हैं।

जैसे सब जातियोंमें अूंच-नीचकी सीढ़ियां बना दी गअी हैं, वैसे प्रत्येक जातिके भीतर भी अूंचे कुल और नीचे कुलकी सीढ़ियां बना दी गयी हैं। शहरके निवासी, अमीर और राज्याधिकारी जातिमें अूंचे माने जाते हैं। अैसे अुच्च कुलवालोंके यहां कन्याअें देनेके लिअे जातिके लोग आपसमें स्पर्धा करते हैं और बूतेसे बाहर दहेज देनेको तैयार होते हैं। अिस प्रकार वर-विक्रयका भद्दा रिवाज पड़ जाता है। और अुच्च कुलके वर थोड़े ही मिलते हैं, अिसलिअे अेक वरको बहुतसी कन्याअें व्याह देनेका रिवाज भी चल पड़ता है। दूसरी ओर जो लोग नीचे कुलके माने जाते हैं, अुन्हें कन्याओंकी हमेशा कमी पड़ती है। मां-बाप बड़ी रकमें मिलें तो ही अुन्हें अपनी कन्याअें देते हैं। यह हुआ कन्या-विक्रयका रिवाज।

जातिके पंच अुच्च कुलवाले होते हैं, अिसलिअे वे भला अिन रिवाजोंके खिलाफ कैसे हो सकते हैं? परन्तु जातिका नीचा माना जानेवाला वर्ग कभी कभी विद्रोह करता है, कुलीनोंसे अलग हो जाता है और अपनी अलग चारदीवारी बनाकर अुसमें वर-कन्या-विक्रयका रिवाज बन्द करता है। अैसे विद्रोहसे थोड़ा क्षणिक संरक्षण जरूर मिलता है, परन्तु वह जड़का नहीं, डाल-पत्तियोंका ही सुधार होता है। अुसमें अेक संकट मिटाने जाते हैं तो दूसरा नया ही संकट आ पड़ता है। वह यह कि अुपजातियां बहुत ही तंग बन जाती हैं। अधिकांश तो आजकल सौ-दो सौ कुटुम्बोंकी टोलियां ही बन गअी हैं। कभी कभी दो-चार गांवों तक अथवा अेक गांव तक ही अुनकी हद बंध जाती है। अिससे वर-कन्याके चुनावके लिअे विशाल क्षेत्र नहीं मिलता, आपसमें अदला-बदली होने लगती है और कअी जातियोंमें तो ससुराल और पीहर आमने-सामनेके घरोंमें ही हो जाते हैं। यह सब वंशशुद्धिकी दृष्टिसे अत्यंत हानिकारक है।

जातियोंकी सारी रचना अूंच-नीचके भेदों और मिथ्याभिमान पर ही हुअी है। अिसीमें से कुछ और भी भयंकर और मनुष्य-जातिका नाश करनेवाले रिवाज चल पड़े हैं। अुच्च कुलोंका बड़ा अभिमान यह होता है कि अुनके लड़के तो पालनेमें से ही कन्याके व्याहके लिअे पसन्द कर लिये जाते हैं। यह हुआ बाल-विवाहके रिवाजका मूल। अुनका दूसरा अभिमान यह है कि हमारी लड़कियां विधवा हो जाने पर सारी अुम्र पवित्र वधव्यका व्रत पालती ह, हलके कुलों या जातियोंकी लड़कियोंकी तरह

किसीके घर नहीं बैठतीं। यह हुअी बाल-विधवाओंके दुःखी और अपमानित जीवनकी बुनियाद।

आजकी जाति-व्यवस्थाके वर-कन्या-व्यवहारमें अेक भी अैसा अच्छा तत्त्व नहीं है, जिसका हम सेवक वफादारीसे पालन कर सकें। हम सेवक और सुधारक न हों और अपने लड़के-लड़कियोंके हितकी चिन्ता रखनेवाले साधारण मां-बाप हों, तो भी जातिके अैसे रीति-रिवाजोंको अपना धर्म समझकर हम कैसे मान सकते हैं? कोअी भी अच्छे और अपना पितृधर्म समझनेवाले मां-बाप अपने पुत्र-पुत्रीका बाल-विवाह करके बड़प्पनके खातिर अुनके जीवनकी शिक्षा पर कुठाराघात कभी नहीं करेंगे। पुत्र-पुत्री बालिग और अच्छी शिक्षा पाये हुअे हों, तो विवाह जैसे जीवनके महत्त्वपूर्ण विषयमें मां-बाप अुनकी अिच्छाका स्वाभाविक रूपमें ही पर्याप्त आदर करेंगे। वर-कन्याके चुनावमें मां-बाप अपनी सलाह दें तो वह भी अूंचे-नीचे कुलकी तथा दहेज वगैराकी गलत दृष्टिसे नहीं देंगे, परन्तु सशक्त नीरोग शरीर और धंधेकी कुशलताकी दृष्टिसे ही देंगे। खास तौर पर अैसे मां-बापकी यही दृष्टि रहेगी कि अपने पुत्र-पुत्रीको जिस ध्येय और आचार-विचारकी शिक्षा दी गअी है अुससे मिलती-जुलती शिक्षा पाकर बड़े हुअे साथी ही अुन्हें मिलें।

हम आश्रमवासी सेवक अिस सिद्धान्तके अनुसार ही चलते हैं, या हमें चलना चाहिये। आज अधिकांश सेवक बाल-विवाहसे तो मुक्त हो गये हैं। विक्रयके रिवाजसे भी ज्यादातर लोग छूट गये हैं। परन्तु मुझे अभी तक अैसी स्थिति नहीं दिखाअी देती, जिसमें हम छाती ठोक कर कह सकें कि सभी अुच्च कुलकी तरफ दृष्टि नहीं दौड़ाते। हमारा आदर्श सेवा, शरीर-श्रम और गरीबीका होते हुअे भी कन्याके लिअे पैसे-टकेसे सुखी और आरामदेह घर ढूंढ़नेके बारेमें हमारा आकर्षण नहीं रहता, अैसा बहुतसे सेवक नहीं कह सकते।

फिर भी, अितने सुधार तो मामूली ही हैं और अुन्हें जातियां सहन कर लेती हैं। परन्तु सेवक यदि सही तौर पर व्यवहार करनेके आग्रही हों तो अुन्हें अिससे भी आगे बढ़ना पड़ेगा।

हमारे लिअे जातिकी चारदीवारीमें बन्द रहना लगभग असंभव है। जातियां आजकी तरह सड़ी-गली और छिन्न-भिन्न न हों, तो जातिमें से ही संतोष देनेवाले अच्छे जोड़े जुटा लेना सबसे स्वाभाविक और सुविधापूर्ण हो जाय। अैसा हो तो समान धंधा जाननेवाले, समान आचार-विचार रखनेवाले और अच्छी तरह परिचित जीवन और स्वभाववाले जातिके लोगोंको छोड़कर विवेकी माता-पिताको अन्यत्र क्यों जाना पड़े? परन्तु आज तो जातियोंके छोटे छोटे टुकड़े हो गये हैं। जैसे हिन्दुस्तानके खेत अितने छोटे छोटे टुकड़ोंमें बंट गये हैं कि अुनमें लाभदायक खेती हो ही नहीं सकती, वैसे ही जातियां भी अैसे छोटे टुकड़ोंमें छिन्न-भिन्न हो गअी हैं कि वे अच्छी वंशवृद्धिके लिअे निकम्मी बन गअी हैं। धंधे, आचार-विचार और शिक्षाकी

दृष्टिसे देखें तो आजकी जाति जाति ही नहीं, केवल अेक बेमेल शम्भुमेला है। वह जाति नहीं, परन्तु भयंकर संकर है। अुसमें से वर-कन्याके अच्छे जोड़े जुटाना लगभग असंभव ही है।

अिसके सिवा, हम सेवकोंके जीवन राष्ट्रीयता, त्याग और सेवा पर रचे हुअे होते हैं, अिसलिअे वे जातिके साधारण ढंगसे अलग प्रकारके होते हैं। अेक तरहसे यों भी कहा जा सकता है कि हमारी समान ध्येय और समान जीवनवाली अेक अलग जाति ही खड़ी हो रही है। अलग अलग जातियों और प्रान्तोंसे आये हुअे सदस्योंकी हमारी अेक नअी जाति ही है। वह नअी होने पर भी बनी है जाति-रचनाके सच्चे सिद्धान्तोंका अनुकरण करके। पुरानी जातियोंसे वह ज्यादा कुदरती है, अिसलिअे हमारे बच्चोंके नये जोड़े अिस नअी मंडलीमें से बननेके अुदाहरण अधिकाधिक संख्यामें सामने आने लगे हैं, और यह स्वाभाविक है।

पुरानी जातियां यह देखकर चौंक अुठती हैं और हममें से भी कुछ सेवक अभी तक अैसा होते देखते हैं तब चौंकते हैं और अुसे बड़ा अधर्म मानकर दुःखी होते हैं। असलमें तो अैसे जोड़े ही सच्चे जोड़े हैं, प्रकृतिके प्रवाहका अनुसरण करनेवाले हैं। अिसलिअे मां-बापको आशीर्वाद देकर सच्चे सजाति-विवाहोंके रूपमें अिनका स्वागत करना चाहिये।

जातिके प्रति हम आश्रमवासी कैसी दृष्टि रखते हैं, अिसकी मैंने खूब विस्तारसे चर्चा की है। मैंने अच्छे और बुरे सभी अर्थोंमें जाति शब्दका प्रयोग किया है। तत्त्वज्ञानियोंको अैसा लगेगा कि अिस शब्दका सही अुपयोग नहीं हुआ है। वे कहेंगे कि अिसमें तो मैंने वर्ण-व्यवस्थाके सिद्धान्तोंको ही स्वीकार किया है और जातिका शुद्ध खंडन किया है। यह बात सच है।

जातिका बोलबाला हमारे समाजमें अितना हो गया है कि जैसे घासफूस बढ़कर मूल फसलको नष्ट कर डालता है, वैसे अिसने वर्णका नाश कर डाला है। अितना ही नहीं, अुसने साधारण लोगोंकी बुद्धिमें यह भ्रम पैदा कर दिया है कि जाति ही वर्ण है। प्राचीन वर्ण-व्यवस्थाकी प्रतिष्ठा लोगोंने जातिको दे दी है।

परन्तु कहां अुदार वर्ण और कहां संकुचित जाति? अिन दोनोंके स्वभाव ही अलग अलग हैं। वर्ण समाजकी सेवा करनेके लिअे है और जाति केवल स्वार्थका ही विचार करती है। वर्णने समाज-कल्याणके खातिर सबके लिअे संयम और त्यागके धर्म निश्चित कर दिये हैं। कोअी दूसरेके धंधेमें दखल न दे, धनके लिअे स्पर्धा न की जाय, कोअी अैश-आरामकी जिन्दगी न बितावे — ये वर्णकी आज्ञाअें हैं। जाति तो अपना ही विचार कर सकती है। अूंच-नीचका भाव और अस्पृश्यता अुसके आधार हैं। आत्मरक्षाके लिअे अुसे बाल-विवाह और वर-कन्या-विक्रय जैसे रिवाज और तंगसे तंग बाड़े बनानेके ही अुपाय सूझते हैं। धंधे पर वह कोअी काबू नहीं रख सकती। रखे भी कैसे? अुसके धर्ममें तो जो ज्यादा कमाये वही

अूंचा माना जाता है। और मूल धंधेसे चिपटे रह कर भला अिस तरह अूंचा अुठा जा सकता है?

वर्णमें धंधा अेक होता है, परन्तु सबको सेवक, ज्ञानी और अीश्वर-भक्त बनना पड़ता है। जातियां तो जो मजदूर हो गया अुसे हमेशा मजदूर रखनेके लिअे अज्ञानमें बन्द रखती हैं, कोअी भंगीके घरमें पैदा हुआ तो अुसे अस्पृश्य बना देती हैं, ताकि वह कभी सिर अूंचा न कर सके।

पालन करने योग्य तो वर्णधर्म ही है। जातिधर्म सर्वथा त्याज्य है। मैंने अिस चर्चामें सब जगह 'जाति' शब्द अिस्तेमाल किया है, सो प्रचलित लोकभाषाके रूपमें ही किया है। अब आप समझ जायेंगे कि जहां जहां जातिके अच्छे लक्षण बताये गये हैं, वहां वर्णधर्मका ही वर्णन है।

हम सेवक जाति-व्यवस्था अथवा वर्ण-व्यवस्थाके मूल सिद्धान्तोंको मानते हैं। हमारे गांवोंको यदि स्वदेशी और स्वराज्यके सिद्धान्तोंके अनुसार जीकर सुखी और संतोषी बनना हो, तो हमारा विश्वास है कि अुन्हें अिस वर्ण-व्यवस्थाको ही फिरसे जीवन प्रदान करना चाहिये। फिर भी विधिकी कैसी लीला है कि जातियोंके प्रचलित मुख्य रिवाजोंके विरुद्ध खुले आम बलवा करनेवाले कोअी हों तो वे हम ही हैं! अुनके रोटी-व्यवहारके विरुद्ध, अुनके बेटी-व्यवहारके विरुद्ध, अुनके अूंच-नीचके भेदोंके विरुद्ध, अुनके कुलाभिमानके विरुद्ध हमने खुला विद्रोह कर दिया है। परन्तु यह किसलिअे है? अिसीलिअे कि धंधे और ध्येयकी बुनियाद पर नये सिरेसे वर्णधर्मकी स्थापना की जा सके।

यह विद्रोह सेवकोंके सारे जीवनको मथ डालनेवाला है। अिसमें हमें अपनी स्त्री, मां-बाप, कुटुम्बियों, ससुरालवालों और सब जाति-भाअियोंका विरोध सहना पड़ेगा। अिसमें हमें सत्याग्रहकी अपनी संपूर्ण कला और अहिंसा अुंड़ेलनी होगी। अुनके साथ सेवा और प्रेमका संबंध तो हमें दस गुना बढ़ाना है, लेकिन सोचे हुअे सुधारोंके अमलमें मनको जरा भी कमजोर नहीं होने देना है।

असलमें, जातिके क्षेत्रकी हमारी यह लड़ाअी देशके विशाल क्षेत्रकी लड़ाअीके लिअे हमारी बढ़ियासे बढ़िया तालीम है।

प्रवचन ३६

झूठे अलंकार

आज हम अलंकार अर्थात् गहनोंके विषयमें बातचीत करेंगे। किसीको लगेगा, "यह कैसा विचित्र और अप्रस्तुत विषय है! क्या हम नहीं जानते कि हम आश्रममें रहने आये हैं और आश्रममें गहने पहननेकी छूट नहीं हो सकती?" आश्रमकी अैसी कल्पना करके जो लोग आये हैं, अुन्हें मैं बधाअी दूंगा। और अिसमें शक नहीं कि वे यहां अुसका अधूरा अमल देखें, तो भी आश्रमकी सच्ची कल्पना तो जो अुन्होंने की वही हो सकती है। नाक-कानके गहने, हाथ-पैरके गहने, गलेके गहने — यह सारा ठाट आश्रमवासी सेवक-सेविकाओंके लिअे तो क्या, किसी सज्जन या सन्नारीके लिअे भी शोभास्पद नहीं है।

रानीपरज जातिकी वनवासी बहनें कांसे-पीतल और पत्थरके भद्दे गहनोंसे हाथ-पैर भर लेती हैं। अुन्हें हम समझाते हैं: "तुम्हारे ये गहने तुम्हें शोभा नहीं देते; वे सच्चे यानी सोनेके नहीं हैं। अुनके नीचेकी हाथ-पैरोंकी चमड़ी धोयी नहीं जा सकती, अिसलिअे अुस पर दाग पड़ जाते हैं। बहुत ज्यादा गहनोंके भारसे तुम्हें काम करनेमें असुविधा होती है — अित्यादि।" ये भली बहनें हमारी बात मान जाती हैं, समझ जाती हैं और अूंची जातिकी स्त्रियां अुन्हें अुपदेश देनेमें अुत्साहसे भाग लेती हैं। परन्तु अुनका अपना क्या हाल है? वे कदाचित् अुत्तर देंगी, "अिसमें से किसी आलोचनामें हमारा समावेश नहीं होता। हमारे गहने भद्दे नहीं हैं, झूठे नहीं हैं, बहुत भारी भी नहीं हैं।" वे भद्दे, झूठे और भारी नहीं होंगे, परन्तु निकम्मे तो हैं न? अुनके पहननेसे शोभा बढ़ती है, अैसा तो कोअी संस्कारी स्त्री कहेगी ही नहीं। अैसा कहे तो वह अपने मुंह अपने गुणोंका अपमान करती है। क्या गुणोंकी शोभा कम होती है कि अुसकी पूर्तिके लिअे गहने पहननेकी जरूरत पड़े?

स्त्रियां दलील देंगी, "हम तो केवल सौभाग्यके चिह्न-स्वरूप ही गहने पहनती हैं। हाथमें चूड़ियां और नाक-कान और गलेमें अेकाध छोटी-सी चीज।" पुराने रिवाजके कारण यह विचार लोगोंमें ठीक माना जाता है, परन्तु हम तो मानते हैं कि गहने सौभाग्यके नहीं परन्तु गुलामीके चिह्न हैं। हाथ-पैरके गहने सौभाग्यके नहीं परन्तु बेड़ियोंके चिह्न हैं। और सौभाग्यके लिअे भी नाक-कान छिदवानेको तैयार होनेसे बड़ा मानभंग और क्या हो सकता है? सौभाग्य तो यही है कि पत्नी अपने पतिके धर्म-जीवनमें ओतप्रोत हो जाय। यह सौभाग्य केवल स्त्रीको धारण करना है सो बात नहीं, पतिको भी धारण करना है। अुसे भी धर्मपत्नीके धर्म-जीवनमें अेकाकार हो जाना चाहिये।

अिन सब अलंकारों अथवा गहनोंकी बातमें मुझे लम्बा समय देनेकी जरूरत नहीं। ये तो साधारण समाजमें भी अेक हद तक आलोचनाके पात्र हैं। हमारे देशमें

लोगोंको गहनोंका बहुत शौक है। फिर भी बन-ठनकर गहनोंके चलते-फिरते प्रदर्शन बनकर निकलना बहुत अच्छा नहीं माना जाता। दासी जितनी गहनोंसे लदती है, अुतनी रानी या सेठानी लदना पसन्द नहीं करती।

हमें तो आज स्थूल आभूषणोंके बजाय सूक्ष्म अलंकारोंकी बात करनी है — अर्थात् बन-ठनकर फिरनेकी, नखरे करनेकी हलकी वृत्तिकी बात करनी है। अिसमें केवल लड़कियोंकी ही आलोचना नहीं करनी है। अिस मामलेमें लड़के लड़कियोंसे पीछे नहीं हैं। आजकल हमारे स्कूल-कॉलेजोंमें लड़के-लड़कियोंको अिस बारेमें सच्चा मार्गदर्शन नहीं मिलता। जो मिलता है वह अुलटा मिलता है। समाजमें भी कोअी सही पथ-प्रदर्शन नहीं करता। समाजमें छोटे-बड़े सबकी रसवृत्तिका स्तर गिर गया है। अुसमें पश्चिमके नकली रीति-रिवाजोंने वृद्धि कर दी है। अैसे मामलोंमें किसीका पथ-प्रदर्शन करना व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अत्याचार माना जाता है।

अच्छा तो अब मैं आपको आपके सूक्ष्म अलंकार बताता हूं। सरल बनवासी बहनोंकी तरह आपमें अुन्हें तुरंत अुतार डालनेका साहस है या नहीं, अिसकी भी परीक्षा हो जायगी।

यहां अेक बार खादी-कार्यालयमें काम बहुत बढ़ गया था। अिसलिअे हिसाबके कामके लिअे अेक होशियार और काफी भावनाशील नौजवानको रखा गया। वे भावनाशील जरूर थे, परन्तु जरा शौकीन भी थे। हमारे गांवोंमें बहुत लोग शौकीन होते हैं, परन्तु अुनके मुकाबलेमें वे भाअी ज्यादा शौकीन नहीं थे। वे अुंगलीमें सोनेकी सुन्दर हीरा-जड़ी अंगूठी पहनते थे। गांवोंसे रानीपरज बहनें सूतके जो बंडल कातकर लातीं, अुन्हें वह भाअी तौलते और हिसाब लगाकर अुन्हें मजदूरी चुकाते थे। अंगूठीवाले हाथसे यह काम आश्रमका अेक कार्यकर्ता अर्थात् गरीबोंका सेवक करे, यह शोभा नहीं देता, अैसा खयाल भी अुन्हें क्यों होने लगा? परन्तु जब अुन्हें यह विचार सुझाया गया तो वे तुरंत समझ गये और अुन्होंने अंगूठी अुतार दी।

हमारी बात सुनकर अुस कार्यकर्ताने अपनी अंगूठी जितनी खुशीसे अुतार दी अुतनी खुशीसे कोअी और कार्यकर्ता अपनी कलाअीकी घड़ी अुतार देगा या नहीं, अिसमें शंका है। घड़ीके बारेमें तो अैसा कहनेमें मेरे जैसेको जरा संकोच रखना पड़ता है। जो साथी पूरी तरह परिचित है, वह अच्छे अर्थमें ही मेरी सूचनाको लेगा और वाद-विवाद नहीं करेगा, अैसा विश्वास हो तो ही सूचना देनेकी हिम्मत होती है।

मैं जानता हूं कि आपमें से जो लोग सुन्दर सुशोभित घड़ियां कलाअी पर बांधते हैं वे यह बात निकलनेसे मनमें परेशान होने लगे हैं। आपका मन आलोचना करता होगा कि गहनोंकी बातसे मैं घड़ी पर क्यों आ गया। "क्या घड़ी किसी भी सभ्य मनुष्यके लिअे अपनी नाड़ीकी धड़कनकी तरह जरूरी नहीं है? और यहां आश्रममें तो समयके पालन पर बहुत अधिक जोर दिया जाता है। अुतना कड़ा पालन घड़ीकी मददके बिना सिर्फ सूर्य और तारोंकी गति देखकर कैसे किया जा सकता है?" वगैरा जवाब आपके होठों पर आकर तैयार हो गये होंगे।

पर आश्रममें तो हमने हर सार्वजनिक स्थान पर दीवारकी घड़ियां लगा रखी हैं और हमारा घंटा भी जीते-जागते देवकी भांति सारे दिन हमें जगाता रहता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति अलग घड़ी न रखे तो भी काम चल सकता है। फिर भी मैं यह मानने को तैयार हूं कि घड़ीके बिना सभ्य मनुष्यका जीवन कांटेकी तरह नहीं चल सकता। और यह बात भी जरूर स्वीकार करने लायक है कि चलते-फिरते घड़ी गिर न जाय और किसी भी क्षण समय देखनेकी सुविधा रहे, अिसके लिअे अुसे कलाअी पर बांधना सुविधापूर्ण है। लेकिन यह तो आपको भी स्वीकार करना पड़ेगा कि आप अिस बातको भूल नहीं सकते कि आपकी कलाअी पर अेक सुन्दर, आकर्षक और आपके लिअे काफी मोहकी अेक चीज बंधी हुअी है। क्या गहना पहननेवालेके मनमें भी कुछ अैसा ही भान नहीं होता?

जब तक हम अपनेको सद्‌गृहस्थ अथवा अूंचे मानकर जीवन बिताते हैं, जब तक हम दिनभर गद्दी-तकियोंके साथ चिपके रहते हैं, और पुस्तक तथा कलम ही हमारे कामके मुख्य औजार हैं, तब तक हमें घड़ीकी आलोचना समझाना आसान नहीं है। परन्तु आप खेतमें मजदूरी करनेवाले किसानका विचार कीजिये, मवेशी चरानेवाले ग्वालेका खयाल कीजिये। आपको तुरन्त मालूम होगा कि अुस जीवनके साथ कलाअीकी घड़ीका मेल नहीं बैठता। हमारी अिच्छा यह होनी चाहिये कि हम सेवकोंका जीवन दिनोंदिन किसान और ग्वालेसे मिलता-जुलता बने। स्पष्ट है कि वह गद्दी-तकियेका तो हो ही नहीं सकता। हमारे वातावरणमें आकर्षक घड़ी सचमुच अेक गहना बन जाती है, और अिसलिअे वह आलोचनाकी पात्र बन जाय तो कोअी आश्चर्य नहीं।

आपकी प्रिय घड़ीकी गिनती यदि अलंकारमें हो गअी, तो फिर आपकी नाजुक सुन्दर नोकदार फाअुण्टेन पेन अिस श्रेणीमें आनेसे कैसे बच सकती है? आजके जमानेमें पेनके बिना कोअी भी कार्यकर्ता या विद्यार्थी लगभग अपंग बन जाता है। आश्रममें रहकर देशके मजदूरोंका जीवन बितानेकी हमारी कितनी ही अिच्छा क्यों न हो, तो भी जीवनमें लिखना बन्द कर देना कैसे सम्भव हो सकता है? क्या डायरी न लिखी जाय? पैसेका हिसाब न लिखा जाय? अपने कामकाजके विवरण न लिखे जायं? अथवा पत्र-व्यवहार न किया जाय?

और अेक ही स्थान पर बैठकर काम करना हो तो दवात-कलमसे शायद काम चल जाय, परन्तु हम ग्रामसेवकोंको तो गांव-गांव भटकना पड़ता है। भटकना न हो तो भी सफाअीसे चलनेवाली पेनको छोड़कर बार बार अटकने और काले धब्बे गिरानेवाली कलमसे लिखकर लिखनेका आधा आनन्द गंवा देनेमें कौनसी समझदारी है?

अिस तरह आपकी मनचाही पेनके बचावमें बहुतसी बातें कही जा सकती हैं। घड़ी और पेन अिस्तेमाल करनेवाले बड़े बड़े देशसेवकोंके नाम भी आप सबूतमें पेश कर सकेंगे।

परन्तु अितने पर भी अीमानदारीसे यह कहना और लोगोंसे मनवाना आसान नहीं है कि आपकी प्रिय पेन केवल कलम है, अलंकार नहीं है। जिन रानीपरज

बहनोंकी मजदूरी आप अपनी सुन्दर पेनसे बहियोंमें लिखते हैं, वे तो समझ ही जायंगी कि आपका पेनका शौक और अुनका पैरोंकी झांझनका शौक दो अलग चीजें नहीं हैं। अुन्हें प्रत्येक क्षण यह भान रहता है कि अुन्होंने सुन्दर कीमती झांझन पैरोंमें पहन रखे हैं, और जब अुनकी सहेलियां अुन्हें देखतीं और अुनका बखान करती हैं तो अुन्हें खुशी होती है। क्या आप यह कह सकेंगे कि आपको भी प्रत्येक क्षण यह भान नहीं होता कि आपके हाथमें अेक सुन्दर कीमती वस्तु है? अगर आपकी पेनको देखकर कोअी आपकी रसिकताकी प्रशंसा करे, तो क्या आप मुस्कराकर अुसे स्वीकार नहीं करेंगे?

जिस नअी दृष्टिसे हमने घड़ी और पेनको देखा, अुसी दृष्टिसे अब हमारे कपड़ों और बहुत-सी व्यक्तिगत चीजोंको भी हम देखेंगे। हमने शरीर-रक्षाके लिअे और सभ्यताके लिअे कपड़े पहने हैं अथवा शोभाके लिअे, यह किसीसे गुप्त रखना संभव नहीं है। हमारी आंखें और हमारे अंग-प्रत्यंग हमारा भीतरी भाव प्रकट कर देते हैं। अिससे भी अधिक कोअी प्रमाण चाहिये तो वह अिस बातसे काफी मात्रामें मिल जायगा कि हमने कपड़ेका पोत और डिजाअिन पसंद करनेमें कितनी सावधानी रखी थी और दर्जीके साथ अुसकी कटाअी वगैराके मामलेमें कितनी दिलचस्पीसे बातें की थीं।

अिस प्रकार अलंकार सोने-चांदीके आभूषणों तक ही सीमित नहीं हैं। मूल वस्तु तो हमारे मनमें है। जिन जिन चीजोंके पीछे बन-ठनकर खूबसूरती दिखानेकी वृत्ति छिपी हुअी हो, अुन सबमें अलंकारका तत्त्व आ ही जाता है। शरीर पर गहने, कपड़े या अैसी कोअी बाहरकी चीज लटकानेसे ही आभूषण बनता हो सो बात नहीं। कुदरतके दिये हुअे केशोंमें से भी रसिक मनुष्य अलंकार पैदा कर लेता है। अुनकी कटाअीमें, अुन्हें जमानेके ढंगमें, अुनमें डाले जानेवाले तेलकी सुगन्धमें — अिस प्रकार हर बातमें कितनी रसिकतासे मन लगाया जाता है!

अिन सब बातोंसे आपमें से शायद कोअी यह आशा रखेगा कि मैं आपको यह निर्णय दूंगा कि आश्रममें हमें कैसे और कितने बाल रखने चाहिये। परन्तु मैं अैसी कोअी बात करना नहीं चाहता। अैसा नियम हमेशाके लिअे बनाना संभव भी नहीं है। यह तो फैशनका प्रश्न है। और फैशनको रोज नये नये वेश धारण करनेकी आदत होती है। आज जो फैशन माना जाता है वह जरा पुराना हुआ कि नापसंद हो जायगा, और वह कोअी नया रूप ले लेगा। आज सिरके बीचमें बड़ी गुच्छेदार चोटी और चारों तरफ घुटा हुआ सिर रखने अथवा आधे सिर पर चोटीके आसपास बालोंका चक्र रखकर विशाल कपाल घुटानेका विचार भी आपसे सहन नहीं होगा, जब कि किसी जमानेमें यह फैशन था और बड़ेसे बड़े शौकीन लोग भी अैसा फैशन रखकर अपनेको रूपके अवतार मानते थे। आजकल सिरके आगेके भागमें बाल बढ़ाने और पीछेके बाल कटवा डालनेका फैशन प्रचलित है, परन्तु अेक जमानेमें पिछले भागमें सुन्दर घुंघराली जुल्फें और आगे छोटे बाल रखनेमें शोभा मानी जाती थी।

स्त्रियोंमें लंबी चोटीका रिवाज बहुत पुराने समयसे चला आ रहा है। अेक समय अुसमें स्त्रियां रूपका अभिमान अनुभव करती होंगी। परन्तु आजकल तो पुराना रिवाज हो जानेके कारण अुसमें से रूपका भाव लगभग अुड़ गया है। वह सौभाग्यके चिह्नके रूपमें अेक कर्तव्यके तौर पर ही धारण की जाती है। रूपका विशेष ध्यान रखनेवाली स्त्रियोंको अब अुनसे संतोष नहीं होता। आज अलग अलग ढंगसे चोटियां कटवानेके नये फैशन चालू हो चुके हैं।

बालोंके शौकीनोंको सबसे बड़ा शौक मांग निकालनेका होता है। अिस मांगकी रेखा शायद ही किसी दशकमें स्थिर रहती पायी जायगी। किसी समय मांगकी रेखा स्त्रियोंमें बीचमें और पुरुषोंमें अेक तरफ रखनेका फैशन था। फिर धीरे धीरे पुरुषोंकी मांगकी रेखा बीचकी तरफ और स्त्रियोंकी अेक तरफ खिसकने लगी। आजकल वह रेखा किस स्थान पर रहती है, यह मैं नहीं जानता।

अिसलिअे मान लीजिये कि आज मैं आपको सिर मुंड़ाकर सादा दिखाव रखनेकी सलाह देता हूं, लेकिन वह कब फैशनका रूप नहीं ले लेगा, यह कौन कह सकता है? हम तो अितना ही कह सकते हैं कि बन-ठनकर घूमनेकी वृत्ति अूंचे दर्जेकी वृत्ति नहीं है। हम खूबसूरत हैं, अिस बातका हमें भान होना, बार-बार आअीनेमें मुंह देखकर अुस भानको जाग्रत रखना हीन वृत्ति है। जिन्हें यह बात सही लगेगी अुन्हें अपने-आप पता चल जायगा कि वे बालों, कपड़ों और दूसरी निजी बातोंके बारेमें कैसा आचरण करें।

अन्तमें अेक और दिशाकी चेतावनी देनेकी भी जरूरत है। अलंकार-वृत्ति न रखनेका अर्थ मैला-कुचैला, अव्यवस्थित और लापरवाह रहना न किया जाय। कुछ लोग अैसा बन जानेको आश्रम-जीवनका लक्षण मानकर चलते हैं। वे दूसरोंकी पट्टियोंकी टीका रसपूर्वक करेंगे, परन्तु अपने बाल गन्दे, मैले और अव्यवस्थित रखेंगे। वे दूसरोंकी फाअुन्टेन पेनकी आलोचना अवश्य करेंगे, परन्तु अुन्हें खुद न तो कलम बनाना आयेगा और न अिस्तेमाल करना आयेगा। अुनका होल्डर अगर खो न गया हो तो टेढ़ी और घिसी हुअी निबवाला जरूर होगा। अुनकी लिखावट बेढंगी और धब्बोंवाली होगी। अुन्हें स्याहीसे सुन्दर अक्षरोंमें लिखनेकी सदा अरुचि होगी। अिस अरुचिके कारण वे पेंसिलसे धुंधला और गन्दा ही लिखेंगे। अिसके सिवा, वे दूसरोंकी घड़ीकी आलोचना करनेमें तो बहादुर होंगे, परन्तु खुद अेक भी काम नियमसे या समय पर करनेकी सावधानी नहीं रखेंगे। गाड़ियां चूकना, देर-सवेर जाने-आनेके कारण साथियोंके लिअे सदा कष्टरूप होना अुनका स्वभाव बन जायगा। वे दूसरोंके सुन्दर और फैशनदार कपड़ोंकी हंसी अुड़ायेंगे, परन्तु अपने कपड़े न साफ रखेंगे, न व्यवस्थित। टोपी चाहे जैसे सिर पर रख लेंगे और अुसमें से चोटी बाहर मुंह निकालती होगी। धोतीकी लांग ढीली और लटकती होगी। बटन या तो टूट गये होंगे अथवा साबित होंगे तो बन्द नहीं किये होंगे। सार यह कि अुनकी तमाम चीजें जहां तहां पड़ी रहती होंगी और सदा गुम होती रहती होंगी।

आश्रम-जीवनमें अलंकारोंको स्थान नहीं है, अिस नियम परसे लोग अैसी कल्पना कर बैठते हैं और अिसलिअे हम पर खूब हंसनेका लाभ प्राप्त करते हैं। यह भी असंभव नहीं कि किसी किसी आश्रमवासीने अपने अिस तरहके व्यवहारसे अैसी कल्पना बनानेका लोगोंको कारण दिया हो। परन्तु आज मैंने अलंकारोंके संबंधमें जो बातें कहीं, अुन परसे मैं आशा रखता हूं कि आपमें से तो कोअी यह हरगिज न समझे होंगे कि मैं आपसे अैसा अव्यवस्थित बननेकी सिफारिश करता हूं। हमें छैल-छबीले नहीं बनना है, परन्तु स्वच्छ और व्यवस्थित जरूर बनना है। आश्रमवासी झूठे अलंकार नहीं पहनेंगे, परन्तु सच्चे अलंकार तो अवश्य धारण करेंगे।

तो अब मैं आपको बताता हूं कि सच्चे अलंकार कौनसे हैं।

सबसे पहला अलंकार है नीरोग शरीर। नीरोग बालकके गाल पर कुदरती लालीकी जो शोभा होती है वह कभी रंग लगानेसे आ सकती है?

स्वच्छता दूसरा अलंकार है। हमारे अंग-अंग, हमारे बाल, हमारे नाखून, हमारे कपड़े और हमारी तमाम चीजें साफ न हों, तो कितने ही सुगंधित द्रव्य छिड़कनेसे हम सुन्दर कैसे दिखाअी देंगे?

व्यवस्थितता तीसरा अलंकार है। हम घरकी चीजें व्यवस्थित न रखें और अुसे तोरणों और तस्वीरोंसे भर दें, तो अिससे क्या घरकी शोभा बढ़ जायगी?

ये सच्चे अलंकार हैं और अिनका शौक तो हमें पैदा करना ही है। अिन अलंकारोंका शौक पैदा करनेके बाद अुन झूठे अलंकारोंकी हमें अिच्छा नहीं होगी, वे हमें हलके लगेंगे और सेवकके नाते — नहीं-नहीं मनुष्यके नाते भी, हमें हीनता अनुभव करानेवाले मालूम होंगे।

प्रवचन ३७

सेवकके सेवक कैसे?

आश्रममें आपने देखा होगा कि हम अपने कामोंके लिअे नौकर रखना पसन्द नहीं करते; अपने सब काम हम स्वयं करनेका आग्रह रखते हैं। हम खाना बनानेके लिअे रसोअिया नहीं रखते। पाखाने साफ करनेके लिअे भंगी नहीं रखते। कपड़े धोनेके लिअे धोबी नहीं रखते। पानी भरने, झाड़ू लगाने वगैरा कामोंके लिअे भी कामवाली नहीं रखते।

मित्र कअी बार टोकते हैं कि ये सब काम अपने हाथों करनेके बजाय आप नौकरोंसे क्यों नहीं कराते? और अितना समय बचा कर शिक्षा और सेवामें क्यों नहीं लगाते? परन्तु हम अिस मोहक तर्कमें फंसना नहीं चाहते। अेक बात तो यह है कि अिन सब कामोंको हम नीरस मजदूरी या बेगार नहीं मानते, परन्तु अपनी शिक्षाके साधन मानते हैं। जैसे खादी, खेती वगैरा बड़े अुद्योग, जैसे पुस्तकें और शिक्षक हमारी शिक्षाके साधन हैं, वैसे ही ये काम भी हमारी शिक्षाके साधन हैं। अिन्हें नौकरोंसे कराना हमें रुपया खर्च करके शिक्षाके अवसरको व्यर्थ गंवा देने जैसा लगता है।

अिसके अलावा, नौकरोंसे हमें अपने काम करानेमें बड़ा संकोच रहता है। हमें शरम आती है कि हम खुद सेवक हैं; हमारे लिअे सेवक कैसे? नौकरको नौकर रखना शोभा देता है?

परन्तु शरम और संकोच छोड़कर नौकर रखनेको तैयार हो जायं, तो भी हमारे सामने अेक बड़ी परेशानी खड़ी होती है। अैसे निजी कामोंके लिअे नौकर ढूंढ़ने हों तो सामान्यतः कौन मिलेगा? जिनके पास जीवन-निर्वाहके कुछ न कुछ साधन हैं, जिन्हें स्वाभिमानपूर्वक निर्वाह चलानेकी कोअी न कोअी कला आती है, वे तो अैसे निजी काम करनेको तैयार नहीं होंगे। अिसलिअे जो बिलकुल दीन-हीन, दलित और दरिद्र होंगे, जो सबसे पिछड़े हुअे और नीचे होंगे, अुन्हींमें से हमें नौकर मिल सकेंगे। अब सच पूछा जाय तो हम अिसी वर्गके सेवक हैं। अुन्हींको तो हमने अपने सेव्य, अपने सच्चे अुपास्य देव, अपने साक्षात् दरिद्र-नारायण और अपने भारतकी मूर्ति मानना सीखा है। अैसे लोगोंको हम अपने सेवक कैसे बना सकते हैं? हम सेवक अर्थात् अिनकी सेवा करने योग्य हैं। अिसके बजाय क्या हम अुनके मालिक बन जायं और अुनसे अपनी व्यक्तिगत नौकरी करायें? सेवाकी हमारी सारी भावनाओंकी हत्या किये बिना यह कैसे हो सकता है?

अिसके सिवा, अैसी निजी नौकरीमें कम पैसे देनेकी दृष्टिसे कच्ची अुम्रके लड़के-लड़कियोंको रखा जाता है। यह भारी समाज-द्रोह है। क्या यह समझानेके लिअे किसी दलीलकी जरूरत है? और हमारे लिअे तो अैसे बच्चोंकी तरफ नौकरकी दृष्टिसे देखना सचमुच असंभव है। हमारे भीतर बैठा हुआ सेवक और शिक्षक यह स्थिति कैसे सहन कर सकता है? अेक ओर हमारे यहां अनेक विद्यार्थी शिक्षा पाते हों, अुद्योगके समय अुद्योग करते हों, खेलके समय खेलते हों, प्रार्थनाके समय प्रार्थना करते हों, और दूसरी ओर हमारी आंखोंके सामने अुन नौकर बनाये हुअे लड़कोंसे हम नौकरी कराते रहें यह कैसे हो सकता है? क्या वे भी अुपरोक्त सारी शिक्षा पानेके योग्य नहीं? अुनके साथ दूसरा व्यवहार करनेके लिअे हम अपने मनको कैसे तैयार कर सकते हैं? शिक्षाकी जो गंगा बह रही है, अुसके पवित्र जलसे अुन्हें हम कैसे वंचित रख सकते हैं?

कोअी यह तो हरगिज नहीं कहेगा कि "हम अिन्हें वंचित कहां रखते हैं? हमने अुन्हें नौकरके रूपमें रखा है और वे राजीखुशीसे नौकर रहे हैं, अिसलिअे अपना काम करते हैं।" साधारणतः लोग अिसी तरह मनको समझाते हैं। परन्तु हमें अपने मनको अैसा जड़, अैसा भावनाहीन बना लेना शोभा नहीं देता। हमें तो अुनके लिअे भी अपनी सारी शिक्षाके कार्यक्रम खुले रखने चाहिये, अुनमें शरीक होनेके लिअे प्रेमसे अुन्हें निमंत्रित करना चाहिये, अुनमें अुनकी दिलचस्पी पैदा करनेके लिअे खास कोशिश करनी चाहिये।

अिसके बजाय, अुन्हें नौकर रखनेसे हमारा मन कितना नीच बन जाता है? यदि वे दूसरे विद्यार्थियोंके साथ प्रार्थनामें भजन सुनने बैठ जायं अथवा कक्षाओंमें

व्याख्यान सुनने चले जायं, तो हम अुनसे नाराज होंगे और अुन्हें कान पकड़कर वहांसे अुठा देंगे। जो सच्चा सेवक और शिक्षक है, वह विद्यार्थी-अवस्थामें रहने योग्य बालकोंके साथ अैसा हृदयहीन व्यवहार कर ही कैसे सकता है? और करे तो अुसका जीवन दंभी है, यही मानना चाहिये। हमारे जीवनमें रहनेवाला यह विरोध अिसी बातका द्योतक होगा कि अपने विद्यार्थियों और सेवकोंके प्रति हम जो प्रेम, ममता और सेवाभाव दिखाते जान पड़ते हैं, वे सब कृत्रिम हैं, अूपर अूपरके ही हैं। हमारा हृदय तो प्रेम, सेवा आदिके पात्र बनने लायक बालकोंके प्रति अति कठोर हो सकता है, और होता भी है।

हम कितनी ही सावधानी क्यों न रखें, तो भी अिस दंभ अथवा झूठका असर हमारे विद्यार्थियों पर पड़े बिना रह नहीं सकता। हम मुंहसे कितनी ही कीमती शिक्षा देते हों, तो भी विद्यार्थियोंकी मार्मिक दृष्टि हमारे झूठको परखे बिना कैसे रहेगी? और जब हम अुनके प्रति कोमल भाव बतायेंगे तब वे कैसे मानेंगे कि ये भाव हमारे दिलकी गहराअीमें से निकलते हैं।

अिस प्रकार नौकर रखनेकी बातका हमारे जीवनके सिद्धान्तोंसे किसी भी तरह मेल नहीं खाता। फिर भी व्यवहारमें अुसके बिना काम नहीं चल सकता। हमारे जैसी आश्रम-संस्थाओंमें अधिकसे अधिक अपने निजी कामोंके लिअे नौकर न रखनेका आग्रह हम रख पाते हैं। हमें भी पीसने, कूटने आदि कामोंके लिअे, खेती और गो-सेवाके कुछ कामोंके लिअे नौकरोंकी मदद लेनी ही पड़ती है। शिक्षा वगैराके सम्बन्धमें कुछ कार्यक्रम तो अवश्य ही करनेकी हमारी अिच्छा रहती है, अिसलिअे कितना ही चाहने पर भी हम अपने जीवनके तमाम जरूरी कामकाज खुद नहीं निबटा सकते।

अिसी तरह सेवाधर्मसे बंधे हुअे बहुतसे कुटुम्बोंमें भी नौकर न रखनेका सिद्धान्त मान्य होनेके बावजूद शारीरिक दुर्बलता और जरूरी कामोंके कारण नौकरोंकी सहायताके बिना काम चलाना बहुत मुश्किल होता है। अैसी हमारी दीन दशा है। कुछ सेवकोंको बचपनसे सेवा-जीवनके अनुरूप तालीम नहीं मिल पाती। अुनके मन नये जीवनके लिअे तैयार हो गये और वे ग्रामवासी तथा आश्रमवासी बन गये। परन्तु पुरानी आदतोंसे कमजोर बने हुअे शरीर अुस जीवनकी तमाम मुसीबतोंको बर्दाश्त नहीं कर सकते। बहुतोंकी पत्नियोंकी स्थिति अिससे भी कठिन होती है। वे पतिके साथ ग्रामवासी तो बन जाती हैं, परन्तु खुद मनसे पतिका धर्म नहीं अपना पातीं। अिसलिअे अुनका तो शरीरके साथ मन भी बीमार होता है। अैसी स्थितिवाले सेवकों और आश्रमवासियोंका जीवन थोड़ी-बहुत नौकरोंकी मदद लेने पर ही चलता है।

परिस्थितियोंसे अिस प्रकार निर्बल बने हुअे परन्तु प्रयत्नशील सेवक क्या करें? क्या वे अपनी कमजोरीसे निराश होकर सेवा-जीवनका त्याग कर दें? अैसा निर्णय तो अुनके अपने लिअे और देशके गांवोंके लिअे आत्मघातके समान होगा। गांवोंका जीवन स्वीकार करनेवाले अैसे अनेक सेवकों और अुनके स्त्री-पुत्रोंको भी हम जानते हैं, जो कुछ समय बाद मनकी निर्बलताको जीत सके हैं। अुनके शरीर भी गांवोंके

आरोग्यप्रद वातावरणमें अधिक नीरोग और मजबूत बने हैं। और अन्तमें वे नौकरोंके बिना काम चलाने लगे हैं। असा बहुतोंके बारेमें हम अपनी आंखोंसे देखते हैं। वे यदि पहलेसे ही निराश हो गये होते, तो अुनके जीवनमें प्राप्त हुआ यह सुन्दर अवसर व्यर्थ ही चला जाता।

दूसरी तरफ, हिन्दुस्तानके गांव सबल और निर्बल जितने भी सेवक मिलें अुन सबके भूखे हैं। सुशिक्षित स्त्री-पुरुष सेवाके लिअे शहरोंसे गांवमें चले आयें, अिसके लिअे वे टकटकी लगाये बैठे हैं। भले किसीका शरीर बीमार और अशक्त रहता हो, लेकिन अितने ही कारणसे अुसकी सेवाओंका लाभ खोना आज हमारे गांवोंको पुसा नहीं सकता।

असे सेवकोंको ग्रामवासियोंसे मेहनत-मजदूरी करानी पड़ेगी। वे भले असा करें, परन्तु नम्र भावसे करें; अपनी कमजोरी समझ कर संकोचके साथ करें। काम करनेवालोंको वे न्यायपूर्वक मेहनताना तो देंगे ही, परन्तु अितनेसे संतोष नहीं मानना चाहिये। अुनके साथ समानताका, मित्रताका बरताव रखना चाहिये। अुनके साथ अपने कुटुम्बीजनोंका-सा बरताव करना चाहिये। अुनसे जो काम कराया जाय, अुसमें घरके बड़े लोगों और बच्चोंको भी हाथ बंटाना चाहिये। काम नीचा होनेके कारण नौकरोंसे कराते हैं, असा अुन्हें जरा भी खयाल न होने देना चाहिये। हम सचमुच वह काम नहीं कर पाते, हमारा शरीर काम नहीं देता, अिसका दुःख सदा हमारे मनमें जाग्रत रहना चाहिये।

अिसके अलावा, जिससे नौकरी ली जाय अुसकी खास तौर पर सेवा करनेकी जिम्मेदारी सेवकको प्रेमपूर्वक अपने अूपर लेनी चाहिये। हम ग्रामसेवक हैं और ग्रामवासियोंको चरखा वगैरा सिखाना हमारा फर्ज है। तो यह फर्ज अदा करनेकी सबसे पहली और सबसे सीधी शुरुआत हम अपने अुपकारी सहायकोंसे ही क्यों न करें? हम ग्राम-शिक्षक हों तो सबसे पहले अपनी शिक्षाका लाभ हम अपने सहायकों और अुनके बच्चोंको ही क्यों न दें? अिन सहायकोंके बच्चोंके साथ भी हमें वैसा ही बरताव करना चाहिये, जैसा हम अपने घरके बच्चोंके साथ करते हैं।

सच्ची बात तो यह है कि मनुष्य नौकरोंके साथ कितना ही अच्छा बरताव क्यों न रखे, तो भी अुन्हें पूरी तरह कुटुम्बीजन बना लेना अुसके लिअे संभव नहीं होता। खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने और सोने-बैठनेमें भेद रहेगा ही। यह भेद सेवकको दिन-रात चुभता रहेगा, अुसके जीवनको सेवाके सिद्धान्त पर अधिकाधिक चलाता रहेगा और अेक दिन जरूर असा आयेगा जब वह अपने सेवक-जीवनमें से अिस दोषको निकाल देगा, स्वयं जिसका नौकर बननेको निकला है अुसे अपना नौकर बनानेके पापको अपने जीवनमें से धो डालेगा।

अिस संबंधमें अेक भ्रामक विचारसे सचेत रहनेकी जरूरत है। "हम गांवकी किसी गरीब स्त्रीसे या लड़के-लड़कीसे बरतन मंजवाने वगैराके काम करायें तो अिसमें क्या बुराअी है? हम अुन्हें अुद्योग और कमाअीका जरिया देते हैं। यह अुनकी

सेवा हो हुआी न ? " गरीब आदमियोंको दो पैसेकी कमाओी होती है, अिसलिअे वे कोओी भी काम करनेको राजी हो जाते हैं, अपने बच्चोंको काम पर भेजनेके लिअे तैयार हो जाते हैं। परन्तु अुनकी गरीबीका लाभ अुठाकर हम अुनसे अपमानजनक काम करायें तो यह हमारा हलकापन है। अिसमें अुनकी कुसेवा है। आज हम निजी नौकरीके जिन कामोंकी बात कर रहे हैं, अुन्हें गरीब आदमी भी अगर वह स्वाभिमानी हो तो करनेको तैयार नहीं होगा। सेवकके नाते हमारे लिअे यही अुचित है कि अैसे लोगोंको हम अुनका सम्मान बढ़ानेवाले चरखा आदि ग्रामोद्योग दें। यह सच है कि लोगोंको अैसे कामोंमें लगाना आसान नहीं है। खादीके हमारे केन्द्रोंमें प्राण-संचार करना बहुत कठिन होता है! अिससे जाहिर होता है कि यह काम कितना कठिन है। परन्तु मुश्किल हो या आसान, अैसे सम्मानपूर्ण अुद्योगोंका मार्ग खोलकर ही हम लोगोंकी सच्ची सेवा कर सकते हैं। किसीसे सेवा लेनी ही पड़े तो भले नम्र भावसे और अीश्वरसे क्षमा-याचना करके लें, परन्तु अुसमें हम अैसी आत्म-वंचना न करें कि हम नौकरकी सेवा कर रहे हैं।

हमारे आश्रममें अनेक स्त्री-पुरुष रोज तरह तरहके काम करने आते हैं। कोओी परिवारोंमें घरका काम करने आते हैं; कोओी खादी-कार्यालयके लिअे पूनियां बनाने और चरखा चलानेके लिअे आते हैं; कोओी भण्डारके लिअे अनाज कूटने, फटकने या पीसनेके लिअे आते हैं; तो कोओी मकानोंके किसी कामकाजके सिलसिलेमें मजदूरी करने आते हैं।

दुनियामें मजदूरीकी प्रतिष्ठा अभी कायम नहीं हुआी है और मजदूरोंके साथ लोग अच्छा व्यवहार नहीं करते। मजदूर कामकी चोरी जरूर करेंगे, यह मानकर अुनके सिर पर हमेशा सवार रहने और अुन्हें टोकते रहनेका हमारे यहां रिवाज है। जो अैसा करता है वह व्यवहार-कुशल माना जाता है और जो नहीं करता अुसकी गिनती बेवकूफोंमें होती है। हम सब अैसे समाजमें से ही आये हैं, अिसलिअे यह कहना मुश्किल है कि आश्रममें आनेवाले मजदूरोंके साथ अिसी तरहका बरताव करनेकी आदतसे हम पूरी तरह मुक्त हैं। अिसलिअे आज बताये गये ये विचार हम सबके हजम करने लायक हैं। हमारे यहां कोओी नौकर नहीं और कोओी सद्‌गृहस्थ नहीं; और अगर हैं तो मजदूर पसीना बहाकर कमाते हैं अिस कारण वे आदरके पात्र हैं और सद्‌गृहस्थ पराओी मेहनत पर सफेदपोश बनते हैं अिसलिअे अुनका स्थान नीचा है। अतः कामके सिलसिलेमें आश्रममें आनेवाले स्त्री-पुरुषोंको आप कोओी मजदूर अथवा नौकर न समझें। वे सब हमारे आदरणीय साथी और सहायक हैं। अुनसे कोओी तू-तड़ाक न करें। अुन्हें अिज्जतसे बुलायें। हम अुनके सेवक हैं, यह भावना अुनके साथके अपने व्यवहारमें हम सदा जाग्रत रखें।

प्रवचन ३८

आश्रमवासिनियां

कल हम नौकरों और मजदूरोंके संबंधमें बातें कर रहे थे। आपने देख लिया कि अुनके प्रति देखने और व्यवहार करनेकी हमारी आश्रम-दृष्टि कैसी होनी चाहिये। अिसी प्रकार स्त्रियोंके प्रति देखने और व्यवहार करनेकी भी आश्रमकी अेक खास दृष्टि है।

आश्रमवासी बहनोंमें ज्यादातर तो आश्रमवासी सेवकोंकी स्त्रियां, पुत्रियां, मातायें और बहनें वगैरा होती हैं। वे अत्यन्त सहानुभूति और आदरकी पात्र हैं, खास तौर पर अुनके जीवनके शुरूके वर्षोंमें — जब कि यहां आकर अुन्हें अपार कठिनाअियां अुठानी पड़ती हैं।

आप विद्यार्थियोंकी स्थितिमें और अुनकी स्थितिमें जमीन-आसमानका फर्क है। आपको भी आश्रम-जीवन कठोर तो मालूम होता है, परन्तु आप यहां सोच-समझकर आये हैं। आप अिस दृढ़ निश्चयके साथ यहां आये हैं कि कठोर जीवनसे हारना नहीं है, परन्तु अुसे अपने जीवनमें हमें गूंथ लेना है। सेवाकी शिक्षा तो कठोर ही हो सकती है, वह फूलोंकी सेज नहीं हो सकती। अैसी श्रद्धा आपमें है, अिसीलिअे आप यहां आये हैं।

परन्तु ये बहनें यहां किन परिस्थितियोंमें आअी हैं? पति आश्रममें रहते हैं, अिसलिअे पत्नियोंको अुनके पीछे-पीछे चलकर आना पड़ा है। पति बम्बअी-कलकत्तेमें नौकरी-धंधा करते होते तो वे अपना कर्तव्य मानकर वहां चली गअी होतीं। अुन्हें आपकी तरह पहलेसे आश्रमके निवेदन पढ़कर अथवा किसीसे अुसका वर्णन सुनकर आश्रमकी जानकारी प्राप्त नहीं होती। पतिदेव यदि आश्रमके रंगमें पूरे रंगे हुअे हों, तो शायद अुन्होंने अपनी पत्नीके मनमें आश्रम-जीवनके बारेमें श्रद्धा जाग्रत करनेका प्रयत्न किया होगा। परन्तु अक्सर वह कच्चा आश्रमी ही होगा और अपना यह फर्ज अदा करनेमें अुसने जरूर भूल की होगी। बेचारा मनमें डरता होगा कि पत्नी आश्रमकी दूसरी ही दुनियामें आ पड़ेगी तब अुसका और मेरा क्या होगा? अिस डरके मारे अुसने पहलेसे मौन ही रखा होगा।

पत्नीको ससुराल अथवा पीहरमें थोड़ा-बहुत राष्ट्रीय वातावरणका लाभ मिला होगा, तो संभव है अुसे यहांका जीवन बहुत कठिन न लगे, वर्ना अुसकी पूरी परेशानी समझनी चाहिये। अुसने अपने गृहस्थ-जीवनके बारेमें अनेक प्रकारके ख़याल बनाये होंगे। अुन सब पर यहां आश्रममें प्रहार होने लगेंगे। अुसने रंग-बिरंगे कपड़े-लत्तोंका शौक बढ़ाया होगा, लेकिन यहां तो सब सादे खादीके कपड़े ही पहनते हैं। अिसके सिवा,

पति भी अुसे खादीकी तरफ मोड़नेको स्वाभाविक रूपमें अधीर होता होगा। गहने-गांठे तो आसपासका वातावरण देखकर अुसे खुद ही पहननेमें शर्म आयेगी। घरका काम करना हलकेपनकी निशानी है और अुसके लिअे मैं नौकर रखूंगी, अैसे मनोरथोंका अुसने पोषण किया होगा। परंतु यहां अुत्साही पति नौकर कैसे रखे? वह तो खुद बरतन मांजने या कपड़े धोनेका काम करके अुस बेचारीको शर्मिन्दा कर देगा। नौकर रखना तो दूर रहा, पति अुसे समझाने लगेगा कि घरका कामकाज जल्दी ही पूरा करके यथासंभव समय बचाया जाय और भरसक आश्रमकी प्रवृत्तियोंमें भाग लिया जाय; कताअी-यज्ञमें भाग लिया जाय; प्रार्थनाओंमें दिलचस्पी ली जाय और आश्रमके भंडारमें, औषधालयमें, बाल-मंदिर या कन्या-वर्गमें अथवा परिश्रमालयमें भाग लिया जाय। पत्नीको अपनी रसोअीकी कलाका विकास करने और प्रदर्शन करनेका अुत्साह होगा, परन्तु पतिदेव सादगी पसन्द करते होंगे, खान-पानमें आश्रम-जीवनको शोभा देनेवाली सादगी रखनेका आग्रह रखते होंगे और थोड़े समयमें आश्रमके साधारण स्वयंपाक-गृहमें शामिल हो जानेके लिअे पत्नी पर धीमा-धीमा और सहन हो सकनेवाला दबाव डालते होंगे।

पति अपनी पत्नीको शिक्षित बनानेका अैसा प्रयत्न करे, तो अुसे अनुचित कैसे कहा जा सकता है? पत्नी अुसकी सच्ची धर्मपत्नी बने, अुसने स्वयं जिस जीवनको अपनाया है अुसमें पत्नी भी रस लेने लगे, अैसी अिच्छा रखना और अुसके लिअे प्रयत्न करना पतिका स्वाभाविक धर्म है। यह अेक महान और अत्यन्त आवश्यक शिक्षाका काम है।

वह लोकसेवाके लिअे आश्रममें रहता है, परन्तु लोकसेवा आज अुसे अपने घरमें ही शुरू करनेकी नौबत आ गअी है। अिस शिक्षामें अुसे अपनी संपूर्ण कलाका अुपयोग करना पड़ेगा। पत्नी समझदार, चतुर और हर प्रकारकी परिस्थितिमें घुलमिल जानेवाली आनन्दी स्त्री होगी, तो धीमे, ठंडे और मीठे प्रयोगोंसे ही अुसका काम चल जायगा। अैसा होनेकी आशा तभी रखी जा सकती है, जब वे दोनों परम भाग्यशाली हों। परन्तु जीवनका प्रवाह अितना सरल और सीधा कहां होता है? यह तो अेक तीखी, तेजस्वी और आबदार शिक्षा है। अिसमें कठोर और आंसुओंसे भीगे हुअे सत्याग्रहोंके प्रयोग भी आवश्यक होंगे।

हम सब आश्रमवासी अैसे समय प्रेम, ममता और सहानुभूतिका सिंचन अुन पर करें, यह कितना जरूरी है? आमके अेक कोमल पौदेको अुसकी पुरानी भूमिसे अुखाड़कर नये खड्डेमें रोपते हैं, तब हमें कितनी कोमलतासे काम लेना पड़ता है? हमें अैसे समय दूसरोंको कष्ट पहुंचाकर नीचे दरजेका आनन्द लेनेकी अिच्छा होती है। नअी बहनोंके कपड़ों और गहनोंकी आलोचना करनेकी अिच्छा होती है। अुनके बोलने-चालनेकी हंसी अुड़ानेको जी चाहता है। या तो हम अुनकी पुरानी आदतोंके लिअे कड़वे वचन कह डालते हैं, अुनका तिरस्कार करते हैं; या अुनकी खुशामद करके अुनकी कमजोरियोंको प्रोत्साहन देने लगते हैं। हम आश्रमवासी यदि अैसी हीन वृत्तिके वशमें हो जायं, तो

हम अुनका स्थायी अहित कर बैठते हैं। परन्तु यदि हमारी तरफसे अुन्हें ठीक समय पर सहानुभूति और सहायता मिले, प्रेमभरी सेवा और विश्वासपूर्ण सलाह मिले, तो थोड़े ही समयमें नअी भूमिमें अुनकी जड़ें जम जायंगी और कुम्हलायी हुअी पत्तियोंमें फिरसे ताजा रस बहने लगेगा। भले ही कोअी बहन अपने पतिके पीछे खिंचकर ही आअी हो, परन्तु कुछ समय बाद वह स्वयं सच्ची आश्रमवासिनी बन जायगी। अुसे आश्रम-जीवनमें रस आने लगेगा। वह अिस ढंगसे रहने लगेगी, मानो स्वेच्छापूर्वक स्वतंत्र रूपसे सेवा-जीवनकी शिक्षा पानेके लिअे यहां आअी हो। और अुसे पता भी नहीं चलेगा कि यह परिवर्तन अुसमें कब हो गया।

खुद सेवकोंको भी अपनी पत्नियोंकी शिक्षाका यह प्रयोग करनेके लिअे अपने जीवनमें बहुतसी योग्यतायें पैदा करनी होंगी। कअी सेवक अैसा मानते हैं कि पत्नीसे अमुक आचार-विचारोंका आग्रह करनेका अर्थ अुससे लड़ना-झगड़ना और तकरार करना है; समझानेका अर्थ चर्चा और बहस कर-करके अुसे थका देना है; सत्याग्रह करनेका अर्थ जरा-जरासी बातमें नाराज होते रहना है। परन्तु शिक्षाका कोअी भी काम अितना सादा और आसान नहीं होता — खास तौर पर पत्नीको आश्रम-जीवन पर आरूढ़ करनेका काम तो हरगिज आसान नहीं होता।

अिसके लिअे पत्नीको शिक्षित करनेके साथ पतिको स्वयं शिक्षित होना पड़ेगा और अपनी योग्यता बढ़ाते रहना होगा। पत्नीके साथ व्यवहार करने और अुसके प्रति देखनेका सारा तरीका ही अुसे सुधार लेना पड़ेगा। अुसे पुराने जमानेकी यह दृष्टि छोड़नी होगी कि पत्नी मेरी आश्रित है और मेरी सेवा करना ही अुसका धर्म है। अुसे यह समझना होगा कि अपनी निजी सेवामें ही पत्नीका सारा समय लगाये रखना, अुसे अपनी सम्पत्ति मानकर, अपने भोगका साधन समझकर अुसके साथ व्यवहार करना अुसका द्रोह करनेके समान है।

अिस तरहका व्यवहार करनेसे पति अपनी शिक्षक अथवा सेवककी योग्यता खो बैठता है, क्योंकि वह मुंहसे तो अुसे सेवाकी बातें सुनाता है, परन्तु अुसके साथके व्यवहारमें अुसके मालिक या भोक्ताके रूपमें ही रहता है। अुसके अुपदेश और आचारमें मेल न होनेसे पत्नी पर वह अच्छा प्रभाव कैसे डाल सकता है? किसी भी स्त्रीसे पतिके व्यवहारका यह असत्य कैसे छिपा रह सकता है? वह पतिकी आंखों परसे भांप लेती है कि ये जबानसे तो आश्रमके संयम-जीवनकी चर्चायें करते हैं, परन्तु अिनकी आंखोंमें लम्पटता भरी हुअी है। ये मुंहसे गरीबोंकी सेवाकी बातें सिखाते हैं, परन्तु खुदको पानीका प्याला भी चाहिये तो पत्नीको हुक्म फरमाते हैं। भले जबानसे वे कितना ही समझाने, झगड़ने और नाराज होनेका दिखावा करें, अुससे क्या होता है? चतुर स्त्रियां जबानी बातोंके पीछे छिपी हुअी अुनके मनकी बात अच्छी तरह पढ़ लेती हैं। सेवकने खुद जिस हद तक शिक्षा प्राप्त की होगी, अुसी हद तक वह पत्नीको शिक्षा देनेमें सफल होगा।

तव पत्नीकी ओर देखनेकी सेवककी दृष्टि कैसी हो? "वह अेक स्वतंत्र सेविका है। अुसे भी सेवा-जीवनकी तालीम पानी है। अुसे भी आश्रम-जीवन और देशकार्यमें अपना हिस्सा देना है। अुसे अपना समय और अपनी शक्ति अिस तालीममें ही खर्च करने देना चाहिये। अुस पर पतिके हकका दावा करना अुचित नहीं। मुझे अेक प्रेमी मित्र और साथीके नाते पत्नीको अुसके जीवनके अिस मुख्य कार्यमें हर प्रकारसे मार्गदर्शन और प्रोत्साहन देना चाहिये।" सेवक अपनी धर्मपत्नीको अिसी दृष्टिसे देख सकता है।

सेवक यदि पत्नीकी ओर यह दृष्टि रखेगा, तो अेक-दूसरेके प्रति अुन दोनोंका सारा व्यवहार वदल जायगा, शुद्ध बन जायगा। अुनका गृह-जीवन आश्रमको शोभा देनेवाला हो जायगा। अुनके आहार-विहार आदि खूव सादे हो जायेंगे। दो आनन्दी पक्षियोंकी तरह वे घरके सारे काम साथ मिलकर करेंगे और सेवाकार्य भी साथ साथ करेंगे। संयमी जीवनमें स्वाभाविक ही अुनका रस जाग्रत होगा और वे सच्चे दिलसे अिस वातकी सावधानी रखेंगे कि कुटुम्बका जंजाल बहुत ही संकुचित रहे। यह जंजाल बढ़ने देना और पत्नीकी शरीर-सम्पत्तिको और सेवाकी अुमंगोंको छिन्न-भिन्न कर डालना अुसका भारी अहित करनेके बराबर है — अिस विचारको अपने जीवनमें अेक क्षणके लिअे भी वे नहीं भूलेंगे।

अैसे सेवक-सेविकाकी जोड़ीको संतान होगी तो अुसके प्रति रहे प्रेम और जिम्मेदारीकी भावना अुनमें संयमी जीवनका रस खूव बढ़ा देगी। संतानकी सुंदर शिक्षाके विचारसे अुन्हें अपना जीवन अधिक स्वच्छ और पवित्र रखनेकी स्वाभाविक प्रेरणा होगी। अव तक जो संयम अुन्हें कष्टसाध्य मालूम होता था, वह संतान-प्रेमके कारण स्वाभाविक और सरल हो जायगा।

आश्रमोंके पवित्र वातावरणमें वहनोंको अिस प्रकार जीवन-परिवर्तन करनेका अवसर मिलना ही चाहिये। किसी आश्रमके मुख्य अुद्देश्योंमें वहनोंकी अैसी सेवाके लिअे भी अवश्य स्थान है। अिसके लिअे हम सवको आश्रमका वातावरण सदा पवित्र और स्फूर्तिदायक रखनेका प्रयत्न करना चाहिये। जहां अैसा अुच्च वातावरण न हो, अुसे आश्रमका पवित्र नाम कैसे शोभा दे सकता है? वह तो पशुवत् जीवन वितानेवाले लोगोंका अेक अखाड़ा ही कहलायेगा।

पतिकी तरफसे और आश्रमवासी साथियोंकी ओरसे अिस प्रकार प्रेम और सहानुभूति मिलनेसे आश्रमवासिनी वहनोंके जीवन अुन्नत वने हैं। आश्रम-संस्थाओंमें अिसके अनेक अुदाहरण हमें मिल सकते हैं। वे शुरूमें तो पतियोंके पीछे ही आश्रममें आओ थीं। अुनके पास स्वतंत्र विचारोंकी कोओ पूंजी नहीं थी। फिर भी समय वीतने पर आश्रम-सिद्धान्त अुनकी रग-रगमें पैठ गये हैं। गरीवोंकी सेवा और अुसके लिअे गरीवीका जीवन अुन्हें सच्चे दिलसे पसन्द आ गया है। वे हरिजनोंको भी अपने कुटुंवोंमें मिला लेनेकी हद तक अुदार वन गओ हैं और पतिके अथवा आश्रमके सेवाकार्योंमें स्वतंत्र

भाग ले सकी हैं। अुन्होंने शराब और विदेशी कपड़ेकी दुकानों पर धरना देने जैसे बहादुरीके काम किये हैं; अुन्होंने सत्याग्रहकी अैसी लड़ाअियोंमें भी वीरतापूर्वक भाग लिया है, जिनमें जेलयात्राका कठोर कष्ट भोगना पड़ता है और कौटुम्बिक जीवन छिन्न-भिन्न हो जाता है।

सेवकोंकी माताओं और दूसरे सम्बन्ध रखनेवाली स्त्रियोंके प्रति आश्रमवासियोंका क्या कर्तव्य है, अिसका भी हम यहीं विचार कर लें। वह जरा अधिक नाजुक और कठिन है। अुन पर प्रेमका दबाव भी अल्पमात्रामें ही डाला जा सकता है। अुनके विचारों और अुनकी आदतोंको हमें काफी हद तक सम्मानपूर्वक सहन करना होगा। अुन्हें सहन करना और फिर भी आश्रम-जीवनके सिद्धान्त न छोड़ना, यह सेवकोंके लिअे बड़ी कीमती तालीम है।

हम आश्रम जैसे स्थानमें रहते हैं, दुनियाकी दृष्टिमें दुःख और दरिद्रताका जीवन बिताते हैं, अिस विषय पर वे बहुत बार दुखी होती और आंसू बहाती हैं। हम जातीय रिवाजके अनुसार शादी-गमीके मौकों पर धूमधाम करके जातिमें नाम नहीं कमाते, स्पर्शास्पर्श और खाने-पीनेकी रूढ़ियां छोड़ देते हैं, बाल-विवाहों और बेजोड़ विवाहोंका विरोध करते हैं, और बालिग पुत्र-पुत्रीकी अिच्छाका आदर करके अन्तर्जातीय और अन्तर्प्रान्तीय विवाहोंको भी आशीर्वाद देते हैं। अिन कारणोंसे अुनके आंसू बहानेके प्रसंग हमारे जीवनमें अवश्य आयेंगे।

ये आंसू देख न सकनेके कारण सेवक अपना जीवन बदलनेको तैयार हो जाय, तो वह अपनी या मां-बहन वगैराकी कोअी सेवा नहीं करेगा। अपने सिद्धान्तों पर अटल रहकर भी सेवक माता, बहन आदिके दिल और कअी अुपायोंसे जीत सकता है। आश्रमके जीवनमें घरकी अपेक्षा सुविधाअें कम होनेसे अुन्हें कामकाज, खाने-पीने, सोने-बैठने वगैराकी तकलीफें अधिक महसूस होंगी, यह समझमें आने लायक बात है। अिसे समझने जितना प्रेमपूर्ण और कोमल हृदय हमें रखना चाहिये। खुद असुविधाअें अुठाकर भी अुन्हें अैसी बातोंमें जहां तक हो सके सुखी करना हमारा धर्म है। प्रेमपूर्वक व्यक्तिगत सेवा-शुश्रूषा करके जितना सुख दिया जा सकता है, अुससे तो अुन्हें नहला ही देना चाहिये। परन्तु जो सुख केवल धन खर्च करके अथवा नौकर-चाकर रखकर या हमारा सेवा-जीवन छोड़कर ही दिया जा सकता है, अुसके बारेमें बहुत संभव है हम लाचार हो जायं। अैसे नाजुक मौकों पर जो निराश नहीं होते, धीरजके साथ खुद कष्ट सहन करते हैं और प्रेम तथा सेवाके प्रवाह बहा सकते हैं, वे कुछ वर्षोंकी कड़ी कसौटीसे गुजरनेके बाद अन्तमें अुनके हृदयोंको जीतनेमें सफलता प्राप्त कर ही लेते हैं।

आश्रममें अैसे अुदाहरण भी कम नहीं हैं, जिनमें वृद्ध माताअें और बहनें अन्तमें प्रेमसे खादी पहनने और चरखा कातने लग गअी हैं, हरिजन बालकोंको अपने बालकोंके साथ बिठाकर प्रेमपूर्वक अपने हाथोंसे खिलाने-पिलाने लगी हैं और दूसरी तरहसे भी आश्रम-जीवनमें काफी घुल-मिलकर हमारे कार्यको आशीर्वाद देनेवाली बन गअी हैं।

आजकी अधिकांश बातें तो हमारे आश्रमके पुराने सेवकों तथा अुनकी पत्नियों, माताओं वगैराके साथ सीधा सम्बन्ध रखती हैं। फिर भी नये विद्यार्थियोंको वे जान-बूझकर सुनाअी गअी हैं। अिस परसे आश्रमवासी बहनोंके प्रति व्यवहार करनेकी आश्रम-दृष्टि आपकी समझमें आ जायगी। स्त्रियोंका सम्मान करना तो आम तौर पर प्रत्येक सज्जनका धर्म है ही। परन्तु आश्रमवासिनी बहनोंको केवल सम्मान नहीं, अुससे बहुत अधिक हमें देना है। अुनके नाम आश्रमके विद्यार्थियों या कार्यकर्ताओंके रजिस्टरमें भले न हों, फिर भी हमें यह समझकर ही व्यवहार करना है कि वे हम सबके जैसी सेविकायें अथवा विद्यार्थिनियां ही हैं। मैंने विस्तारसे बता दिया है कि अुनके लिअे सेविकाका जीवन अपनाना हमारी अपेक्षा कितना कठिन है। अिसलिअे अुन पर सहानुभूति, प्रोत्साहन और प्रेमकी वृष्टि करना हमारा परम कर्तव्य है। आलोचना और हंसी करके अुनके अुत्साहको मार देनेका पाप हम कभी न करें।

आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा

सातवां भाग

शिक्षा

प्रवचन ३९

आश्रमके बालक

आज हम आश्रमके बालकोंके सम्बन्धमें विचार करेंगे। आश्रमवासिनी बहनोंका विचार करनेके बाद अुनके और हम सबके प्यारे बालकोंका विचार करना स्वाभाविक ही है।

कोअी यह आशा तो नहीं रखते होंगे कि बालकोंके विचारमें मैं अिस बातकी चर्चा करूंगा कि अुन्हें कौनसी पाठशालामें बिठाया जाय और कौनसी पुस्तकें पढ़ाअी जायं। हम तो छोटे मुन्ने-मुन्नियोंका विचार करेंगे। अुनके लिअे पाठशाला कैसी? अथवा पाठशाला हो तो मांकी गोद और आश्रमका विशाल चौक ही अुनकी पाठशाला है। अुनके घरमें जो कामकाज होते हैं, अुद्योगशालाओं, खेतों और गोशालाओंमें जो प्रवृत्तियां चलती हैं, हम सब आश्रमवासी जो कुछ बोलते-चालते हैं वही अुनकी पुस्तकें हैं।

अतः बच्चोंकी शिक्षाके लिअे सबसे पहले अुनके मां-बापों और हम सब आश्रमवासियोंको जो करना है वह यह है कि हम अपना जीवन अत्यंत निर्मल, दम्भरहित, सच्चा और प्रेमपूर्ण रखें। अिस तरह रहनेमें हमारे मन पर तनाव पड़ता हो, तो भी अिन बच्चोंके प्यारके खातिर खुशीसे पड़ने दें। हमें मनमें यह विचार निरन्तर जाग्रत रखना चाहिये कि ये छोटे शिशु हमारे जीवनकी छोटीसे छोटी बातें बारीकीसे देखते हैं; अुन्हें देखकर वे अपने जीवनकी रचना करेंगे, अिसलिअे हम अुनके सामने भूलकर भी बुरा नमूना पेश न करें।

हम अिस भ्रममें न रहें कि बालक बुद्धिहीन और बलहीन छोटे प्राणी हैं। वे अभी बोलना-चालना भले न सीखे हों, फिर भी वे बहुत ही चपल और बुद्धिमान होते हैं। अपनी तेज आंख, कान और स्पर्श आदिसे और तेज बुद्धिसे वे अिस अपरिचित किन्तु अद्भुत संसारको समझनेकी कोशिश करते हैं; और जैसे जैसे समझते जाते हैं वैसे वैसे रसके घूंट पीते जाते हैं। वे वस्तुओंको पकड़ते हैं, छोड़ते हैं, सहलाते हैं, मुंहमें डालते हैं, गिराते हैं — अिस प्रकार अनेक प्रयोग कर-करके दुनियाकी विविध वस्तुओंका जरूरी पदार्थ-विज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। हमें लगता है कि वे निरर्थक हलचल करते रहते हैं, निकम्मे खेल खेलते रहते हैं; परन्तु असलमें तो वे गंभीरतासे हमारी दुनियाको समझनेकी कोशिश करते हैं। वे स्वयं अपना आत्म-शिक्षण करते रहते हैं। अिसमें अुन्हें अितना आनन्द आता है कि हम बड़े जिसे खेलना कहते हैं — अर्थात् हेतुहीन भागदौड़ अथवा लड़ाअी-झगड़ा — अुसके लिअे अुन्हें न कोअी दिलचस्पी होती है और न फुरसत होती है। परन्तु अिसमें शंका नहीं कि अपनी प्रवृत्तियों और अपने प्रयोगोंमें अुनकी आत्मा रमती और आनंद लूटती है। जब जब कोअी नया रहस्य खुलता है, कोअी नया भेद अुनकी छोटी बुद्धिमें प्रगट होता है, तब वे बहुत खुश होकर खिलखिला अुठते हैं। कभी कभी भेद हठीला बन जाता है और घूंघटका पट खोलकर अपना मुंह नहीं दिखाता, तब वे परेशान और निराश होकर रो भी पड़ते हैं।

अिस प्रकार अेक तरफ पदार्थ-विज्ञानके प्रयोग चलते हैं और दूसरी तरफ वे अपने शरीरसे अलग अलग काम करनेकी कलाअें भी सीखने लगते हैं। पदार्थ-विज्ञानके अुनके प्रयोगको हम जल्दी नहीं समझ सकते, परन्तु चलने, पकड़ने वगैरा कामोंके लिअे बच्चे कितनी सख्त मेहनत करते हैं, कितने गंभीर होते हैं, कितनी जोखिम अुठाते हैं, कितनी बार गिरते हैं और लड़खड़ाते हैं! अनेक बार मनचाही जगह सर कर लेते हैं, तब आनन्दसे हंस अुठते हैं और आसपास हममें से कोअी हो तो शाबाशीके अुद्‌गारके लिअे हमारी तरफ देखते भी हैं।

यह सब तो हम अंधे हों तो भी देख सकते हैं। परन्तु अितनी आसानीसे हम अुनका भाषा सीखनेका प्रयत्न नहीं समझ सकते। क्या आपकी यह कल्पना है कि भाषा अुनके कोमल मस्तिष्कमें अपने-आप चिपट जाती है? जब हम बोलते हैं तब क्या अेक कान और अेक आंख होकर बच्चे हमारी तरफ ताकते नहीं रहते? बड़ी मेहनतसे अनेक अनुमान लगा लगा कर वे हमारे शब्दोंमें भरे हुअे अर्थोंका निर्णय करते हैं। कितनी ही बार वे जो गलत अर्थ लगा लेते हैं, अुन्हें बादमें बदलते भी होंगे। और हमारे बोलनेमें कोअी सीधा और सरल अर्थ थोड़े ही होता है? अुसमें अनेक प्रकारके अलंकार और भाव भरे रहते हैं। हम कहते हैं, "खड़ा रह"; परन्तु हमारा भाव होता है, "भाग जा, नहीं तो मारूंगा।" यह सारा भेद खोलना अुनके लिअे आसान नहीं होता। बड़े प्रयत्नसे वे अपने छोटेसे दिमागमें भाषाका सारा ढांचा तैयार करते हैं, और बरस दो बरसके परिश्रमके बाद हमारे बोले हुअे शब्दोंको अुनके समस्त अर्थों, भावों और अलंकारों-सहित समझना सीखते हैं; अितना ही नहीं, अुसके जवाब भी अपनी तोतली वाणीमें और अत्युक्ति, वक्रोक्ति, अन्योक्ति अित्यादि भांति भांतिके अलंकारोंका अुपयोग करके देने लग जाते हैं।

बच्चे हमारी जीभकी भाषा तो काफी जल्दी सीख लेते हैं; मगर हमारी आंखोंमें चमकनेवाले तेजकी भाषाको और हमारे गालों पर बदलते रहनेवाले अुतार-चढ़ाव और रंग-छटाओंकी रहस्यमयी भाषाको ग्रहण करना अुन्हें अत्यंत कठिन जाता होगा। ज्यों ज्यों बालक हमारी ये भाषायें समझने लगते हैं, त्यों त्यों अुन्हें बड़ी अुम्रके आदमियोंके बरतावमें कुछ अस्वाभाविकता, कुछ कुदरतके विरुद्ध होनेकी शंका होने लगती है। बड़े प्रयत्नके अंतमें वे समझने लगते हैं कि हाथीके दांत खानेके और दिखानेके अलग अलग होते हैं!

यह आविष्कार अुनके निष्पाप हृदयको प्रिय नहीं लगता। हमारे असत्यकी शंका तो अुन्हें बहुत जल्दी हो जाती होगी, परन्तु अीश्वरने बड़ोंके प्रति श्रद्धा और प्रेमका जो भाव अुन्हें दिया है अुसके कारण अुनकी छोटीसी बुद्धि यह माननेसे अिनकार करती होगी कि हम अितने नीच हैं। और वे लम्बे समय तक हमारे व्यवहारमें कोअी अच्छा और शुद्ध हेतु ढूंढ़नेके लिअे बुद्धि-मंथन करते होंगे। अच्छे स्वस्थ शरीरवाले होने पर भी हम डरपोक हैं, यह पता लगाने और हमारे बारेमें अैसा विश्वास करनेमें हमारे श्रद्धालु बालकोंको कितनी कठिनाअी होती होगी? परन्तु जब वे अनेक

वार अवलोकन करते हैं कि हम वाहरसे मुंह लाल रखते हुअे भी, अूपरसे साहस दिखाते हुअे भी व्यवहार तो डरपोक जैसा ही करते हैं, तव अुनका भ्रम दूर हुअे विना कैसे रह सकता है?

हम कहकर मुकर जाते हैं, अपनी टेक नहीं रख सकते; दूसरोंको धोखा देते हैं, कमजोरको दवाते हैं और जवरदस्तसे भागते हैं; सार्वजनिक रूपमें खान-पान वगैरा भोगोंके मामलेमें संयम दिखानेका दंभ करते हैं, परन्तु खानगीमें लुक-छिप कर भोगका आनन्द लेते हैं; हम मुंहसे तो प्रेम वताते हैं, परन्तु सेवा करनेका अवसर आने पर छटक जाते हैं; हम छोटोंसे सेवा करा-कराकर अुन्हें सताया करते हैं और अुन्हें कष्ट देकर खुद आलसी जीवन विताया करते हैं; हम कअी वार अपने व्यवहारमें भेदभाव रखते हैं और दीन-हीनों और अुनके वच्चोंके प्रति विना कारण तिरस्कार प्रगट करनेमें शरमाते नहीं हैं; हम घरके कोनेमें वैठकर जवानसे तो वहादुरी दिखाते हैं, मगर अैन मौके पर जान वचाकर भाग जाते हैं। हमारा यह सारा व्यवहार खुला होता है और वालकोंको अज्ञानी समझकर हम अुनके सामने अपने दोप छिपानेकी भी वहुत परवाह नहीं करते। अिसलिअे अुन्हें हमारे जीवनका असत्य खोज निकालनेमें देर नहीं लगती। देर केवल अपने श्रद्धास्पद गुरुजनोंको अितना नीचा माननेमें ही लगती है। परन्तु अन्तमें वहुत आनाकानीके वाद अैसा माननेके सिवा अुनके सामने कोअी चारा नहीं रहता।

क्या आप यह मानते हैं कि हमारे असत्यका वालकोंके जीवन पर कोअी असर नहीं होता? असर जरूर होता है। यह जानेंगे तो ही हमें अपनी जिम्मेदारीका सच्चा खयाल होगा।

वालक पदार्थ-ज्ञान, भापाज्ञान और क्रियाज्ञान प्राप्त करनेके लिअे जिस तरह परिश्रम करते हैं, अुसी तरह जीवनकी अच्छीसे अच्छी पद्धति और जीवनके सच्चेसे सच्चे सिद्धान्त ढूंढ़नेका भी परिश्रम करते हैं। जन्मसिद्ध संस्कारोंसे तो अुनका सत्यको ही जीवनका सिद्धान्त मानकर चलना स्वाभाविक है। परन्तु हमारे प्रति अुनके मनमें जो श्रद्धा होती है अुसके कारण वालक धीरे-धीरे अिस निर्णय पर पहुंचते हैं कि सत्य और सरलताको जीवनका सिद्धान्त माननेमें अुनकी भूल हो रही है। सच्चा मार्ग तो वही होना चाहिये जिसका हम अनुभवी और सयाने गुरुजन अनुसरण करते हैं। अैसा करते हुअे वे समझने लगते हैं कि झूठ तो अेक मिर्च-मसालेवाली कला है; किसीको धोखा देना, किसीकी चीज छीन लेना, भाग जाना, झूठ वोलना — ये अपना अभीप्ट काम वना लेनेके वड़े सुन्दर और छोटेसे छोटे रास्ते हैं!

फिर तो जैसे-जैसे अिसकी खूवियां वे देखते हैं, वैसे-वैसे अिसमें अुन्हें मजा आने लगता है। झूठ-मूठ रोकर आपसे मनचाहा करवा लेनेका रास्ता कितना छोटा और आसान है! आपके देखते हुअे मिट्टी खायें तो आप अुनके मुंह पर तमाचा जड़ देते हैं, परन्तु अव वे आपसे छिप कर काम करनेकी कला सीख गये हैं। आप न देखें अिस

तरह चालाकीसे वे मिट्टी खानेके प्रयोग करते हैं; और ज्यों-ज्यों अुसमें अुन्हें सफलता मिलती है, त्यों-त्यों अिस पद्धतिमें अुनकी दिलचस्पी बढ़ने लगती है। अुन्हें भीतरसे यह अिच्छा रहती है कि आप अुन्हें लाड़-प्यार करें, अुनका आदर करें। परन्तु यह सब प्राप्त कैसे किया जाय? अिसकी कला भी अब अुन्हें आती है। वे आपकी कमजोरियां और आपके शौक जान गये हैं। अुन्हें पता चल गया है कि अुनका आलिंगन और चुम्बन करनेमें आपको आनन्द आता है। अिसका लाभ अुठानेके लिअे वे क्या करते हैं? वे नाराज होते हैं, आपसे दूर दूर भागनेका दिखावा करते हैं, आपके साथ अबोला लेते हैं, आपके हाथसे खानेको कोअी चीज नहीं लेते। अन्तमें अुनकी कला खूब सफल होती है। आप दीन बनकर अुन्हें मनाते हैं, बुलाते हैं, प्यार करते हैं, खिलौने देते हैं, अुनके सामने हार स्वीकार करते हैं। वे आपके सिर पर चढ़कर और आपको अनेक प्रकारसे तंग करके अपनी विजयकी घोषणा करते हैं।

अब बच्चोंको अिस बातमें अैसा मजा आने लगता है, मानो अुन्होंने जीवनकी किसी नवीन कलाका आविष्कार किया हो, और झूठ तथा चालाकीकी अिस कलाका वे दिनोंदिन विकास करते रहते हैं।

हम गैर-जिम्मेदारीका, कमजोरीका और झूठका जो जीवन बिताते हैं, अुसका बच्चों पर अिस तरहका भयंकर असर होता है। वे हमसे सवाये झूठे निकलते हैं। बचपनमें पड़ी हुअी यह आदत हम अुम्रभर नीतिकी शिक्षा दें तो भी बदलनेकी आशा नहीं है। कोअी सौमें अेक — नहीं हजारोंमें अेक बालक, पूर्वजन्मके संस्कारोंके कारण कहिये अथवा परमेश्वरकी कृपासे कहिये, हमारे झूठ और कपटपूर्ण व्यवहारको देखनेके बावजूद सत्यके प्रति अपनी श्रद्धा कायम रख सकता है। हम बड़े लोग जरा-जरा सी बातमें सत्यको छोड़ देते हैं, अिसका कारण हमारी निर्बलता ही होगी, परन्तु हृदयसे तो हम सत्यका मार्ग ही पसन्द करते हैं, यह अुदार अर्थ करके अैसे बालक हमारी दुर्बलताको हृदयसे क्षमा कर देते हैं और खुद हमारा अनुकरण न करके सत्य पर डटे रहते हैं।

परन्तु हम बहुत बार अिस प्रकार आचरण करनेवाले बच्चोंकी कदर नहीं कर पाते। हम अुन्हें भोले-भाले और मूर्ख समझकर अुनकी हंसी अुड़ाते हैं और कअी बार तो अुन पर नीच — असत्यका आचरण करनेके लिअे अन्यायपूर्ण दबाव भी डालते हैं। बहुतसे सत्यनिष्ठ बालक दबावसे दब कर अंतमें अपनी निष्ठा खो बैठते हैं और जीवनके बारेमें सारा रस गंवा देते हैं। हजारोंमें अेक ही बालक अैसा बलवान निकलता है, जो हमारे जुल्म और दबावके विरुद्ध सत्याग्रह छेड़नेकी ताकत दिखाता है। वे हमारा जुल्म सहन करते हैं, हमारी मार सहन करते हैं, हमा ी हंसी और तिरस्कार सहन करते हैं। वे नाराज नहीं होते, रोते नहीं, शिकायत नहीं करते, परन्तु अपना सत्यका मार्ग भी नहीं छोड़ते। अैसे बालक अूपरसे दुःख भोगते दिखाअी देते हैं, परंतु अैसा करनेमें अुन्हें दुःख महसूस नहीं होता। हम सामान्य लोग जिस आनंदका अुपभोग नहीं कर सकते, वैसे वीरभोग्य जीवन-रसका वे अुपभोग करते हैं।

बालकोंके साथ कैसा बरताव किया जाय, अुन्हें कैसी शिक्षा दी जाय, अिस संबंधमें मैंने आज कुछ नहीं कहा। आज तो अुनके जीवनकी केवल रूपरेखा ही मैंने आपके सामने रखी है।

बाल-जीवनमें निहित यह सारा रहस्य माननेमें आपको कठिनाअी जरूर होती होगी। मेरे कहनेका यह मतलब नहीं कि बालक यह सब समझकर और ज्ञानपूर्वक करते हैं। परन्तु आप अुनका सारा व्यवहार देखेंगे, तो जरूर स्वीकार करेंगे कि आजकी कही हुअी सारी बातें अुनके जीवनमें चल रही हैं। सच्ची जरूरत अिस बातकी है कि हम बच्चोंको अिस तरह सच्चे रूपमें पहचानने लगें। अिसके बाद हमें अपने-आप मालूम हो जायगा कि अुनके साथ कैसा व्यवहार किया जाय और अुन्हें कैसी शिक्षा दी जाय।

यदि हम समझ लें कि बच्चे केवल हमारे खिलौने नहीं हैं, तो हम अिस मान्यताको छोड़ देंगे कि अुन्हें गोदमें अुठाने, अुछालने और चुम्बन करनेसे ही हमारे कर्तव्यकी अितिश्री हो जाती है। अिसके अलावा, यदि हम यह भी जान लें कि बालक बलहीन, ज्ञानहीन और दयापात्र प्राणी नहीं हैं, वे व्यर्थ ही हाथ-पैर नहीं हिलाते; यदि हम जान लें कि अुन्हें निरर्थक प्रवृत्तियां करने अथवा खेलते रहनेकी फुरसत नहीं है, वे अत्यन्त गंभीरतापूर्वक हमारे समस्त जीवनका, हमारी बोलचालका, हमारे भोग-विलासका अवलोकन करते हैं; यदि हम जान लें कि हमें देखकर अुन पर जो संस्कार पड़ेंगे और अुन पर जो असर पड़ेगा अुसके अनुसार वे या तो हमेशाके लिअे अुच्च जीवनकी ओर अभिमुख होंगे अथवा सदाके लिअे नीच जीवनके कीड़े बन जायंगे — यदि यह सब हमारी समझमें आ जाय तो हम अेकदम सावधान हो जायेंगे। बालकोंके सामने सही अुदाहरण रखनेके लिअे, अुनकी सच्ची शिक्षाके लिअे, हम अपने जीवनको पवित्र, संयमी और सत्य-परायण रखेंगे।

प्रवचन ४०

बाल-शिक्षाकी आश्रमी पद्धति

कल हमने अिस बातका विस्तारसे विचार किया कि बच्चोंको किस नजरसे देखा जाय; यह समझनेका प्रयत्न किया कि अुनके छोटेसे जीवनमें कैसे प्रवाह चलते रहते हैं। बहुतसे माता-पिताओं और सगे-संबंधियोंको तो ये सारे विचार नये ही लगेंगे और अिन्हें सुनकर वे अश्रद्धासे सिर हिलायेंगे। परन्तु हम आश्रमवासी और सेवक तो बालकोंके जीवनको अिसी ढंगसे देखेंगे। अिस तरह देखने पर बालकोंके साथ हमारा बरताव जैसा होना चाहिये वैसा अपने-आप हो जायगा। हम अुनके साथ अैसा व्यवहार करेंगे, जिससे अुनकी सच्ची सेवा हो, अुन्हें सच्ची शिक्षा मिले।

यह व्यवहार कैसा होना चाहिये, अुसकी थोड़ी रूपरेखा आज आपके सामने रखनेका मेरा अिरादा है। अिससे आप बच्चोंकी शिक्षाका पाठ्यक्रम बना सकेंगे। मैं तो थोड़ीसी फुटकर सूचनाअें ही रख देना चाहता हूं। हमने बच्चोंके जीवनको जिस तरह समझा,

अुसके आधार पर; और हम आश्रम-जीवनको समझनेका रोज जो प्रयत्न करते हैं, अुसके आधार पर, आगे चलकर हमें अपने-आप अिस विषयमें विचार करना आ जायगा।

कपड़े नहीं परन्तु खुली हवा

सबसे पहले जो सुझाव देनेका मेरा मन होता है वह यह है कि बच्चोंको कपड़ों, जूतों और गहनोंसे कभी लादा न जाय। शिक्षित माता-पिता और अुनकी देखादेखी गांवके मां-बाप भी बच्चों पर ये जुल्म करते देखे जाते हैं। बच्चोंको लोग यह ठाट-बाट कराते हैं, अुसके पीछे क्या हेतु होता है? ठंडसे अुनकी रक्षा करनेका अुद्देश्य तो कभी-कभी ही होता है। ज्यादातर तो अुन्हें बच्चोंको बन-ठनकर खिलौनोंकी तरह घूमते देखनेका ही मोह होता है। अुनके मनमें यह लोभ भी होता है कि हमारे बालकोंको सजे-धजे देखकर गांवके लोगोंका ध्यान आकर्षित हो।

शुरूमें तो बच्चे मां-बापके अैसे पागलपन-भरे मोहको समझ ही नहीं सकते। अुनकी समझमें नहीं आता कि मां-बाप क्यों अुनके हाथ-पैरोंमें, शरीर पर और सिर पर थैलियों पर थैलियां चढ़ाते जाते हैं, क्यों वे अुनके पैरोंको मोजोंमें डालकर भूनते हैं और तंग जूतोंमें जकड़कर मसल डालते हैं। बेचारे मुश्किलसे तो चलना सीखते हैं, चीजोंको पकड़ना-छोड़ना सीखते हैं; अुस पर यह बंधन अुन्हें अत्यन्त असह्य हो अुठता है। मां-बाप कभी सत्याग्रह करके कैदखाने गये हों और अुन्होंने बगैर हवा-रोशनीवाली कोठरियोंमें बन्द होनेका मजा चखा हो, तो शायद अुन्हें अिसकी कुछ कल्पना हो जायगी कि वे बच्चोंके लिअे कपड़ोंका कैसा कैदखाना बना रहे हैं।

अिसके सिवा, बच्चे अभी कहां हमारी तरह 'सभ्य' बन पाये हैं? हमने शरीरको ताजी हवा लगती रहे अिस तरह खुले रहनेको शर्मकी बात समझना सीखा है। बच्चोंको तो अभी तक खुली और ताजी हवाका स्पर्श मीठा लगता है। अुनका यह सुख छीन लेनेसे वे रो अुठते हैं। हम बड़े लोग सयाने बनकर गद्दी-तकियोंके सहारे बैठे रहनेको बड़प्पनकी निशानी समझते हैं; लेकिन बालकोंको तो खूब आजादीसे चलना-फिरना, तरह तरहकी प्रवृत्तियां करना है। यह आजादी छीन लेने पर वे गला फाड़कर रोने लगते हैं।

बहुतसी माताअें बच्चोंका रोना बन्द नहीं कर पातीं, और रोनेका कारण भी नहीं समझ पातीं। अैसी माताओंको मैंने बच्चोंके कपड़े, जूते वगैरा अुतार देनेकी सलाह दी है। अनुभव यह आया है कि अैसा करने पर हर बार बच्चे फूलकी तरह हंसने लगते हैं। परन्तु आम तौर पर मां-बाप यह समझनेको तैयार ही नहीं होते। वे तो मनमें यही समझते हैं कि हमने अपने लाड़लोंको महंगे-महंगे कपड़े पहनाकर अुन्हें बड़ा सुख पहुंचाया है। अिसलिअे जब बालक रोते हैं तब अुसके असली कारणकी कल्पना भी वे कैसे कर सकते हैं? वे तो अुन्हें चुप रखनेके लिअे भूख न होने पर भी अुनके पेटमें कुछ मिठाअीका भार बढ़ाकर अुलटे अुन्हें परेशान करते हैं; अथवा कपड़ोंकी कैदके अलावा झोलीकी दूसरी कैदकी सजा देते हैं और अितने जोरसे झुलाने लगते हैं मानो अुनका दम निकाल देना है!

परन्तु हमारे जुल्मके विरुद्ध बच्चोंका यह विद्रोह लंबे समय तक नहीं टिकता। वे प्रकृतिके नियमों और हमारे जीवनके बीचका अन्तर धीरे धीरे समझने लगते हैं, हमारी कला अपनाने लगते हैं। हमारी तरह वे कपड़ोंके बिना शरमाना सीख जाते हैं; हमारी अिस मान्यताको स्वीकार कर लेते हैं कि सुधारके लिअे बंधनोंको सह लेनेमें ही सभ्यता है; यह भी समझने लगते हैं कि अनेक प्रकारकी ज्ञानवर्धक प्रवृत्तियां करनेकी अपेक्षा बन-ठनकर बैठने और तुतला-तुतलाकर बोलते रहनेमें ही अधिक आनंद और सम्मान मिलता है। बस, कलियुगका प्रभाव अुन पर पूरा पड़ गया! अब भले महात्मा गांधी सादगी और शरीर-श्रमके ढोल पीटें, भले धर्मशास्त्र संयम पर जोर दें; परन्तु अिस प्रकार तैयार हुअे बालकों पर यह सारा अुपदेश पत्थर पर पानीकी तरह बेकार सिद्ध होगा।

आश्रमवासी माता-पिता भी, जिन्होंने अपने जीवनमें अनेक सुधार किये हैं और जो दूसरे कोअी सुधार सूझें तो अुन्हें भी करनेमें नाराज नहीं होंगे, यह विचार न आनेके कारण आम लोगोंकी तरह बच्चोंको वस्त्रालंकारकी कैदमें जकड़कर खुश होते हैं और मानते हैं कि हमने बच्चोंको अच्छे ढंगसे रखा है। आशा है वे अिस सूचना पर गंभीर विचार करेंगे।

झोली नहीं परन्तु शिशु-घर

बच्चोंसे संबंध रखनेवाला दूसरा विचार हम झोलीके बारेमें करेंगे। माताओंकी अत्यन्त प्रिय और लोगोंमें काव्य-कलाका विषय बनी हुअी अिस झोलीके बारेमें नये सिरेसे और हमारे समझे हुअे नये सिद्धान्तोंके अनुसार हम विचार तो करें।

माताओंमें यह झोली कैसे अितनी अधिक प्रिय हो गयी है? अुनके पास रूठे हुअे बच्चोंको चुप करनेके दो साधन हैं — अेक साधन अीश्वरका दिया हुआ अर्थात् बच्चोंको दूध पिलाना, कुछ न कुछ खिलाना; और दूसरा साधन अपना खोजा हुआ अर्थात् झोलीमें डालकर अुन्हें झुलाना। बच्चा थक गया हो, नींदसे घिरा हुआ हो और अुस कारणसे रोता हो, तब तो झोलीके नशीले झूलोंका अुपाय अुस पर रामबाण जैसा सिद्ध होता है और अुसे तुरन्त चुप करके सुला देता है। परन्तु बालकके रोनेके कारण केवल नींद और भूख ही थोड़े होते हैं? कभी कभी अुसे अूपर चढ़ना हो और अुससे चढ़ा न जाता हो, तो निराश होकर वह रोने लगता है। कभी वह पेटमें दर्द अुठनेसे भी रोता है। प्रत्येक रोग पर झोलीका अिलाज कैसे काम देगा?

अिस सुन्दर झोलीका हम थोड़ा पृथक्करण करें। वह मांको सुन्दर क्यों लगती है, और बालककी दृष्टिमें वह कैसी है?

मां दिनभर बालकको गोदमें लेकर बैठी नहीं रह सकती। वह गरीब देहातिन हो तो अुसे मेहनत-मजदूरी करनी पड़ती है। सभ्य शहरी महिला हो तो दिनभर बालककी सेवा-चाकरी करके वह अूब जाती है। वह अपने काममें लगी रहे तब तक बालकको सही-सलामत रखनेका कोअी न कोअी साधन अुसे चाहिये। जमीन पर सुला कर काममें लगी रहे तो बालकके लिअे अुसे तरह-तरहकी चिन्तायें रहती हैं।

जमीन पर बालकको जीव-जन्तु काट सकता हैं; जमीनसे मिट्टी खोदकर वह मुंहमें भी डाल सकता है। झोली अिन सब चिन्ताओंसे मांको अेकसाथ बचा लेती है। अिस-लिअे मांको वह सुन्दर और सुविधावाली लगे, अिसमें क्या आश्चर्य है?

परन्तु अुसमें पड़े हुअे बालकके क्या हाल होते होंगे? बालकको करवट बदलने, लोट लगाने, अुठने और सरकनेकी अिच्छा होना स्वाभाविक है। अैसी अिच्छाअें होने पर झोली अुसे कैसी लगती होगी, अिसकी कल्पना करके देखिये। पशु-संग्रहालयोंके पिंजरोंमें शेर-चीतोंको अिधरसे अुधर चक्कर लगाते देखकर किसी भी भावनाशील मनुष्यको अुन पर दया आती है। तोतेको तंग पिंजरेमें अूपर-नीचे चढ़ते-अुतरते देखकर भी हमें दुःख हुअे बिना नहीं रहता। परन्तु झोलीमें पड़े हुअे बच्चेकी अपेक्षा शेर-चीता और तोता कहीं ज्यादा स्वतंत्रता भोगता है। बालकको तो अुसकी झोली दसों दिशाओंसे जकड़कर पकड़ रखती है। न अुससे बाअीं तरफ घूमा जाता है, न दाहिनी तरफ; न नीचे अुतरा जाता है, न खड़ा हुआ जाता है। अधिकसे अधिक वह कुछ हाथ-पैर अूंचे कर सकता है।

मैंने आपको विस्तारसे कल्पना कराअी है कि बालकोंका मन और शरीर कितने चपल होते हैं, अुनके जीवनमें अुद्योगीपन कितना अधिक होता है? अैसे बच्चोंको झोलीरूपी पिंजरेका बंधन कितना असह्य लगता होगा? वे कितनी लाचारी और निराशा महसूस करते होंगे? ज्यादातर छोटे बच्चोंको जब झोलीमें डाला जाता है तब वे रो पड़ते हैं। यह किसने नहीं देखा है? परन्तु बच्चा रोता है तब हम अुसे अधिक जोरके झूले लगाते हैं, मरेको मारने जैसी बात करते हैं। अन्तमें हताश होकर, रो-रो कर, थककर चूर होकर बालक सो जाता है। लेकिन हम मान लेते हैं कि झूलेका आनन्द लेकर वह सो गया! झोलीके झूलेका आनन्द तो बच्चे जब जरा बड़े होते हैं, अपने-आप अुसमें चढ़-अुतर सकते हैं, अपने-आप झूले चढ़ा सकते हैं और अुसे बन्द रख सकते हैं तभी लेते हैं। तब तक तो अुनके लिअे वह अेक अत्यन्त तंग पिंजरा ही है।

फिर भी यह सच है कि मांकी गैर-हाजिरीमें बच्चेकी रक्षाके लिअे पिंजरेके बिना काम चल ही नहीं सकता। पिंजरा भले रखिये, परन्तु काफी बड़ा रखिये। पांच-छह हाथ लंबा-चौड़ा और कटहरेसे सुरक्षित छोटा चबूतरा रखिये और अुस पर नरम चटाअी जैसी कोअी चीज बिछा दीजिये, ताकि बच्चेको न तो जमीन चुभे और न वह मिट्टी वगैरा मुंहमें डाले। अुस चबूतरे पर अैसी कोअी चीज न रखिये जो बच्चेको हानि पहुंचाये। अैसा चबूतरा हर बातमें अुसकी रक्षा करेगा और अुसके जीमें किसी तरहकी चहल-पहल करनेकी अिच्छा होगी तो अुसमें किसी प्रकारकी रुकावट नहीं डालेगा।

असलमें जिस चीजमें अितनी आजादी और साथ ही अितनी रक्षा हो, अुसे हम पिंजरा नहीं कहते, परन्तु घर कहते हैं। घरके बंधन पिंजरेकी अपेक्षा काफी लम्बे-चौड़े होनेके कारण अुसमें रहना हमें कठिन नहीं लगता, बल्कि वह आनन्द ही देता है। घर हमारे विकासको रोकता नहीं, परन्तु पोषण देता है। बालकके लिअे

भी अैसा चबूतरा घरकी तरह आनन्द और विकासका साधन बनेगा। हमारे बड़े घरमें अैसा चबूतरा बालकके लिअे छोटासा शिशु-घर ही होगा।

मेरे सुझाये हुअे अिस शिशु-घरसे मिलती-जुलती खोज माता-पिताओंने भी की तो है। वह है हमारा सुन्दर पालना। वह लंबाअी-चौड़ाअीमें झोलीसे बड़ा होता है। अुसमें बच्चेको सिकुड़कर नहीं पड़ा रहना पड़ता। अुसमें बच्चेको हिलने-डुलनेकी अधिक आजादी रहती है। अुसके झटके भी झोली जैसे तेज और परेशान करनेवाले नहीं होते।

परन्तु पालनेमें बच्चोंको शिशु-घर जितना विस्तार तो हरगिज नहीं मिल सकता। अिसी तरह वजन और कीमतमें भी वह भारी पड़ता है। और हम तो राष्ट्रीय दृष्टिसे अर्थात् ग्रामवासियों और अुनके सेवकोंके घरकी दृष्टिसे विचार करते हैं। अिसलिअे मुझे शिशु-घर ही हर प्रकारसे सुन्दर लगता है।

खिलौने नहीं कामकी चीजें

बच्चोंके जीवनमें हमने खिलौनोंको बहुत ही बड़ा स्थान दिया है। अिस पर अब हम नये दृष्टिकोणसे विचार करें। अुनके लिअे खिलौनोंका संसार बना देनेमें हमारा हेतु क्या है? वे हमें तंग न करें, खिलौनोंके साथ खेला करें और अुनमें रमे रहें, यही न? यह हेतु मनमें आना पाप है। अिससे मैं यह नहीं कहना चाहता कि मां-बाप दिनभर काम-धंधा छोड़कर बालकको गोदमें लेकर बैठे रहें। मेरा कहनेका मतलब अितना ही है कि अिस प्रकार हमने केवल अपनी सुविधाकी दृष्टि ही रखी और बच्चोंकी आवश्यकताओंका जरा भी खयाल नहीं किया, अिसलिअे हम सच्चे खिलौने पैदा नहीं कर सके।

हमने अभी तक जो विचार किया है अुस परसे आप समझ सके होंगे कि बच्चे दिनभर जो भी चपलता प्रगट करते रहते हैं, वह अुनके लिअे केवल निरर्थक खेल नहीं है। वे तो हमसे भी कहीं अधिक अुद्योगी, अत्यन्त जिज्ञासु और अत्यन्त अेकाग्र होते हैं। यह बात सच हो तो अुससे यह सार निकलता है कि बच्चोंको खिलौने नहीं चाहिये, बल्कि कामकी चीजें चाहिये।

परन्तु आप कहेंगे कि खिलौने नाम दीजिये अथवा कामकी चीजें — अिससे फर्क क्या पड़ेगा? फर्क क्यों नहीं पड़ेगा? केवल खेलनेकी अर्थात् समय गुजारनेकी दृष्टिसे ही जो चीजें बनाअी जायेंगी अुनमें अद्भुत और बिना सिर-पैरकी पागल कल्पनाअें ही खेलेंगी। भड़कीले रंग, अजीब अजीब आवाजें, व्यंग-चित्रों जैसे बेमेल आकार — अिसी तरहकी बातें हमें सूझेंगी। हम यह मान लेते हैं कि जो बड़ोंको अद्भुत और आकर्षक लगता है वह बच्चोंको भी वैसा ही लगता होगा!

हम लड़कीकी नकल करके पुतली बनाते हैं; गाय या घोड़ेकी छोटी नकल बनाते हैं। मोटर-गाड़ीकी नकलके तौर पर छोटी मोटर बनाते हैं। आजकलके यांत्रिक अुनमें यांत्रिक करामातें भी भर देते हैं। पुतलीका सिर अिधर-अुधर हिलनेवाला बनाते हैं, घोड़ेको कुदाते हैं और मोटर-गाड़ीको कल लगाकर दौड़ाते हैं। मूल वस्तुओंके नाटकके

रूपमें ये खिलौने हमें आकर्षक मालूम होते हैं, परन्तु बच्चोंकी आंखें क्या अभी अितनी खुली होती हैं? वे तो आपके खिलौनोंमें किसी प्रकारका अर्थ नहीं देख सकते। अुनके जीवनमें अनेक प्रयोग और अुद्योग चलते रहते हैं। अुनमें ये चीजें अुनके किसी विशेष अुपयोगमें नहीं आतीं। वे अिन्हें सहलाकर देखते हैं, गिराकर देखते हैं, काटकर देखते हैं और अन्तमें अुन्हें निकम्मी मानकर फेंक देते हैं।

हम तो अपने खिलौनोंको सुन्दर मानकर बार बार अुन्हें बालकोंके सामने रखते रहते हैं। वे नाराज हो जाते हैं तब खुश करनेको अुन्हें खिलौने खेलनेके लिअे देते हैं। अिससे बच्चे और चिढ़ते हैं और अधिक रोने लगते हैं।

खिलौने यदि यांत्रिक करामातवाले होते हैं तो थोड़ी देर बालक अुनकी गति, ध्वनि अित्यादिकी तरफ खिंचते जरूर हैं, परन्तु हमारी तरह 'वाह, कारीगरने कैसी सुन्दर कारीगरी की है!' ये अुद्‌गार प्रगट करके वे प्रसन्न नहीं हो सकते। अुनमें अिस गति, आवाज आदिका रहस्य जाननेकी अिच्छा अुत्पन्न होती है। परन्तु यह अुनकी छोटी बुद्धिके बूतेसे बाहर होता है, अिसलिअे वे निराश होते हैं और अधिक चिढ़ते हैं।

बच्चोंको अपना समय अुपयोगी ढंगसे बितानेके साधन देना जरूरी है, परन्तु अुनकी योजना यह सोचकर बनानी चाहिये कि बालकोंको क्या चीज अच्छी लग सकती है, अुन्हें किस चीजकी जरूरत है। मैं समझता हूं कि बहुत छोटे बच्चोंके लिअे तो 'शिशु-घरों' में कुछ अैसे साधन रखने चाहिये: लकड़ीके छोटे चिकने थंभों जैसे साधन — अलग अलग दो तीन मोटाअियोंके। बच्चोंको अुस अुम्रमें खड़े होने और बैठनेमें बहुत रस होना स्वाभाविक है। ये साधन अुन्हें अिस काममें सहायक होंगे और अिसलिअे हमारी पुतलियों और मोटरोंसे बहुत ज्यादा प्रिय मालूम होंगे। शिशु-घरमें छोटे, नीचे चबूतरे या चौकियां भी रखी जा सकती हैं, जिन पर बच्चे थोड़ी-सी मेहनतसे चढ़कर विजेताके अभिमानसे बैठ सकें।

हम बड़ोंके जीवनका अनुकरण करनेवाले खिलौने अर्थात् हल, गाड़ी, गाय, घोड़ा, पुतली वगैराका समय बच्चे दो-तीन वर्षकी अुम्रमें पहुंचे तब जरूर आता है। अुस अुम्रमें अुनका अवलोकन बढ़ जाता है और हमारे अलग अलग कामकाजको वे कुछ समझने लगते हैं। परन्तु वे सच्चे काम कर सकें अितनी शक्ति अुनके हाथ-पैरोंमें अुस समय तक नहीं आती। अिसलिअे अुन्हें गाड़ी चलाना, गुड़ियाको खेलाना, गायको पानी पिलाना वगैरा कामोंकी नकल करनेकी अिच्छा होना स्वाभाविक है। परन्तु अिन खिलौनोंको यांत्रिक और अपने-आप चलने-फिरनेवाले बनानेसे बालकका मन गलत दिशामें खिंच जाता है। गाड़ी और घोड़ा मोटी लकड़ीके, पहियोंवाले, न टूटनेवाले और रस्सी बांधकर बालक दौड़ते दौड़ते चला सकें अिस प्रकारके सादे होंगे तो अुन्हींसे वे खुश हो जायंगे। खिलौनोंके रूप-रंगमें नहीं परन्तु अुन्हें लेकर दौड़ लगानेमें ही बच्चोंको असली दिलचस्पी होती है।

यह नकल करनेकी अुम्र थोड़े ही महीनोंमें गुजर जायगी, और गुजर जानी चाहिये। जरा आगे चलकर बच्चोंमें सच्चे — हमारे जैसे ही काम करनेकी तीव्र

अिच्छा अुत्पन्न होती है। हमें अुनकी अिस अिच्छाको संतुष्ट करनेके लिअे तैयार रहना चाहिये। अुन्हें पानी भरनेके लिअे छोटे घड़ोंकी जरूरत होगी, जमीन पर चलानेके लिअे छोटे हलकी जरूरत होगी, खाना बनानेके लिअे छोटे चूल्हेकी जरूरत होगी, बुहारनेके लिअे छोटी झाड़ूकी जरूरत होगी। ये कामकी चीजें बच्चे अुठा सकें अितनी छोटी किन्तु सच्चा काम दे सकने लायक होंगी, तो ही बच्चोंको पसन्द आयेंगी।

बालक ६–७ वर्षकी अुम्रमें पहुंचेंगे तब तो अुन्हें अिससे भी आगेका काम करनेवाली चीजोंकी जरूरत होगी; अर्थात् वे हमारे साथ मिलकर हमारे बड़े कामोंमें अपना हाथ आजमानेको तैयार होंगे। वे हमारी गाड़ी पर चढ़ बैठेंगे और हमारे हाथसे रास लेकर बैलोंको हांकने लगेंगे, हमारे पास बैठकर निदाअी करने लगेंगे, हमारे साथ मिलकर सच्चे कपड़े धोयेंगे, छोटे बछड़े-बछड़ियोंको चरायेंगे, नहलायेंगे और घरमें जो भी धंधा होता होगा — बुनाअी, बढ़अीगिरी, कुम्हारकाम — अुसे करनेमें जुट जायेंगे। अुनका काम जब तक खेलके रूपमें होगा तब तक अुनकी आत्माको संतोष नहीं होगा। अब अुन्हें यही देखकर संतोष मिल सकेगा कि हमने सबके साथ काम किया, वह काम करना हमें आ गया और अुसे करके हमने अुपयोगी काममें अपना छोटासा हिस्सा दिया।

अुस समय हम कअी बार अुन्हें दुतकार कर निकाल देते हैं, अपने काममें बाधक समझते हैं और वे हाथ-पैर तोड़ बैठेंगे अिस डरसे अुन पर दया करके अुनका अुत्साह मार देते हैं। और यदि हम साधन-संपन्न और शौकीन हों तो अुनके लिअे गुड़ियों, मोटरों, हवाअी जहाजों, बहुतसे छोटे-छोटे बेकार बरतनों, झूठी चक्कियों वगैराका बड़ा परिग्रह खड़ा कर देते हैं। और जब बहुत खर्च करके लाअी हुअी ये सब चीजें वे खो देते हैं या व्यवस्थित ढंगसे नहीं रखते, तो हम अुन्हें मूर्ख और व्यवस्था-शक्तिसे रहित कहकर डांटते हैं और नसीहतोंके चाबुक लगाते हैं।

आजकी बातोंमें मैंने बालकोंकी कामकी चीजोंके नाम गिनाये हैं। अुनके बारेमें अितना स्पष्टीकरण यहां कर दूं कि जिनका निर्देश हुआ है वे ही कामकी चीजें अुपयोगी हैं और दूसरी कोअी चीजें अुपयोगी नहीं हैं अैसा न समझा जाय। मैंने तो अुदाहरणके रूपमें ही ये नाम गिनाये हैं। मां-बाप अपने-अपने जीवन और धंधोंसे ही जो कामकी चीजें स्वाभाविक रूपमें पैदा की जा सकती हों अुन्हें पैदा कर लें। मैंने जो नाम सुझाये हैं अुनसे अितना तो आप सबने देख लिया होगा कि अिन खिलौनोंके लिअे किसीको बड़े कारखानोंमें आर्डर देनेकी जरूरत नहीं।

आजकी मेरी तमाम सूचनाओंमें अेक संबद्ध सूत्रके रूपमें जो विचार किया गया है अुसे आपने समझ लिया होगा। बच्चोंकी शिक्षाका यह अर्थ नहीं है कि अुन्हें किसी भी युक्ति-प्रयुक्तिसे चुप रखा जाय और हमारे रास्तेमें रुकावट बननेसे रोका जाय। अुसका यह अर्थ भी नहीं कि हमारे घरकी शोभाके लिअे अुन्हें बहुतसे गहनों और कपड़ोंसे लाद दिया जाय तथा निरर्थक खिलौनोंके जंजालमें फंसा दिया जाय। परन्तु सच्ची शिक्षा यही है कि अुनकी आत्मशिक्षाकी जो प्रवृत्तियां कुदरती तौर पर चलती हों

अुन्हें समझकर अुनमें वालकोंकी पूरी मदद की जाय और अुसके लिअे अुन्हें अुचित वातावरण दिया जाय। अिसके लिअे हाथ-पैर आदि अंगोंकी स्वतंत्रता अुनकी पहली जरूरत है। दिनभर विना किसी रोकटोकके छोटे-छोटे काम करनेकी सुविधा अुनके लिअे कर देना, अुसमें प्रोत्साहन देना अुनकी दूसरी जरूरत है। अिसके लिअे अुन्हें कुछ साधनोंकी भी जरूरत रहेगी। परन्तु आपने देखा कि वे वहुत ही सादे और थोड़े हैं। परिग्रहका जाल वढ़ाकर जैसे हमें अपने जीवनका गला नहीं घोंटना चाहिये, वैसे वालकोंके जीवनका गला भी नहीं घोंटना चाहिये।

असलमें वच्चोंको चुप रखने और हमारे कार्योंमें वाधक वननेसे रोकनेका सच्चा अुपाय भी अिसीमें है। अैसी छूट और सुविधा मिलने पर वच्चोंको हमारे कामोंमें रुकावट वननेकी फुरसत ही नहीं रहेगी। वे अपनी प्रवृत्तियोंमें मस्त और आनन्दमग्न रहा करेंगे। हमने अुनकी जरूरतें सचमुच समझ ली हैं और अुन्हें आत्मशिक्षाके लिअे सच्चा वातावरण हम दे सके हैं, अिसका अन्दाज लगानेकी कुंजी यह है कि वालक मस्त और आनन्दी रहें।

प्रवचन ४१

बाल-शिक्षाके बारेमें कुछ और

चुम्बन और आलिंगनकी मर्यादा

वच्चोंके प्रति हमारे व्यवहारके वारेमें आज कुछ और सूचनाअें आश्रम-जीवनकी दृष्टिसे मैं देना चाहता हूं।

अेक वस्तु अत्यन्त महत्त्वकी है। वहुतोंको वच्चोंको गोदमें लेने, अुछालने और अन्य कअी प्रकारसे अुन्हें खिलौनों या पुतलोंकी तरह खेलानेकी आदत होती है। वे समय-समय पर अुन्हें अुठा अुठाकर चिपटा लेते हैं और अुन्हें चूमते भी हैं। मेरा खयाल है कि वच्चोंको देखकर हमें जो भावावेश होता है अुस पर अंकुश रखना चाहिये। वच्चे कोमल होते हैं, नाजुक होते हैं, छोटे और कमजोर होते हैं। अिसलिअे दौड़कर अुन्हें अुठाने और दवानेकी अिच्छा होना सच्चे और शुद्ध प्रेमका लक्षण कभी नहीं कहा जा सकता। बच्चे हमेशा हमारे अैसे वरतावको नापसन्द करते जान पड़ते हैं।

वे वहुत छोटे होते हैं तव तक अैसा वरताव नापसंद करनेका मुख्य कारण यह होता है कि अिससे अुनकी प्रवृत्तियोंमें व्यर्थ वाधा पड़ती है। कितने अेकाग्र मनसे वे किसी अुच्चारणका अर्थ ढूंढ़ते हैं, अथवा किसी वस्तुको अुछालकर और गिराकर पहचाननेकी कोशिश करते हैं! अुसमें हम किसी कारणके विना, अुनकी अिच्छा जाने वगैर, भूतकी तरह अुन पर आक्रमण करते हैं और अुनकी रसपूर्ण प्रवृत्तियोंमें वाधा डालते हैं। अुनकी नापसंदगी जरा भी छिपी नहीं रहती। वे हमारी पकड़से छूटनेके लिअे जी-तोड़ कोशिश करने लगते हैं, अुसका विरोध करने लगते हैं और अन्तमें

रोने लगते हैं। जरा वड़े वच्चोंको तो मान-अपमानके सूक्ष्म भेद भी समझमें आने लगते हैं। अुनके मुंह वगैराके भावों परसे स्पष्ट दिखाअी देता है कि अुन्हें हमारे वरतावसे अपमान होनेका भान भी होता है।

अितनी चेतावनी देनेके वाद और संयम पर जोर देनेके वाद मैं वालकोंके स्वभावका अेक लक्षण आपको वता दूं। वह यह कि अुन्हें हमारी मददकी पग-पग पर जरूरत होती है। हमारी वड़ी दुनियामें वहुत कुछ अैसा होना स्वाभाविक है, जिसे वे अु ा नहीं सकते, लांघ नहीं सकते और समझ नहीं सकते। अिसमें हमें सहानुभूतिपूर्वक अुनकी मदद करनी ही चाहिये। कभी-कभी अुन्हें गोदमें अुठाकर अूपर चढ़ाना और नीचे अुतारना चाहिये, कभी किसी शव्दका अुच्चारण धीमी आवाजसे सिखाना चाहिये।

परन्तु याद रखिये कि जो प्रयत्न अुनके वूतेसे वाहरके न हों अुनमें झूठी दया करके, अुन्हें परिश्रमसे वचानेके अिरादेसे अुनकी मददको हरगिज न दौड़ जाना चाहिये। अैसी मेहनतमें अुन्हें जीवनका सच्चा आनन्द आता है। हमें अनावश्यक हस्तक्षेप करके अुनका विजयका महंगा आनन्द नष्ट न कर डालना चाहिये। ठीक समय पर मौजूद हों तो प्रोत्साहनके शव्दों या हावभावसे अुनका हौसला हम वढ़ायें। अैसे प्रेमभरे प्रोत्साहन और कद्रके वे वहुत भूखे होते हैं। और अुनका भूखा होना कितना स्वाभाविक है? विलकुल छोटे वच्चे अपने शिशु-घरमें थंभे जैसे साधनोंको पकड़ कर महाप्रयत्नसे खड़े हों, फिर भी हम अगर ताली वजाकर अुन्हें ववाअी न दें तो हम कितने अुदासीन कहे जायेंगे? वे चौकी पर चढ़ वैठें तो भी हम अुन्हें प्रेमसे गोदमें न अुठा लें और शावाशीका आलिंगन न करें, तो हम कितने नीरस माने जायंगे? वे भापा-शिक्षणमें अेकाव सुन्दर शव्द या प्रयोग काममें लें और हम अुनकी तरफ ध्यान भी न दें, तो अुसमें वालकोंकी दिलचस्पी क्यों न अुड़ जायगी? वे अपनी नकली गायका झूठा दूव दुहकर हमें पिलाने आयें और हम अुसे झूठमूठ पीकर अुनके नाटकका अंतिम अंक खेलकर न वतायें, तो हम वालकोंका जी कितना खट्टा कर ेंगे?

वालक कोअी तीन वर्षकी अुम्रके हों, तव तक विजयके अैसे प्रसंगों पर हम वड़ोंको अुन्हें अनेक प्रकारसे प्रोत्साहन देना चाहिये। ताली वजा कर, पीठ थपथपा कर अुन्हें शावाशी देनी चाहिये और अुनकी प्रवृत्तियोंमें अत्यंत ज्वलंत विजयके प्रसंग देखें तव तो हमारा प्रेम अितना अुमड़ना चाहिये कि गोदमें लेकर अुनका आलिंगन न करें तव तक अुनकी पूरी कद्र करनेका हमें सन्तोप ही न हो। वच्चोंके प्रति हमारा व्यवहार हमेशा सभ्य, शिष्ट और दवा हुआ ही रहे यह ठीक नहीं। कुछ प्रसंगों पर वे खिलखिला कर हंस पड़ते हैं, आकर हमसे चिपट जाते हैं और आशा रखते हैं कि हम भी अुतनी ही अुमंगके साथ अुनका स्वागत करें।

परन्तु वे जरा वड़े हो जायं और भिन्न भिन्न प्रकारके कामोंमें दिलचस्पी लेने लगें, तव हमारी अुमंग और अुत्साह यहीं न रुकना चाहिये। तव ये भाव दूसरे ही ढंगसे प्रगट होने चाहिये। अव हमें अलग अलग कामोंकी खूवियां और कलायें अुन्हें

धीरज और प्रेमसे सिखानी चाहिये। भिन्न-भिन्न वस्तुओंके गुण-धर्म और भाषाके भेद अुनके सामने प्रेमसे खोलकर दिखाने चाहिये। अुनके टूटे-फूटे प्रश्नोंको कभी हंस कर न अुड़ाना चाहिये, बल्कि प्रेमसे अुनके अुत्तर देने चाहिये।

कअी बार हम अधूरे और बनावटी जवाब देकर बच्चोंको गड़बड़में डाल देते हैं। कभी कभी हम कह देते हैं कि दातुन किये बिना खानेसे पाप लगता है और यह अपेक्षा रखते हैं कि बालक श्रद्धालु बनकर हमारी बात मान लेगा। सच पूछा जाय तो यह बालकको अश्रद्धालु बनानेका अुपाय है। अैसे संक्षिप्त स्पष्टीकरण हम अिसीलिअे देते हैं कि हमें विस्तारसे अुत्तर देनेमें रुचि नहीं होती। परन्तु बच्चे पर यदि हमारा भीतरी प्रेम अुमड़ता हो, तो अुसे कोअी भी बात सिखानेमें हमें अरुचि क्यों होनी चाहिये? अुलटे अेक प्रकारका अलौकिक आनन्द ही होना चाहिये।

स्वच्छता और स्वास्थ्य

दो बातोंमें बालकोंका संपूर्ण आधार मां-बाप और बड़ों पर होता है: (१) स्वच्छता और (२) स्वास्थ्य। हम बच्चोंकी शिक्षाकी दूसरी जिम्मेदारियां न अुठा सकें तो शायद अीश्वर हमारा कसूर माफ कर देगा, लेकिन अिन दो मामलोंमें हम बच्चोंको दुःखी होने देंगे तो कभी क्षमाके पात्र नहीं माने जायेंगे।

हमारा यह कारण अीश्वरके दरबारमें कदापि नहीं माना जायगा कि हम गरीब थे अिसलिअे, अथवा अज्ञानमें थे अिसलिअे, या पराधीन थे अिसलिअे, हम अपने बच्चोंको स्वच्छ और स्वस्थ नहीं रख सके। हमसे अेक अत्यंत कठोर प्रश्न पूछा जायगा — "तुम अैसे थे तो बच्चोंके माता-पिता बननेमें तुम्हें शर्म क्यों नहीं आअी?"

अिस मामलेमें हम गांवोंमें क्या परिस्थिति देखते हैं? वहां बालकोंको साफ रखनेकी कला ही माता-पिता जानते मालूम नहीं होते, और अिसके लिअे अुनके पास समय और पानी जैसे साधन भी काफी मात्रामें नहीं होते। अिसलिअे बच्चे खाज-खुजली और दाद वगैरासे हमेशा पीड़ित रहते हैं। अुनकी आंखें आयी हुअी रहती हैं, कानोंसे पीव बहा करता है, नाकमें घाव पड़ जाते हैं। अुनके सिरमें जूंके ढेर हो जाते हैं और मैलकी पपड़ी जम जाती है। अुन्हें गंदी जमीन पर और गंदी गुदड़ियोंमें रखा जाता है, और बिलकुल मैले कपड़े पहनाये जाते हैं।

अैसी स्थितिमें पलनेवाले बालकोंको अिस दुनियाका अीश्वरके आनन्द-लोकके रूपमें परिचय ही नहीं होने पाता। वे अिस दुनियाको दुःखभूमि और नरकवासके रूपमें ही देखते हैं। अिस स्थितिमें अुनके त्रस्त मनमें अूंचे विचार और अुदार संस्कार कैसे पैदा हो सकते हैं? अुनके जीवनमें अुत्साह, आनंद और स्फूर्ति कहांसे आ सकती है?

आश्रमवासी बहनें अपने बालकोंको स्वच्छ रखनेका कुल मिलाकर अच्छा प्रयत्न करती हैं, यह हमें स्वीकार करना चाहिये, और अिसके लिअे हम अुन्हें धन्यवाद देते हैं। वे ग्रामवासी बहनोंकी अपेक्षा अच्छी सुविधाअें भोगती हैं। हमें आश्रममें पानीकी काफी सुविधा रहती है। और बहनें अपने कार्यक्रमोंमें बच्चोंको संभालनेके कामको आग्रहपूर्वक स्थान देती हैं। यह सुविधा अुन्हें न मिल सके तो वे अपने पतिसे आश्रमका

काम छुड़वा ेंगी; परन्तु वालकोंको अस्वच्छ रखनेको हरगिज तैयार न होंगी। माताओंके लिअे अैसा आग्रह और अैसा हठ रखना वड़ी तारीफकी वात है। ग्रामवासी वहनें भी यदि अैसा आग्रह रखें, तो अपनी कठिन परिस्थितिमें भी वे वालकोंको अधिक स्वच्छताका लाभ प्रदान कर सकती हैं।

सफाअीके मामलेमें आश्रमकी वहनें जिस तरह धन्यवादकी पात्र हैं, अुसी तरह वे अपने वच्चोंकी तन्दुरुस्तीके वारेमें भी धन्यवादकी पात्र हैं, अैसा सव वहनोंके लिअे नहीं कहा जा सकता। अिसका कारण यह नहीं है कि अुनमें अिच्छाका अभाव है, वल्कि यह जान पड़ता है कि आरोग्य-सम्वन्धी सिद्धान्तोंका अुन्होंने पूरी तरह विचार नहीं किया है।

वच्चोंकी खुराकके वारेमें अक्सर अुनके विचार कच्चे मालूम होते हैं। वड़ोंको जिन अस्वास्थ्यकर खाद्योंको — तले हुअे, तीखे, चरपरे पदार्थों और अत्यंत मीठी गरिष्ठ मिठाअियोंको — स्वादिष्ठ माननेकी आदत पड़ जाती है, वे ही वच्चोंको भी कअी वार मोहवश खिलाये जाते हैं। कअी वार माताअें वालकोंको जरूरतसे ज्यादा भी खिलाती हैं। खाने-पीनेके मामलेमें मां-वाप अपनी जीभकी कमजोरीको जीत नहीं पाते, अुसीका यह परिणाम है। वच्चोंके पालन-पोषण पर हमारी यह कमजोरी जो भयंकर असर करती है, अुसे देखकर भी हमें चेतना चाहिये और अपनी कमजोरीको जीतना चाहिये।

अिसके अलावा, माताओंको वालकोंके सामान्य रोगोंके वारेमें आधे वैद्य और शरीर-शास्त्री वन जाना चाहिये। फिर भी वहनें अिस विषयका वहुत ही थोड़ा ज्ञान रखती हैं। परिणामस्वरूप वच्चे न पचनेवाली भारी खुराक खा-खाकर और वह भी आवश्यकतासे अधिक मात्रामें खाकर अपना स्वास्थ्य गंवा वैठते हैं, अुन्हें सदा दस्त लगते रहते हैं, वुखार आता रहता है और अुनका शरीर क्षीण होता रहता है।

भोजनके वाद स्वास्थ्य पर असर करनेवाले तत्त्व हैं खुली हवा और व्यायाम। माताअें अिस मामलेमें भी सही विचार न जाननेके कारण वहुधा वालकोंको वहुत ज्यादा कपड़ोंमें लपेटे रहती हैं और अुन्हें खुली हवा और प्रकाशसे वड़ी मात्रामें मिलनेवाले स्वास्थ्यके लाभसे वंचित कर देती हैं।

अिसके सिवा, अुन्हें सयाने और समझदार तथा सभ्य वनानेके अुत्साहमें और ज्यादातर अिस चिन्तामें कि अुन्हें पहनाये हुअे कपड़े मैले न हो जायं, माताअें अुनकी दौड़ने-कूदने वगैराकी प्रवृत्तियोंको दवानेकी ही हमेशा कोशिश करती हैं। अिन प्रवृत्तियोंका रहस्य न समझनेके कारण वे वालकोंकी प्रवृत्तिको अूधम और जंगलीपन मानती हैं और अिनसे अुन्हें मुक्त रखनेमें ही सच्ची शिक्षा समझती हैं।

अिन सव कारणोंसे वालकोंके जीवनमें चलनेवाली विविध प्रकारकी आत्मशिक्षा रुक जाती है और सवसे वड़ा नुकसान तो यह होता है कि अुनका स्वास्थ्य स्थायी रूपमें विगड़ जाता है। अिसका असर अुनके जीवन पर, अुनके विचारों पर, स्थायी छाया फैला दे तो कोअी आश्चर्य नहीं। आश्रममें माताअें स्वास्थ्य-रक्षाके वारेमें सही विचार समझ लें तो कितना अच्छा हो?

सेवक अपने बच्चोंको कैसे रखें, कैसी शिक्षा दें, अिस विषयमें मोटे मोटे सुझाव आज मैंने आपके सामने रखे हैं। अैसी और भी बहुतसी बातें विचारणीय हैं। अुदाहरणके लिअे, बच्चोंको साधुओं अथवा सिपाहियोंका डर दिखानेकी आदत, अुन्हें सजा देने और गालियां देनेका बुरा रिवाज और बहुत छोटी अुमरमें पढ़ने-लिखनेका छन्द लगा देनेका आग्रह ये सब प्रश्न महत्त्वके होने पर भी हमारी आश्रमकी हवामें अुनकी लम्बी चर्चा करनेकी जरूरत नहीं। हम सब अिसे समझते हैं और काफी हद तक अिस पर अमल भी करने लगे हैं।

मेरे सुझावोंमें से अनेक विचार आपको नये लगेंगे। कुछ विचार हमारे देशके पुराने संस्कारोंके अनुसार हैं। परन्तु मैंने जो कुछ कहा है अुसका बड़ा भाग नये विज्ञान पर आधारित है। हमारे पुराने लोगोंको अिन वस्तुओंका पूरा खयाल नहीं हुआ था अथवा गलत खयाल था। खिलौनोंके बारेमें, बच्चोंको गोदमें लेने और अुनका आलिंगन करनेके बारेमें मैंने जो कुछ कहा है, अुसमें से बहुत कुछ पुराने लोगोंने अिस ढंगसे सोचा हो अैसा नहीं मालूम होता। परन्तु हम अिसकी चिन्ता क्यों करें कि वह पुराना है और यह नया है? सत्य क्या है, हमारी तालीम पाअी हुअी बुद्धि किसे स्वीकार करती है, अितनी चिन्ता रखें तो बस है। अैसा करके हम पुराने रीति-रिवाजोंका अथवा पूर्वजोंका अपमान करते हैं, यह मानना भूल है। क्या हमारे पूर्वज सत्य और ज्ञानके पुजारी नहीं थे? आप यह श्रद्धा रखिये कि जब तक हम भी सत्य ज्ञानके पुजारी रहेंगे, तब तक अुनके सुपात्र वारिस ही माने जायंगे।

बालकोंकी शिक्षाके बारेमें ये सब सुझाव दो अुद्देश्योंसे दिये गये हैं:

हमारे आश्रमके बालक सुखी और संस्कारी बनें, हम सेवकके नाते अपनी सेवाका लाभ अुनको भी दें — यह हमारा पहला और निकटका अुद्देश्य है।

हमारा दूरका अुद्देश्य ग्रामवासी माताओंमें बाल-संगोपनका सच्चा ज्ञान फैलाना है।

किसी भी प्रकारके लोक-शिक्षणके लिअे हम पढ़े-लिखोंको अेक ही अुपाय करते आता है — भाषण देना और पत्रिकाअें छपवाना। पर अिस काममें यह अुपाय बहुत कम सफल हो सकता है। अुत्तम अुपाय तो यह है कि हम आश्रमोंमें बालकोंको सही तरीकेसे शिक्षा दें तथा अुनके साथ सच्चे सिद्धान्तोंके अनुसार व्यवहार करें। जैसे फूलकी सुगन्धको वायु अपने-आप बहाकर ले जाती है, वैसे ही जिन सिद्धान्तोंको हम अपने जीवनमें अुतारेंगे, वे अपने-आप ग्राम-जीवनमें पहुंच जायंगे।

आश्रम अेक प्रयोगशाला है। हम लोगोंमें जो सुधार करना चाहें, जिन सिद्धान्तोंका प्रचार करना चाहें, अुन्हें हम आश्रमकी प्रयोगशालामें पकाकर तैयार करें; फिर अुनके प्रचारकी चिन्ता करनेकी हमें कोअी जरूरत नहीं रहेगी। आचरणमें आये हुअे विचार स्वयं ही अपना प्रचार कर लेंगे।

प्रवचन ४२

लड़के-लड़कीका भेद

हम पिछले तीन दिनसे वालकों और अुनकी शिक्षाका विचार कर रहे हैं। अेक और वहुत महत्त्वका विचार न कर लें तव तक यह विषय पूरा नहीं होगा। वह है लड़के-लड़कीके वीच भेद रखनेका। यह भेद पाप है, अीश्वर द्वारा हमें सौंपे हुअे वालकोंका भारी द्रोह है, अैसा हम सव मानते हैं। फिर भी यह अितना पुराना है, हमारे रोम-रोममें अिस तरह रम गया है कि हमारे वरतावमें अुसका जहरीला असर समय-समय पर दिखाअी दिये विना नहीं रहता। हमारी प्यारी लड़कियोंके जीवनको यह भेद विलकुल दुखी कर डालता है। अिससे लड़कियोंके जीवन अूंचे हो जाते हैं, सो वात भी नहीं। अिस भेदसे लड़कियोंके जीवन सूख जाते हैं, कुम्हला जाते हैं और लड़कोंके जीवन गंदे हो जाते हैं, सड़ जाते हैं।

लड़कों और लड़कियोंके वीच हमारे समाजमें जो भेदका व्यवहार किया जाता है, अुसकी गन्धको भी हमारे आश्रममें अथवा घरमें प्रवेश न करने देना चाहिये। लड़का सौभाग्यका चिह्न है और लड़की दुर्भाग्यका, यह समझ लोगोंकी रग-रगमें अितनी गहरी पैठ गअी है कि शिक्षित माता-पिता भी अिससे विलकुल अछूते नहीं रह सकते। और हम आश्रमवासी भी वुद्धिसे अैसे भेदको पाप माननेके वावजूद व्यवहारमें अुससे वच सकते हैं, यह साहसपूर्वक नहीं कह सकेंगे।

यह पापपूर्ण विचार न जाने किस कारणसे दुनियाके सव लोगोंमें घर कर वैठा है! पुरुष अधिक वलवान होनेके कारण घरमें मालिकका स्थान भोगता है और स्त्री पर हुकूमत करता है, अिसलिअे क्या लड़केका सम्मान अधिक होता है? लड़का वापका वारिस वनकर अुसका नाम चलाता है और श्राद्ध करके वापके लिअे स्वर्गका मार्ग खुला कर देना अुसके हाथमें है, अिसलिअे क्या अुसकी अिज्जत ज्यादा होती है? भले कुछ भी कारण हो अथवा अैसे कअी कारण अिकट्ठे हो गये हों, परन्तु भेदका विष समाजकी नस-नसमें फैला हुआ है।

लड़कीका जन्म होनेका पता चलते ही घरमें सवका मुंह अुतर जाता है और वे जन्म देनेवाली अभागी मांके प्रति तिरस्कारका भाव या अधिक हुआ तो दयाका भाव दिखाये विना नहीं रह सकते। लड़कीको जन्म देनेवाली माताकी सेवामें भी तुरन्त फर्क पड़ जाता है।

और अुसके वाद अुस वदनसीव लड़कीके सारे लालन-पालनमें यह जहर हमेशा ही दिखाअी देता है। लड़कीको दूध आदि पौष्टिक खुराक कम दी जाती है। लड़की पर यह असर डाल दिया जाता है कि 'मुझे दूध नहीं भाता' कहना ही लड़कियोंको हमेशा शोभा देता है। अुनकी वीमारी पर कम ध्यान दिया जाता है।

अुनके बारेमें यह मान लिया जाता है कि वे जंगली घासकी तरह बिना चिन्ता किये बढ़ती रहती हैं।

लड़कियोंकी शिक्षा पर भी कम ध्यान दिया जाता है। गंभीरतापूर्वक यह तर्क किया जाता है कि अुन्हें कहां नौकरी करने जाना है जो पढ़ाया जाय? अथवा अिस दृष्टिसे और अितनी-सी बातके लिअे अुन्हें पढ़ाया जाता है कि आजकलके जमानेमें मध्यम वर्गकी लड़कियोंकी पढ़ाअी बढ़ती जा रही है और अुससे वर मिलनेमें आसानी होती है।

कामकाजके मामलेमें लड़कियोंको बहुत ही छोटी अुम्रमें घरके कामोंमें लगा दिया जाता है। वे बिलकुल बच्ची हों तभीसे अुन्हें घरमें जो खाना दिया जाता है अुसमें अैसी वृत्ति रखी जाती है मानो खाना खिलाकर अुन पर मेहरबानी की जा रही हो। यह विचार रखनेमें शर्म नहीं महसूस की जाती कि अुनसे खाना-खर्चका मुआवजा मजदूरीके रूपमें जल्दीसे जल्दी वसूल कर लिया जाय।

यह तो आप जानते ही हैं कि मैंने बालकों और बड़ों, दोनोंके लिअे शरीर-श्रम और कामकाजको सच्ची शिक्षाका साधन बताया है। अिस प्रकार अिस रिवाजसे लड़कियोंको, हमारा अिरादा न होने पर भी, अनजाने सच्ची शिक्षाका गुप्त लाभ मिल जाता है। हम देखते हैं कि अिसके फलस्वरूप लड़कियां भिन्न भिन्न प्रकारके काम करनेमें बहुत अच्छी कुशलता, कला और चपलता प्राप्त कर लेती हैं और लड़के ठोट रह जाते हैं।

परन्तु काम तो बेगार भी हो सकता है और शिक्षा भी हो सकता है। वह किस दृष्टिसे दिया जाता है, अिस पर सारा आधार रहता है। क्या हम यह कह सकेंगे कि घरमें लड़कियोंको हम शिक्षाकी दृष्टिसे काम देते हैं? यह दृष्टि हो तब तो अिस अुम्रमें कितने प्रेमसे, कितनी नरमीसे, भार लगने दिये बिना, अुन्हें काममें लगाना चाहिये और ममतासे अपने समयका बलिदान करके अुन्हें वे काम सिखाने चाहिये? क्या हम लड़कियोंको अिस तरह शिक्षा देते हैं?

हमें तो घरके कामकाजमें अुनसे तुरन्त हिस्सा लेना है। अिसलिअे हम अुन पर कामका बूतेसे ज्यादा बोझ डालते हैं। टोक टोककर अुनसे मेहनत कराते हैं। अुन्हें नया काम सिखानेमें भी हम जेलकी प्रणाली—अर्थात् डांट-फटकार और डण्डेका तरीका—ही अख्तियार करते हैं। अैसे बरतावसे लड़कियोंमें कुछ कुशलता तो आती है, परन्तु अुनकी आत्मा बचपनसे रुंध जाती है।

लड़कियोंके प्रति हमारी यह दृष्टि अुनके विवाह करनेमें भी अुनके सच्चे हितका विचार नहीं करने देती। लड़कियां बड़ी हो जायंगी तो अुनकी पवित्रताकी रक्षा नहीं हो सकेगी और दुनियामें बदनामी होगी, अिस डरसे अुन्हें छुटपनमें ही ब्याह दिया जाता है। अिससे बचपनमें ही अुनके जीवनका शिक्षाका द्वार बन्द हो जाता है। बहुतसे माता-पिता तो खुले आम अुनका विक्रय करते हैं और अच्छी कीमत पानेके लिअे बूढ़े या बीमार आदमीके साथ अुनका ब्याह कर देते हैं।

जिन्हें मां-बापके घरमें अुपरोक्त व्यवहार मिला हो, अुनके लिअे ससुरालमें अच्छे व्यवहारकी आशा कैसे रखी जा सकती है? अुनमें से कोअी बेचारी आगे चलकर विधवा हो जाय, तो सब अुसकी तरफ अिस तरह देखने लगते हैं, मानो सारी दुनियाके अनिष्ट और अपशकुन अुसके अभागे शरीरमें अिकट्ठे हो गये हैं। वह सामने मिल जाय तो लोग अपशकुन मानते हैं। घरमें बच्चोंको सिखाया जाता है कि सुबह सुबह अुसका मुंह न देखा जाय। अुसे सब शुभ कामोंसे दूर रखा जाता है। अुसके निर्वाहकी भी परिवारमें अच्छी व्यवस्था नहीं होती। तिरस्कारसे अुसके सामने रोटीका टुकड़ा फेंका जाता है और कड़ी मेहनत कराकर अुसे कुचल डाला जाता है।

अुदाहरण देकर साबित किया जा सकेगा कि कुछ बहनें अैसी स्थितिमें भी अपना तेज प्रगट कर सकती हैं। परन्तु अिन अपवादोंसे अैसी बहनोंकी प्रबल आत्माका ही प्रमाण मिलेगा। अिससे हम अपनी बहनोंके प्रति होनेवाले अन्यायपूर्ण व्यवहार पर स्वीकृतिकी मुहर हरगिज नहीं लगा सकते।

लड़कियोंको दुर्भाग्यका चिह्न माननेकी गलत कल्पना पर चलकर हम सचमुच कितना बड़ा पाप कर रहे हैं! अिससे लड़कियोंका जीवन जन्मसे मृत्यु-पर्यंत दुःख और तिरस्कारकी अग्निमें जलता है। साथ ही लड़कोंका जीवन भी दूषित होता है।

कोअी मूर्ख मनुष्य अपने आधे शरीरको सहलाये और दूसरे आधेको काटकर और जलाकर कष्ट दे, तो परिणाम क्या होगा? क्या अुसके सताये हुअे अंग ही दर्द करेंगे? क्या अुसका तमाम शरीर बीमार और निकम्मा नहीं हो जायगा? और अुसके सहलाये हुअे अंग भी दुःखके भागी नहीं होंगे? लड़कियोंके प्रति अपमान और तिरस्कार प्रगट करनेसे लड़कोंकी अपने-आप अेक प्रकारकी खुशामद होने लग जाती है। अुन्हें मुंह लगाया जाता है। अुनके जीवन पर अिसका खराब असर हुअे बिना कैसे रहेगा?

लड़कोंको बचपनसे ही कामकाजमें दिलचस्पी लेनेसे दूर रखा जाता है और अुन्हें बचपनसे ही यह मानना सिखाया जाता है कि काम करना लड़कियों, नौकरों और नीचे दर्जेके लोगोंका काम है। संसारके लोग आज जो दुःख भोग रहे हैं, अुसके मूलमें अिस जहरके सिवा और क्या है? लोग आज कामकाजको हलका समझते हैं, अपने भोग-विलासका भार दूसरोंके सिर पर रखना चाहते हैं। अिस जुल्मकी मात्रा जब असह्य हो जाती है तब विद्रोह और मारकाट होती है।

आश्रमोंमें सेवाकी शिक्षा पानेवाले हम लोगोंके जीवनमें भी अिस अन्यायका जहर दिखाअी देता हो, लड़के-लड़कियोंके बीच व्यवहारमें सूक्ष्म भेद भी आ जाता हो, तो अिसे हमारी शिक्षा पर सचमुच बड़ा लांछन समझना चाहिये। हमें खूब जाग्रत रहना चाहिये और अिस पापकी जरा-सी छायाको भी सहन न करना चाहिये।

यह समझकर कि खास तौर पर बाल्यावस्थामें किये जानेवाले भेदका जहर बहुत ही गहरा और जिन्दगी भर बना रहनेवाला असर डालता है, यह सावधानी रखना जरूरी है कि लड़कियोंकी बाल्यावस्थामें तो अुनके प्रति भूलकर भी भेदभाव न रखा

जाय। हम अिस भ्रममें हरगिज न रहें कि छोटा बच्चा प्रेम, तिरस्कार अथवा भेद-भावको नहीं समझता।

खाने-पीनेके मामलेमें तो मां-बापको लड़के-लड़कीके बीच भेद करना ही नहीं चाहिये। मनुष्यके जीवनमें खाने-पीनेकी बात अैसी है कि अुसमें किये जानेवाले भेदभावका असर बहुत ही दुःखजनक होता है। यह वस्तु दिखनेमें तुच्छ लगती है, परन्तु अुससे मनुष्यका खाने-पीनेका रस नष्ट हो जाता है, अैसे घरमें रहना अुसके लिअे कठिन हो जाता है और भेदभाव करनेवालेके लिअे अुसके मनमें गहरा रभाव जम जाता है। छोटे बच्चों पर तो अिसका असर कोमल पौदों पर पाला पड़ने जैसा ही होता है। सौतेली मांके हाथों पलनेवाले बालकोंके जीवन कैसे गमगीन, नीरस और जहरीले बन जाते हैं, यह कौन नहीं जानता? अिसकी जड़में भेदभाव ही होता है न? लड़कियोंके मामलेमें सगी माताअें ही सौतेली माताओंकी तरह बरताव करें, यह कितना भयंकर है?

पुत्रियां भी पुत्रोंकी तरह हमारी ही हैं। वे भी हमारे प्रेम और आदरकी अुतनी ही हकदार हैं। युगोंसे हमने अुनके अिस हकको ठुकराया है। अिसलिअे वे आज हमारे प्रेम और सेवाकी अधिक हकदार बन गअी हैं। अुन्हें सुन्दर शिक्षा दी जाय तो वे भी पुत्रोंकी तरह ही हमारे लिअे कुल-दीपक सिद्ध होंगी, पुत्रोंकी तरह ही भारतमाताकी सुयोग्य सेविकाअें निकलेंगी।

प्रवचन ४३

बच्चोंको पाठशाला क्यों न भेजा जाय?

आश्रमके बालकोंकी बचपनकी शिक्षाका विचार हमने कर लिया। यही बालक जरा बड़े हो जायं, तब अुनकी पढ़ाअीका क्या प्रबन्ध किया जाय? सेवकोंके सामने यह प्रश्न हमेशा ही खड़ा होता है और अुन्हें अनेक दिशाओंसे परेशान करता है। किसीके अपने लड़के-लड़की होंगे, किसीके भाअी-बहन होंगे। अिस प्रकार किसी न किसीकी पढ़ाअीकी जिम्मेदारी अुन पर अवश्य होगी। अिसे वे कैसे पूरा करें? आम तौर पर लोग लड़के-लड़की पांच वर्षके हुअे कि अुन्हें गांवकी पाठशालामें बैठा देना अपना फर्ज समझते हैं। सेवकका कर्तव्य क्या अितनी आसानीसे पूरा किया जा सकेगा? बहुतसे सेवक और आश्रमवासी यह पाठशालाका राजमार्ग ही अपनाते हैं। फिर भी हम तो आश्रम-जीवनके सिद्धान्तोंके अनुसार ही चलना चाहते हैं। ये सिद्धान्त हमें अिस कर्तव्यके संबंधमें क्या कहते हैं?

बालकके पांच वर्षका होते ही अुसे पाठशालामें भरती करानेका रिवाज चला आ रहा है, मगर हमारे विचारोंके अनुसार यह अुम्र बालक या बालिकाको पाठशालामें बैठानेके लायक नहीं है।

अुन्हें पाठशालामें न बैठानेका यह अर्थ हरगिज न लगाया जाय कि अुन्हें शिक्षा न दी जाय। शिक्षा तो जन्मसे ही शुरू कर देनी है। वह कैसी हो, अिसका दिग्दर्शन मैंने पिछले चार-पांच दिनमें विस्तारसे कराया है। अुसमें पांच-सात वर्षकी अुम्रके बालकोंकी शिक्षाके भी कुछ पहलुओं पर हमने विचार किया है।

अुन्हें अिस अुम्रमें हमारे साथ रहकर हमारे अनेक कामोंमें भाग लेनेकी तीव्र अिच्छा अुत्पन्न होती है। हाथ-पैर और अिन्द्रियों पर अुनका काफी काबू हो चुकता है, अिसलिअे बड़ोंकी तरह सच्चे काम करनेकी लगन पैदा होना स्वाभाविक है। पानी भरना, झाड़ू लगाना, बरतन मलना, कपड़े धोना, रोटी बनाना, आटा पीसना, अनाज फटकना और झाड़ना — घरके ये तमाम काम सीखने और अुनमें सच्चा हिस्सा लेनेकी अुमंग और चटपटी अुनके मनमें होती है। अिसी प्रकार हमारे दूसरे धन्धे — खेतमें जाना, नींदना, गोड़ना, पेड़ोंको पानी पिलाना, खेतोंमें पक्षी अुड़ाना; अथवा चरखा और करघा चलाना, अुनकी कुकड़ियां भरना; अथवा हमारे घरमें जो भी अुद्योग चलते हों अुनके अलग अलग अंगोंमें साथ देना; घरमें गाय, बैल वगैरा पशु हों तो अुन्हें पानी पिलाना और चराने ले जाना, छाछ बिलोना, गाड़ी हांकना; — अिन सब कामोंमें भी बड़ोंके साथ लग जानेकी वृत्तिको बालक अिस अुम्रमें किसी तरह रोक नहीं सकते। आप देख सकेंगे कि मैंने ये जो बहुतसे काम गिनाये हैं और दूसरे बहुतसे जो काम मां-बाप अपनी-अपनी परिस्थितियोंके अनुसार सोच सकेंगे, अुन सबमें अिन बालकोंको कितनी सुन्दर शिक्षा मिल सकती है! कहां अिनसे मिलनेवाली तालीम और कहां पाठशालाकी पढ़ाअी? पाठशालाओंमें अुन्हें लिखने, पढ़ने और गिननेकी यांत्रिक प्रक्रियाओंमें घंटों लगाने पड़ते हैं। न तो वहां हाथ-पैरोंको खुराक मिलती है, न आंख-कानको मिलती है और न दिमागको मिलती है। छोटे-छोटे कारकुन बनाकर अुन्हें कमरोंमें बैठा दिया जाता है और हलचल या विनोद करें तो अुसे अूधम मानकर डांट पिलाअी जाती है। अिन पाठशालाओंको सुधार कर कितना ही अच्छा बना दिया जाय, तो भी अिस समृद्ध और विविध शिक्षाका प्रबंध वहां नहीं हो सकता।

हमारे सेवकोंमें से कुछकी यह कल्पना होती है कि गांवकी पाठशालाओंमें शिक्षक अच्छे नहीं होते, पुस्तकें हमारी पसंदकी नहीं रखी जातीं, स्वच्छ और नीरोग वातावरण नहीं होता, आवारा लड़कोंकी संगतिसे हमारे बच्चोंको गालियां देने आदिकी अनेक बुरी आदतें लग जाती हैं, हम जैसा चाहते हैं वैसा राष्ट्रीय वायुमण्डल वहां नहीं होता, अिसलिअे वे पाठशालायें खराब हैं और अुनमें अपने बच्चोंको नहीं भेजना चाहिये; और जब तक ये पाठशालायें संतोपजनक रूपमें न सुधरें, तब तक आश्रमके बालकोंकी पढ़ाअीके लिअे हमारे विचारोंके अनुसार चलनेवाली विशेप राष्ट्रीय पाठशालाअें खोलनी चाहिये।

परन्तु अुन्हें कितना ही क्यों न सुधारें, वे अिन बालकोंकी सारी भूख बुझा नहीं सकतीं। असलमें तो अिस अुम्रमें बालकोंकी शिक्षाके लिअे पाठशाला-प्रणाली ही

निकम्मी चीज है। बालकोंकी आत्मा तो हमारे विविध कामोंकी ओर आकर्षित होती है। अिन कामोंको सीखने और हमारे साथ मिलकर अिन्हें करनेके लिअे अुनके तन-मन अिस समय अत्यंत अुत्सुक होते हैं। पाठशालाओंमें कितना ही सुधार किया जाय या अुनमें राष्ट्रीय पाठ्यपुस्तकें भी क्यों न चलाअी जायं, तो भी वे अिन सब कामोंका प्रबंध कैसे कर सकती हैं? और शिक्षक कितने ही अच्छे हों तो भी गांवके अितने बालकोंकी जिज्ञासाको वे कैसे सन्तुष्ट कर सकते हैं? बने हुअे मकानके छप्परके नीचे बगीचा लगाया जा सके तो ही पाठशालामें अिन बच्चोंको शिक्षा दी जा सकती है। छप्परके नीचे बगीचा लग ही नहीं सकता। चौकोर छप्परको तोड़कर लम्बा छप्पर बांधें तो भी बगीचा कैसे लगेगा? अिसके लिअे तो छप्परको तोड़कर खुला मैदान करना ही जरूरी है। अिस अुम्रमें बच्चोंकी सच्ची पाठशाला हमारा अपना घर और हमारे अुद्योग ही हैं।

यह सही है कि मां-बाप और बड़ोंको बच्चोंके प्रति अब तककी अपनी रीति-नीति बदलनी पड़ेगी। अुन्हें अपनेमें शिक्षकके जैसा धीरज और सिखानेका रस पैदा करना होगा। जैसे बच्चोंके पालक-पोषक बनना माता-पिताका स्वाभाविक धर्म है, वैसे अुनके शिक्षक बनना भी अुनका अीश्वर-दत्त धर्म है।

परन्तु वे तो बालक जब भीतरी अुत्साहसे प्रेरित होकर काम करने आते हैं, तब अुन्हें अूधमी, अुत्पाती और बाधक मानकर दुतकार देते हैं; हंसकर अुनका स्वागत नहीं करते, प्रेम और धीरजसे अुन्हें काम करनेकी कला नहीं सिखाते। जिन्हें अपने प्यारे बच्चोंके लिअे कुछ मिनटका त्याग करनेमें आनन्द नहीं आता, परन्तु जो अुन पर आंखें निकालते हैं, अुन्हें डांटते हैं और अितनेसे बच्चे भाग न जायं तो अुन्हें पीटते भी हैं, वे अपने अीश्वर-दत्त शिक्षक-धर्मका पालन न करनेका पाप करते हैं।

बच्चोंकी अुस समयकी हलचलोंको सहानुभूतिसे समझनेका प्रयत्न करें तो मां-बाप क्या देखेंगे? बच्चे आन्तरिक स्फूर्तिसे विवश होकर कामकाज ढूंढ़ते हैं — जैसे मधुमक्खियां फूल ढूंढ़ती हैं। अुनकी मूल अिच्छा हमारे चालू कामोंमें हमारे साथ जुड़ जानेकी होती है। वे जानते हैं कि अुन्हें अभी ये काम करना नहीं आता। हम कोअी काम कैसे करते हैं, यह देख-देखकर और हमसे पूछ-पूछकर सीख लेनेकी वे अपने छोटेसे मनमें योजना बना लेते हैं। वे कैसे धीरे-धीरे, हंसते-हंसते, हमारी आंखोंको देखते-देखते, हमें जरा भी तकलीफ न हो अिसकी सावधानी रखते हुअे, हमारे सहायक बनकर हमें खुश करनेका प्रयत्न करते हुअे आते हैं!

बेशक, वे गीता पढ़े हुअे नहीं होते, फिर भी अुनकी जिज्ञासा — ज्ञानपिपासा दूसरेसे ज्ञान प्राप्त करनेकी गीताकी प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवाकी पद्धति अुन्हें कितने सुन्दर ढंगसे सिखा देती है!

परन्तु अुस समय हमारा बरताव कैसा होता है? केवल अुन्हें दुतकारने फट-कारनेवाला! अब वे क्या करें? जिज्ञासाको तो वे रोक नहीं सकते। स्वभाव बदला नहीं

जा सकता। वे हमारी नजर बचाकर किसी न किसी काममें लग जाते हैं। अुसमें कोअी पथ-प्रदर्शक नहीं होता, सलाह-मशविरा देनेवाला नहीं होता, अिसलिअे अुलटा-सीधा कर बैठते हैं। कभी कभी अनुभवकी कमीके कारण अपने हाथ-पैरोंको चोट भी लगा देते हैं। फिर देखिये हमारा गुस्सा! हम बच्चोंके प्रति अपन शिक्षक-धर्मको अिस तरह भूलकर अुनकी अुगती हुअी ज्ञान-पिपासाकी हत्या करते हैं।

अिस विचारके अनुसार देखें तो पढ़े-लिखे माता-पिता गांवोंके अपढ़ माता-पिताकी अपेक्षा बच्चोंका अधिक अहित कर बैठते हैं। पढ़े-लिखे माता-पिताओंको तो बच्चे जरा दौड़ने-कूदने लगे कि अुन्हें पाठशाला भेज देनेके सिवा और कुछ सूझता ही नहीं। अपढ़ ग्रामवासी माता-पिताओंमें बच्चोंको छोटी अुम्रमें पाठशालामें कैद करनेका अुत्साह नहीं होता। वे हमें समझा नहीं सकेंगे, परन्तु अुनका मन भीतर ही भीतर अुन्हें कहता रहता है कि छोटे बच्चोंको अिस प्रकार पाठशालामें बन्द करनेमें कुछ बेजा काम हो रहा है। कअी गांवोंमें तो पाठशाला ही नहीं होती, अिसलिअे बच्चे अुसकी कैदसे बच जाते हैं। बहुतोंको घरकी गरीब हालतके कारण बच्चोंसे कुछ काम लेना पड़ता है, अिसलिअे पाठशाला भेजना संभव नहीं होता। अैसे माता-पिता बालकोंसे जब काम कराते हैं, तब वे प्रेमसे अुन्हें समझाकर सिखाते हैं; बच्चों पर बोझ न पड़े, अिसकी सावधानी रखते हैं और सौंपा हुआ काम वे खेलते खेलते करें अिसीमें संतोष मानते हैं। अैसे माता-पिता भले ही अपढ़ हों, फिर भी कहा जा सकता है कि वे अुत्तम कोटिके शिक्षकोंका काम करते हैं।

परन्तु हमारी सामाजिक स्थिति अितनी खराब है कि गरीब मां-बाप चाहें तो भी बच्चोंको हमेशा अपने साथ रखकर काम नहीं करा सकते; अुन्हें बालकोंको किसी खुशहाल आदमीके यहां घरका कामकाज करने या पशु चरानेके लिअे रखना पड़ता है। वहां बालक कामकाज तो करते हैं और पिटते-पिटाते कामचलाअू ढंगसे कुशल भी बनते हैं। परन्तु अुन्हें अपने बूतेसे ज्यादा काम करना पड़ता है, अिसलिअे वे बचपनसे ही शरीरको कमजोर बना लेते हैं और ज्यादातर कष्ट और तिरस्कार, गाली-गलौज और मारपीटके वातावरणमें रहनेके कारण वे बुद्धिके मंद रहते हैं और जीवनके कोअी अुच्च गुण अुनमें विकसित नहीं हो पाते।

अैसे बालक अधिक अभागे हैं या वे बालक जिन्हें बचपनसे पाठशालामें बन्द कर दिया जाता है, अिसका निश्चित माप निकालना कठिन है।

बचपनसे नौकरी करनेवाले खेतिहरों और काश्तकारोंके बच्चे पाठशाला जानेवाले बच्चोंसे कामकाजमें तो अधिक कुशल हो ही जाते हैं। जरा बड़ी अुम्रमें अुन्हें अधिक प्रेम और ममता दिखानेवाले और बुद्धिपूर्वक मार्ग बतानेवाले किसी सज्जनका सहारा मिल जाय, तो मैं मानता हूं कि वे अुसका लाभ पाठशालामें पढ़े हुअे बच्चोंसे ज्यादा अुठा सकते हैं। कष्ट और तिरस्कारके वातावरणके बदले प्रेम और ममताके वातावरणमें रहनेसे अुनकी मंद दीखनेवाली बुद्धि थोड़े ही समयमें चपलता और तेजस्विताके लक्षण बताने लगती है।

दूसरी तरफ, छुटपनसे पाठशाला जानेवाले बच्चे कामकाजमें ठोट रहते हैं। अितना ही नहीं, अुनके भीतर कामके लिअे अरुचि और तुच्छताका भाव आ जाता है; और जैसे आलस्यकी आदतवालोंमें चालाकी, झूठ, चोरी वगैरा दुर्गुण बढ़ते पाये जाते हैं, वैसे अुनमें भी ये दुर्गुण बढ़ते हैं। अिसलिअे अैसे बच्चोंको आगे चलकर अच्छे वातावरणमें रहनेका मौका मिलता है तब भी अिन दुर्गुणोंके कारण अुस वातावरणमें मिल जाना अुनके लिअे बड़ा कठिन होता है।

हमारे आश्रममें हमें ये दोनों प्रकारके अनुभव हुअे हैं। गांवोंके जो अपढ़ बालक यहां आते हैं, वे थोड़े ही मासमें कैसे अुत्साही, चपल, तेजस्वी, श्रद्धालु और प्रत्येक काममें कुशल साबित होते हैं? और शहरी मित्र अपने बच्चोंको पाठशालासे हटाकर यहां भेजते हैं, वे महीनों तक पानीमें तेलकी तरह, अलग अलग ही तैरा करते हैं। कोअी कोअी मिल भी जाते हैं तो अुन पर यहांके वातावरणका जोर पड़ता दिखाअी देता है, और कोअी तो खुद हार कर और हमें भी हराकर अन्तमें वापस चले जाते हैं।

आश्रमवासियोंको और जो माता-पिता बच्चोंकी सच्ची शिक्षाका विचार करनेकी परवाह करते हैं, अुन सबको पांचसे दस वर्षकी अुम्र तक तो बालकोंको पाठशालामें भेजना ही नहीं चाहिये। अुनकी सच्ची प्राथमिक पाठशाला अुस समय घरके काम और अुद्योगोंसे संबंध रखनेवाले काम ही हैं। "हम तो शिक्षाशास्त्रको न समझने-वाले साधारण मनुष्य हैं, बच्चोंको घर पर रखकर अुद्योग और काम सिखाने हों तो अुनके लिअे कैसा पाठ्यक्रम तैयार किया जाय, यह हम कैसे जान सकते हैं?" अैसी चिन्ता करनेकी कोअी जरूरत नहीं। क्योंकि अिस अुम्रमें बालकों पर अितने काम अमुक समय पर अवश्य करनेका बंधन लादा नहीं जा सकता। वे आंतरिक स्फूर्तिसे प्रेरित होकर, जहां भी अुनके योग्य काम हो रहे होंगे वहां खुद अुसी तरह चले जायेंगे, जैसे तितलियां फूलों पर चली जाती हैं। हमारे लिअे अितना ही करनेको रह जाता है कि अुस समय हम हंसते हुअे अुनका स्वागत करें, कुछ मिनट खर्च करके अुन्हें रास्ता दिखायें, शिक्षकके प्रेम और धीरजसे स्वयं कोअी काम अुन्हें करके बतायें और मुंहसे अुसका रहस्य समझाकर वह काम अुन्हें सिखायें तथा संबंधित कार्यके बारेमें आगे-पीछेकी जानने योग्य बातें कहकर अुसमें अुनकी दिलचस्पी भी बढ़ा सकें तो जरूर बढ़ायें।

साधारण ग्रामवासी माता-पिता, जो बहुत पढ़े-लिखे न हों, अिस विचारके अनुसार बच्चोंको शिक्षा दें, तो वे अिस बातका विश्वास रखें कि बड़ी-बड़ी पाठ-शालाओंकी अपेक्षा अिस पद्धतिसे अुनके बालक अधिक अच्छी शिक्षा पायेंगे। बच्चोंको अिस अुम्रमें लिखने-पढ़नेकी झंझटमें डालनेकी जरूरत नहीं, अैसा करना हानिकारक भी है। अिसलिअे मां-बापका अपढ़ होना अिसमें जरा भी बाधक नहीं होगा। बालकोंकी शिक्षाके लिअे जो कुछ आवश्यक है, वह तो अुनके पास काफी मात्रामें है। अुनके पास अुद्योगोंकी कला है, अनुभवपूर्ण ज्ञान है। यह पढ़ाअी काफी है। अितना

वे वालकोंको प्रेमसे दे दें तो वहुत है। साथ ही वे वालकके प्रेमके खातिर अपने जीवनको शुद्ध, स्वच्छ, परिश्रमी, सेवापरायण तथा सत्यके शौर्यवाला रखनेकी कोशिश करेंगे, तो वालकोंको अुन्होंने पूरी शिक्षा दे दी, अैसा वे मान सकते हैं। वे परम पिता परमेश्वरके सामने अीमानदारीसे यह जवाव दे सकते हैं कि अुन्होंने अपने वालकोंके प्रति शिक्षक-धर्मका पूरा पूरा पालन किया है।

परन्तु पांच वर्षका होते ही वालकको पाठशाला भेज देनेका रिवाज प्रवल वन गया है। जरा आंखें खोलें तो अिसका भयंकर परिणाम हमें दीयेकी तरह साफ दिखाअी दे सकता है। पाठशालाओंमें वच्चोंको शिक्षा नहीं मिलती; अितना ही नहीं, वे सदाके लिअे अैसे वन जाते हैं कि कोअी शिक्षा ग्रहण ही न कर सकें। और देखनेकी वात तो यह है कि अुसी समय शिक्षाकी गंगा लोगोंके घरोंमें, खेतोंमें और अुद्योगोंकी जगहों पर वह रही होती है। वहांसे अुठाकर वच्चोंको पाठशालाकी वदवूदार तलैयामें धकेल दिया जाता है। अिससे हमारी नअी पीढ़ी दिन-दिन निष्प्राण होती जा रही है; और जव हम देखते हैं कि यह परिणाम वालकोंको छुटपनसे पाठशाला भेज देनेके भद्दे रिवाजमें फंसनेसे आता है, तव हमारा दिल जलकर खाक हो जाता है।

परन्तु वालकोंको पाठशालासे वचानेकी हमारी वात कौन सुनेगा? गांवका दुःखी देहाती हमारी वात सुनकर अिस प्रवल रिवाजके विरुद्ध सिर अुठायेगा यह आशा रखना वहुत अधिक होगा।

अिसका अेक ही अुपाय है और वह यह कि हम आश्रमवासी और सेवक साहस करके अपनी श्रद्धाका अमल अपने वच्चों पर करें। यह साहस हममें है? जव हमारे संवंधी, प्रियजन और मित्र हमें अुलाहना देंगे कि हम वच्चोंका अहित कर रहे हैं, पाठशाला जानेकी अुम्रमें अुन्हें आवारा वना रहे हैं, तव क्या हम अपनी श्रद्धा पर डटे रह सकेंगे? लोगोंके पाठशाला जानेवाले वच्चोंको तेजीसे कहानियोंकी पुस्तकें पढ़ते देखेंगे, तव हमारा मन वशमें रहेगा? हम अपनेको अपराधी मानकर लोगोंके सामने शर्मसे नीचे तो नहीं देखेंगे? यदि हम रिवाजके वलके आगे हार न जायं, वल्कि अपने वच्चोंको घरके अुद्योगोंमें मिलनेवाली शिक्षाकी खूवियां वतानेकी हिम्मत और श्रद्धा रख सकें, तो लोग हमारी चीजकी तरफ आकर्षित हुअे विना नहीं रहेंगे।

अंग्रेजी पढ़ाओीका क्या होगा?

कल हमने जो वात की, वह तो दसेक वर्षके वालकोंके संवंधमें हुअी। अुन्हें पाठशाला न भेजनेकी सिफारिशको मानना अपेक्षाकृत आसान है। मनुष्यके मनमें यह हिम्मत रहती है कि अैसा करनेसे कदाचित् मेरे वच्चे औरोंसे ठोट और पीछे रह जायेंगे, तो भी भूलको सुधार लेने और सवकी कतारमें अुन्हें ला देनेमें वहुत कठिनाअी नहीं होगी और बहुत समय भी नहीं लगेगा।

परन्तु अिस अुम्रसे आगेकी शिक्षाका क्या हो? अुन्हें हाअीस्कूल और कॉलेजमें भेजकर अंग्रेजी पढ़ाये विना काम चलेगा? अव तक जो विचार आप सुनते आये हैं, अुन परसे आपने कल्पना कर ली होगी कि आगेके लिअे भी मैं वालकोंको पाठशालामें न भेजनेकी ही सिफारिश करूंगा। आप भले ही मेरे सामने आंखें फाड़कर देखते रहें, परन्तु मैं कहता हूं कि आपकी कल्पना गलत नहीं है।

यह गोली निगलना आपको कठिन लग रहा है न? कारण स्पष्ट है। आपको डर है कि बच्चोंको आप पढ़नेकी अुम्रमें पढ़ायेंगे नहीं तो अुम्र बीत जानेके बाद वे अिस कमीको किसी भी तरह पूरा नहीं कर सकेंगे और अुनका सारा भविष्य विगड़ जायगा।

परन्तु जव मैं आपसे यह सिफारिश करता हूं कि बच्चोंको हाअीस्कूल और कॉलेजमें न भेजिये, तव क्या मैं यह कहता हूं कि अुन्हें शिक्षासे वंचित रखिये? वात यह है कि वहां भेजनेसे हम चाहते हैं वैसी शिक्षा अुन्हें नहीं मिलती। हम नहीं चाहते वैसा कुशिक्षण ही अधिक मिलनेका खतरा है और हमें वह खतरा नहीं चाहिये। लेकिन वहां न भेज कर भी अपने वच्चोंको हमें शिक्षा तो देनी ही है। वह अंग्रेजी शिक्षा नहीं होगी, परन्तु अुच्च शिक्षा तो अवश्य होगी। वह कैसी होगी और किस ढंगसे दी जा सकेगी, अिसकी कल्पना मैं आज आपको कराना चाहता हूं।

परन्तु आपके मनकी शंका मिटना कठिन है। आपको खयाल होगा: "शिक्षा जैसे जीवनके अेक वड़ेसे बड़े मामलेमें वच्चों पर नया प्रयोग करने जायं और अुसमें वांछित परिणाम न आये, तो वे 'अतोभ्रष्ट' और 'ततोभ्रष्ट' नहीं हो जायेंगे? स्कूल-कॉलेजकी शिक्षा न मिलनेके कारण वच्चोंकी वुद्धि अविकसित रह जाय और वे जीवनमें सफल न हों, तो हमें सदाके लिअे पछतावा रहेगा कि हमने अपनी अेक सनकके खातिर वच्चोंका जीवन विगाड़ दिया और वच्चे भी जीवनभर हमें कोसते रहेंगे।"

अैसे विचार करके हम अधिकांश सेवक और आश्रमवासी श्रद्धा खो देते हैं। हम अपने सेवा-जीवनके खातिर वहुतसे कष्ट और अनेक असुविधाअें सहनेको तैयार रहते हैं, अनेक खतरे अुठानेका और कुर्वानियां करनेका साहस दिखा सकते हैं। गांवोंके

मलेरियामें हमारे शरीर सूख जायं तो भी हम हारते नहीं; गरीबीसे नाता जोड़ लेनेके कारण जात-पांतके रिवाजोंके अनुसार न चलकर लोकनिन्दाके शिकार बनते हैं तब भी नहीं हारते; हरिजनोंके प्रश्नके सिलसिलेमें सगे-संबंधी हमें छोड़ दें तब भी हम विचलित नहीं होते; गांवोंके जीवनमें घुल-मिल जानेकी लगनमें काफी शरीर-श्रम भी आनंदसे करते हैं; हम अपनी सारी शक्ति सेवामें लगाकर अपने साहित्य आदिके शौकोंमें भी काफी कमी कर सकते हैं। "अपने सिद्धान्तोंके खातिर हम जितना बलिदान कर सकें अुतना थोड़ा है, परन्तु —" हमें खयाल होता है, "परन्तु यह सवाल दूसरा ही है। यह तो अपने बच्चोंकी पढ़ाअीका, अुनकी सारी जिन्दगीको सफल या असफल बनानेका सवाल है। यद्यपि आजकलके स्कूल-कॉलेजोंकी पढ़ाअी हमें अनेक प्रकारसे पसन्द नहीं है, फिर भी जीवनमें आगे बढ़नेके लिअे सब अुसीको अपनाते हैं। तो फिर हमें अपने मनकी अेक तरंगके लिअे अपने बच्चोंको अुससे वंचित रखनेका क्या अधिकार है?"

अधिकांश सेवक जब बच्चोंको स्कूल-कॉलेजमें भेजनेका समय आता है, तब अिस प्रकारके विचार-विभ्रममें पड़े बिना नहीं रह सकते। यह हमारे अनुभवकी बात है। अिसका सीधा अर्थ क्या यह नहीं निकलता कि अुन्होंने अपने सिद्धान्तोंके खातिर बहुत त्याग किया है, परन्तु अब अुनकी त्यागशक्तिकी हद आ गअी है? क्या अिसका यह अर्थ नहीं कि अुसे वे बच्चोंकी पढ़ाअी तक ले जानेमें कांप अुठते हैं?

वे यह मानकर मनको भले ही धोखा देते हों कि जहां तक हमारा संबंध है हम अपने सिद्धान्तोंका पूरी तरह अमल करते हैं, परन्तु यही कहना चाहिये कि असली परीक्षाके समय वे अपने सिद्धान्तोंसे डिग गये। अब तक मनमें जो शंका घुसी नहीं थी, वह आज कसौटीके समय अुनमें घुस गअी है: "कहीं हमने आश्रम-जीवन स्वीकार करनेमें बड़ी मूर्खता तो नहीं की? लोग तो यही मानते हैं और हमें सनकी, पोथी-पंडित और भगत मान लेते हैं। हमने अपनी बेवकूफीसे अपनी जिन्दगी बिगाड़ ली और वह अब सुधर नहीं सकती; परन्तु अपने बच्चोंको तो हम समय रहते अुसका शिकार होनेसे बचा लें! हमने आज तक माना कि आश्रमका सेवा-जीवन ही सच्चा जीवन है, परन्तु सच्चा जीवन क्या सचमुच अैसा होता है? यह तो बड़ा कष्टमय जीवन है; गांवोंके संकरे खड्डेमें पड़े रहने जैसा है। अिसमें धन नहीं है, मान नहीं है, बड़े बड़े काम करके कीर्ति कमानेकी गुंजाअिश भी नहीं है। यह खड्डा नहीं है, अिस तरहकी कुछ लोगोंकी रायें सुनकर हम तो अिसमें फंस गये, परन्तु अब अपने बच्चोंको हरगिज नहीं फंसायेंगे।

"और स्कूल-कॉलेजकी पढ़ाअीको हमने गलत समझा, अिसमें भी हमारे चश्मेका रंग ही कारण क्यों नहीं हो सकता? दुनियाके लोग तो अुसीको अच्छा मानते हैं। हां, कोअी कोअी अुसकी आलोचना जरूर करते हैं, परन्तु वह पराये बच्चोंको फकीर बनानेकी बात हो तभी तक। अपने बच्चोंका मौका आता है तब वे हमारी तरह मूर्खता नहीं दिखाते। अुन्हें तो वे यही शिक्षा पाने भेजते हैं।

"हमारे बच्चे पढ़-लिखकर खूब कमायें, देश-विदेशमें बड़े बड़े व्यापार करें, बड़े सरकारी अधिकारी बनें और सुखी हों, यह किन मां-बापोंको अच्छा नहीं लगता? हम सेवाकी ओर मुड़ गये हैं, अिसलिअे अैसा सुख अुनके लिअे न चाहें यह ठीक है। परन्तु वे प्रसिद्ध डॉक्टर बनकर अपनी विद्यासे अनेक रोगियोंके आशीर्वाद प्राप्त करें, बड़े अिंजीनियर बनकर नहरें, पुल, कारखाने वगैरा बड़े बड़े तामीरी काम करके देशके अुपकारक बनें, जगद्-विख्यात विज्ञानाचार्य और संशोधक बनकर दुनियामें अमर हों, होशियार वकीलके रूपमें अदालत-कचहरीको ही नहीं, परन्तु विधान-सभाओं और राष्ट्र-सभाओंको भी गुंजानेवाले हों और देशके प्रख्यात नेता बनें, अैसी अिच्छा हम क्यों न करें? अुस महान जीवनके लिअे सीढ़ीका काम देनेवाले स्कूल-कॉलेजोंको हम अपने हाथसे तोड़ डालें और अपने बच्चोंके लिअे रहने न दें, यह तो अुनके प्रति द्रोह ही होगा।

"हम खुद बहुत बड़ी शक्तिवाले नहीं, अिसलिअे गांवोंकी सेवामें लगे और अपनी अल्पशक्तिके अनुसार जीवनका जितना भी सदुपयोग हो सका हमने किया। यह सब ठीक है। परन्तु हमारे बच्चोंमें ओिश्वरने बीजरूपमें जो शक्ति रखी है, अुसका अंदाज अपने देहाती गजसे हम कैसे लगायें?"

मैं समझता हूं कि अैसे अवसर पर सेवकोंके मनमें अुठनेवाली दलीलोंका मैंने सच्चा प्रतिबिम्ब आपके सामने रखा है। वे मानें या न मानें, परन्तु वे अपने बच्चोंको स्कूल-कॉलेजमें पढ़ानेको तैयार होते हैं, तब वे अपनी कुछ मूलभूत श्रद्धाअें छोड़ ही देते हैं।

वे किसी समय तो यह मानते थे कि देशके सबसे समर्थ पुरुषोंको ग्रामसेवामें पड़ना चाहिये; परन्तु आज यह मानने लगे हैं कि ये छोटे काम हैं और बड़ी शक्ति रखनेवालोंको अुनमें पड़कर अपना रुपया पािअयोंमें नहीं बदलना चाहिये।

वे किसी समय त्याग और मूक सेवाको जीवनका सार मानते थे; लेकिन आज यह मानने लगे हैं कि दुनियामें कीर्ति, ख्याति और सम्मान पाकर अमर होना जीवनकी सार्थकता है।

वे किसी समय यह आलोचना करते थे कि हाअीस्कूल और कॉलेजोंकी पढ़ाअी मनुष्यके मौलिकता, साहस, वीरता, देशभक्ति आदि सब गुणोंको नष्ट कर देती है, अुसे धन और कीर्तिका तथा भोग-विलासका रस लगा देती है और सेवा-जीवनके लिअे नालायक बना देती है; वहांकी शिक्षा लेकर धन और कीर्ति कमानेमें, डॉक्टर, अिंजीनियर, विज्ञानाचार्य या सभावीर बननेमें हजारोंमें अेक ही सफल होता है और सो भी शिक्षाकी अपेक्षा बसीलेके कारण ही; अधिकांश लोग तो नौकरीकी तलाशमें मारे-मारे फिरनेवाले निराश और निस्तेज बेकारोंकी भीड़में मिल जाते हैं और कॉलेजमें थोड़ा-बहुत जो जवानका जोर मिलता है, वह भी दुनियाके धक्के खाकर थोड़े ही समयमें मर जाता है। अब वे अपनी अिस आलोचनाको निगल गये हैं और सफल जीवनकी सीढ़ी अगर कोअी है तो वह कॉलेज ही है, यह मानने लगे हैं।

भले ही हमने ग्रामजीवनमें लंबा समय बिताया हो, भले हमने अुसकी तारीफोंके बहुतसे गीत गाये हों, भले मुंहसे यह घोषित किया हो कि अुसीमें जीवनका सच्चा सुख है, परन्तु सच्ची परीक्षाका समय आने पर पता चल गया कि हमारे मनकी गहराओमें कैसे विचार थे! दुनियाने अुसे प्रत्यक्ष देख लिया है और हम खुद भी आंखें बन्द न कर लें तो अुसे स्पष्ट देख सकते हैं।

हम ग्रामवासमें अथवा आश्रम-जीवनमें अितने वर्ष व्यतीत करके भी अुसका कोओी संतोषजनक फल नहीं देखते, अिसका कारण भी अब पकड़में आ गया। हम अुसका दोष गांववालोंकी जड़ता, फूट वगैरा पर और अपने दूसरे संयोगों पर मढ़ते थे। परन्तु अब परीक्षा होने पर सच्ची बात प्रगट हो गओ। हमारा मन ही हमारे काममें कहां था? जिस काममें मन नहीं होता, अुसमें हमारी पूरी शक्ति और पूरी बुद्धि नहीं लगती, पूरी संशोधन-शक्ति भी अुपयोगमें नहीं आती। अुसमें नित्य नये साहस करनेकी हिम्मत भी हम कैसे दिखा सकते थे? यह सब न करने पर यदि सफलता न मिली तो अिसमें आश्चर्य कैसा?

फिर हमने अितने वर्ष तक ग्राम-जीवनकी कठोरता भोगी, परन्तु अुससे हमारे हृदयमें कभी प्रसन्नता क्यों नहीं मालूम हुओ? लोगों पर हमारे जीवनकी गहरी छाप पड़ती क्यों नजर नहीं आती? अिसका कारण भी अब हमें मालूम हो जाना चाहिये। हमने कठिनाअियां अूपर अूपरसे तो भोगीं, परन्तु आंतरिक आंखके सामने ऋद्धि-सिद्धिमें लोटनेवाले अधिकारी, डॉक्टर, अिंजीनियर और सभाशूर ही रहते थे। यही आदर्श हमने छिपे-छिपे सेवन किया हो, तो फिर ग्राम-जीवनसे हमारे चेहरे पर प्रसन्नता कैसे प्रकट हो सकती है?

ग्रामसेवाके शुरूके अुत्साहमें हमें यह कल्पना नहीं आओ थी कि बच्चोंकी पढ़ाओका अैसा कठिन प्रश्न किसी दिन हमारे सामने खड़ा होगा। हम तो गांवोंमें बस गये, ग्रामवासियोंके जैसी अथवा लगभग वैसी गरीबी हमने स्वीकार की, हम पैतृक संपत्ति भी बहुत कुछ छोड़ बैठे और कमाओके कोओी साधन भी रहने नहीं दिये। परन्तु अब मन डिग गया है और बच्चोंको अंग्रेजी पढ़ाओ पढ़ानेका विचार मनमें समा गया है।

अब हम चारों ओरसे कठिनाअियां अनुभव करते हैं। जिस विचारके लिअे जीवनमें स्थान ही नहीं था, अुसे जीवनमें स्थान देनेमें व्यर्थकी दौड़धूप करनी पड़ती है। पहली बात तो यह है कि अंग्रेजी हाओस्कूल या कॉलेज हमारे छोटेसे गांवमें हो ही कैसे सकता है? अब यदि बच्चोंको पढ़ाना हो तो छात्रालयके भारी खर्चका बंदोबस्त करना पड़ेगा। हमें खयाल होता है: "अिससे तो यदि पहलेसे ही कहीं शहरमें धंधा करते होते तो बच्चे आसानीसे घर रहकर पढ़ सकते थे। गांवोंमें रहनेसे अुलटे खर्चके खड्डेमें अधिक अुतरना पड़ता है! अब पैसा कहांसे लायें?"

हमारे आसपास ग्रामवासियोंकी अिस मामलेमें कैसी स्थिति है और वे किस प्रकार व्यवहार करते हैं, अिसे यदि अैसे परेशानीके समय देखें तो अिस मोहसे हम

आसानीसे वाहर निकल सकते हैं। गांवमें मुश्किलसे दो-चार परिवार अैसे होते हैं जो अपने वच्चोंको अंग्रेजीकी पढ़ाअीके लिअे शहरमें भेज सकते हैं। अधिकांश तो अपनी स्थितिका खयाल करके यह मानकर मनको समझा लेते हैं कि हमारे भाग्यमें वच्चोंको यह शिक्षा देना नहीं लिखा है। अिस पढ़ाअीके लिअे अुन्हें मोह तो खूब होता है। वे सरकारी कर्मचारियोंको देखते हैं, वकीलों, डॉक्टरों तथा व्यापारियोंको देखते हैं, तब अुन्हें कअी वार यह कहते किसने नहीं सुना कि हमारे वच्चे भी पढ़-लिखकर अूंचे पद पर चढ़ें, धन और मान प्राप्त करें तो अुनके भाग्यसे वैलोंकी पूंछ मरोड़ना छूटे? परन्तु यह समझकर कि यह आकांक्षा अुनके लिअे आकाशके चंद्रमा जैसी है, वे शांति धारण करते हैं।

परन्तु हम सेवक क्या अपने मोहको अिस तरह आसानीसे समेट सकते हैं? हम तो ज्यादातर दूसरे ही विचारमें पड़ जाते हैं: "आज तक हम कैसे भी रहे, परन्तु अब तो वच्चोंके भविष्यका प्रश्न आ गया है। अिसलिअे किसी भी तरहसे रुपया जुटाना ही चाहिये।" अेक वार अिस निश्चय पर पहुंचे कि रुपया जुटानेके तरह तरहके अुपाय सूझने लगते हैं। अैसी स्थितिमें ग्रामसेवाकी या आश्रम-सिद्धान्तोंकी चारदीवारीमें वंद रहकर थोड़े ही विचार किया जा सकता है?

कुछ सेवकोंमें अपनी कमानेकी शक्तिका अभिमान जाग्रत होता है। वे मनमें कहते हैं: "मैंने देशके खातिर दारिद्र्य स्वीकार किया है, परन्तु चाहूं तो जितना चाहिये अुतना धन कमानेकी ताकत मैं रखता हूं।"

कुछ सेवक कमानेका कोअी सरल मार्ग मिल जाने पर अपना ग्रामसेवाका काम जारी रखकर कोअी न कोअी सहायक धंधा ढूंढ़ लेते हैं। वे अिस तरह मनको धोखा देते हैं कि हम अैसे अुस्ताद हैं कि अेकसाथ दो घोड़ों पर सवारी कर सकते हैं। परन्तु सच पूछा जाय तो अुस्तादीके अभिमानमें वे अपने सेवा-जीवनको अपने ही हाथों निष्फल वना देते हैं। लेकिन अैसा मौका भी सवको नहीं मिल सकता। साधारण सेवक तो अपनी सारी जिन्दगीकी श्रद्धाको छोड़कर जीवनमें परिवर्तन कर डालते हैं और कमानेके धंधेमें लग जाते हैं। शुरूमें वे यह कहकर अपने मनको धोखा देते हैं कि वच्चोंकी पढ़ाअीकी जिम्मेदारीसे मुक्त हो जायेंगे तो फिर सेवा-जीवन अपना लेंगे। परन्तु ज्यादातर परिणाम दूसरा ही होता है। सेवा-जीवनमें वापस लौट आनेकी आशा शायद ही पूरी होती है। क्योंकि अेक ओर वच्चोंकी पढ़ाअी पूरी होती है, तो दूसरी ओर धंधेके क्षेत्रमें फंसा हुआ वाप स्वयं अपनी पढ़ाअी भूल चुकता है।

परन्तु जीवनमें अैसा जड़मूलसे परिवर्तन करना वड़े साहसका काम है। हमारा वर्णन किया हुआ परिवर्तन गलत दिशाका भले ही हो, परन्तु अुसके लिअे भी अेक प्रकारकी हिम्मतकी जरूरत रहती है। वच्चोंकी पढ़ाअीके लिअे भी सव कोअी अैसा नहीं कर सकते। अधिकांश सेवक तो सरल मार्ग ही ग्रहण करते हैं। वे आंखें वन्द करके ग्रामवाससे चिपटे रहते हैं और विवेक खोकर वच्चोंकी महंगी पढ़ाअीका भार अपने सेवाकार्य पर डालते हैं। वे खादी, ग्रामोद्योग, आदि द्वारा सेवा करते

होंगे तो यह भार अिन मृतप्राय अुद्योगोंके सिर पर पड़ेगा, और किसी संस्था द्वारा काम करते होंगे तो यह भार अुस संस्थाके सिर पर पड़ेगा।

अैसे सेवक अपने अपनाये हुअे मार्गको मध्यम मार्ग मानते होंगे; सेवा भी होती रही और बच्चोंकी पढ़ाअी भी हो गअी, यों अपने मनको मनाते होंगे। परन्तु सच पूछा जाय तो कुल मिलाकर अुनके जैसोंके भारी बोझके नीचे खादी, ग्रामोद्योग वगैरा कुचल जाते हैं; और संस्था भी अशक्त हो जाती है।

अुनके मध्यम मार्गका सबसे भयंकर फल तो मैं दूसरा ही मानता हूं। वह है अुनके बच्चोंके जीवन पर होनेवाला असर। अुन्हें जो शिक्षा लेनेको वे भेजते हैं, वह अैसी है कि अुससे बच्चे और चाहे कुछ भी बन जायं, परन्तु पिताका सेवामार्ग तो हरगिज नहीं स्वीकार कर सकेंगे। वे अैसी आदतें डाल लेंगे कि शरीरसे देहाती जीवन अुन्हें सहन नहीं हो सकेगा। और बुद्धिसे ग्रामसेवा और आश्रमी शिक्षा अुन्हें निकम्मी वस्तुअें लगेंगी। सेवकोंके बच्चे अिस तरहकी शिक्षा लेकर आयें, अिससे अधिक करुणा-जनक वस्तु अुनके लिअे और क्या हो सकती है?

मैं तो साफ साफ भाषामें और जरा भी संकोच और शर्म रखे बिना कहता हूं कि सेवक अपने बच्चोंको हाअीस्कूल-कॉलेजकी शिक्षा दिलानेके मोहमें हरगिज न फंसे; अुन्हें शिक्षा देनेका कर्तव्य वे खुद ही पूरा करें।

"खुद ही?" आप चौंककर पूछेंगे। "हम खुद तो कैसे दे सकते हैं? हमें शिक्षकका काम कहां आता है? किसीको आता हो तो भी अिसके लिअे वह समय कहांसे लायें?"

हां, हां! हमें खुद ही अपने बच्चोंको शिक्षा देनी चाहिये। अिसके लिअे आवश्यक जानकारी तो हम सबके पास है ही और अिसमें समय मिलनेकी अितनी ज्यादा चिन्ता करनेकी बात भी नहीं है। अधिक विस्तारसे कल अिसकी चर्चा करेंगे।

प्रवचन ४५

अुच्च शिक्षा

आअिये, आज हम अिस बातका विचार करें कि अपने बच्चोंको हाअीस्कूल-कॉलेजमें न भेजकर भी अुन्हें अुच्च शिक्षा देनी हो और वह भी हमें खुद देनी हो, तो यह कैसे संभव हो सकता है?

याद रखिये कि मैं घरमें कॉलेज खड़ा करनेकी युक्ति नहीं बतानेवाला हूं। परंतु जिसे मैं अुच्च शिक्षा मानता हूं और मुझे आशा है कि विचार करेंगे तो आप भी मानेंगे, वह अुच्च शिक्षा कैसे दे सकते हैं यही मैं आज बताअूंगा।

अुच्च शिक्षाका अर्थ यह हो कि अंग्रेजोंसे भी हमें अंग्रेजी अधिक अच्छी बोलना आये अथवा अुसका अर्थ अैसी शिक्षा हो जिससे दुनियामें धन और मान कमानेके द्वार खुल जायं, तो भी कॉलेजोंसे निकलनेवाले नमूनोंमें ये दो सिद्धियां प्राप्त कर

सकनेवाले बहुत ही थोड़े पाये जाते हैं। मुख्य शिक्षाका यही अर्थ करना हो और पढ़ानेका अितना ही अुद्देश्य हो, तब तो अंग्रेजीके लिअे बच्चोंको किसी अंग्रेज सद्‌गृहस्थके सहवासमें रख देना अथवा अुन्हें विलायत भेज देना और धन तथा मानके लिअे अच्छे वसीले पैदा कर देना ही अिसका सीधा रास्ता है।

परन्तु अिन दो वस्तुओंको अुच्च शिक्षाका नाम देना तो कॉलेजके संचालक भी पसन्द नहीं करेंगे। अिसमें अुन्हें अपनी शिक्षाका अपमान लगना चाहिये। वे कभी यह दावा नहीं करते कि कोअी जर्मन अथवा फ्रांसीसी या रूसी आदमी अंग्रेजी कॉलेजमें गये बिना अुच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता। वे यह जरूर कहते हैं कि हमारे देशमें हिन्दुस्तानियोंको अंग्रेजी कॉलेजमें जाना ही चाहिये; परन्तु अिससे वे अितना ही कहना चाहते हैं कि हमारे देशमें आज अंग्रेजी कॉलेजोंके सिवा देशी भाषाओं द्वारा पढ़ानेवाले कॉलेजोंका अस्तित्व नहीं है। शायद वे यह भी कहना चाहते हैं कि अिस देशकी भाषाअें अितनी समृद्ध नहीं हैं कि अुच्च ज्ञान धारण कर सकें और न कभी वैसी हो सकेंगी, अिसलिअे हमारे पास अंग्रेजीकी शरण लेनेके सिवा कोअी चारा नहीं है।

मैं अभी अुच्च शिक्षाका जो स्वरूप आपके सामने विस्तारपूर्वक रखनेवाला हूं, अुसे सुननेके बाद आप अपने-आप सोच लीजिये कि यह शिक्षा स्वभाषा द्वारा दी जा सकती है या नहीं? अैसा लगे कि स्वभाषामें अुसे धारण करनेकी शक्ति नहीं है, तो भले आप अंग्रेजी अथवा किसी और भाषाकी शरणमें जाअिये। भाषा मुख्य वस्तु नहीं है, परन्तु शिक्षा अथवा ज्ञान ही मुख्य वस्तु है। परन्तु आप देखेंगे कि अुसमें परभाषाकी शरण लेनेकी जरूरत ही नहीं है। सच्चा ज्ञान प्राप्त करनेके लिअे अच्छेसे अच्छा माध्यम स्वभाषाका ही हो सकता है।

अब कॉलेजकी शिक्षाके दूसरे अुद्देश्य — 'अुससे जीवनमें धन और मानके दरवाजे खुलते हैं' — का विचार कीजिये। अुसका यह अुद्देश्य है, यह तो किसी किसी पढ़े-लिखेको मेहनत किये बिना बहुत पैसा कमाते देखकर बना हुआ लोगोंका साधारण खयाल ही है। कॉलेजोंके संचालक यह कभी नहीं कह सकते कि अुनकी शिक्षाका हेतु अितना स्थूल है। वे अपना अुद्देश्य बुद्धि-वैभव बढ़ाना ही बतायेंगे। वे कहेंगे, "जो मनुष्य औरोंसे बुद्धिमें श्रेष्ठ होंगे वे कम बुद्धिवालों पर सत्ता भोगेंगे, अुनसे अधिक अमीर होंगे और शरीरसे मेहनत न करके भी अपनी बुद्धिके बलसे सुखी होंगे। यह तो बुद्धिका स्वाभाविक फल है। परन्तु हमारी शिक्षाका मूल हेतु बुद्धिका विकास करना ही है।"

अुच्च शिक्षाका अर्थ हमें बुद्धिका सुन्दर विकास मानना ही चाहिये; और वह विकास अंग्रेजी कॉलेजमें पढ़े बिना संभव नहीं अैसा हमें विश्वास हो जाय, तो हमें किसी भी कीमत पर वहां जाना होगा। परन्तु बुद्धिका सच्चा विकास हम किसे कहेंगे?

बुद्धिका फल जो कम बुद्धिवालों पर हुकूमत करना — बिना परिश्रम किये धनिक बनना — ही मानता हो, अुसे तो शायद अंग्रेजी कॉलिजका आश्रय ही लेना पड़ेगा। अलबत्ता वहां भी मुश्किलसे अेक-दो फीसदी लोग ही यह फल प्राप्त कर सकते हैं। अधिकांशके भाग्यमें तो असफल और निराशामय जीवन ही रह जाता है।

परन्तु यहां हमें यह प्रश्न अुठाना चाहिये कि जिस बुद्धिका फल यह निकले, अुसे बुद्धिका विकास कहना क्या बुद्धिमान मनुष्यको शोभा देता है? अगर यही बुद्धि हो, तो अबुद्धि किसे कहेंगे?

हमें अुच्च शिक्षा तो लेनी है, अुसके द्वारा बुद्धिका विकास भी करना है, परन्तु अुस बुद्धिसे फल अिससे भिन्न ही पैदा करना है।

हम जैसे-जैसे दूसरोंसे बुद्धिमें आगे बढ़ें, वैसे-वैसे अपने सुखभोगमें ही अुसका अुपयोग न करके सेवामें अुसका अुपयोग करें, हरअेक देशवासीकी बुद्धि हमारे बराबर ही विकसित न हो जाय तब तक हम शान्तिसे न बैठें।

हम औरोंसे अधिक सच्चे बनें, अधिक संयमी बनें, अधिक नम्र बनें, अधिक अुद्यमी बनें और अुनके लिअे बुद्धिमय जीवनके सच्चे मार्ग अंकित कर दें।

हम सच्चा शुद्ध विचार करना जानें और अुसके अनुसार आचरण करनेका चरित्र-बल दिखायें; दूसरोंमें भी अिसकी शिक्षाको फैलाकर श्रम, बुद्धिका आलस्य, अश्रद्धा, अंधश्रद्धा वगैरासे अुन्हें सचेत करें और अुन्हें बुद्धिमय जीवनका रस लगायें।

दूसरे बुद्धिमान लोग अिनके अज्ञानका लाभ अुठाकर अिन पर सत्ता जमाने या अिनके श्रम और धनका अपहरण करने आयें, तब हम जान देकर भी अिनकी रक्षा करें।

यदि अैसा फल देनेवाली बुद्धि चाहिये तो वह शिक्षाके बिना हरगिज नहीं मिलेगी। वह अुच्च शिक्षासे ही प्राप्त की जा सकती है। परन्तु अुस अुच्च शिक्षाके लिअे अंग्रेजी कॉलेजोंमें जानेकी जरा भी जरूरत नहीं पड़ेगी। अब मैं यह बताअूंगा कि सेवाधर्म स्वीकार करनेवाले माता-पिता अैसी शिक्षा बच्चोंको अच्छी तरह दे सकते हैं।

प्रथम तो हम यह चाहते हैं कि हमारे बच्चे तरह तरहके गृहकार्योंमें कुशल हों। अिसे हम बुद्धि-विकासकी पहली सीढ़ी मानते हैं। स्कूल-कॉलेजोंमें जानेवालोंके हाथ-पैरोंमें अनुभवकी कमीके कारण स्थायी रूपमें अकुशलता रह जाती है, जिसे हम पसन्द नहीं करते। कुछ बच्चे छुटपनसे हुक्म देना सीखते हैं। अिसे हम कुशिक्षाका लक्षण समझते हैं। हम अपने बच्चोंके लिअे अपने घरोंमें अथवा आश्रमोंमें कामकाजके लिअे पूरी तरह प्रोत्साहनका वातावरण पैदा करेंगे। वे बारह वर्षके होंगे तब तक तो हम अुन्हें प्रत्येक प्रकारका गृहकार्य कुशलतासे करना सिखा देंगे। करना ही नहीं सिखा देंगे, परन्तु काफी मात्रामें अुन कार्योंसे संबंध रखनेवाला वैज्ञानिक और आसपासका दूसरा ज्ञान भी देनेका प्रयत्न करेंगे।

वे माताके साथ काम करके सुन्दर रसोअी बनाना सीखेंगे और अुसके साथ ही भिन्न-भिन्न अन्नोंके गुण-दोष, अुनके भीतरके तत्त्व, वे तत्त्व नष्ट न हों अिस दृष्टिसे कौनसा पदार्थ पकाया जाय और कौनसा न पकाया जाय, अित्यादि वातोंके वारेमें और आहार-शास्त्रके सिद्धान्तोंके वारेमें हमसे ज्ञान प्राप्त करेंगे।

हम अुन्हें अनाज-सफाअीकी सब क्रियाओंमें प्रवीण वनायेंगे। सूप तथा मूसल अुनके हाथोंमें कलामय ढंगसे नाचेंगे। साथ ही अनाजकी रक्षा करनेका शास्त्र तथा अुसके कौनसे भाग निकालने और कौनसे हरगिज न निकालने चाहिये, यह भी हम अुन्हें शास्त्रीय ढंगसे समझायेंगे।

मामूली झाडू लगानेसे लेकर पाखाना-सफाअी तकके सब काम अुन्हें हमारे पथप्रदर्शनमें सुन्दर और आकर्षक ढंगसे करना आयेगा; और साथ साथ गंदगीको गाड़नेसे जीवाणु कैसे कीमती खाद बनाते हैं और खुला रखनेसे मक्खी, मच्छर वगैरा जन्तु गन्दगीमें से ही कैसे रोग फैलाते हैं, अित्यादि विषयोंका विज्ञान अुन्हें सिखाकर हम अुनकी आंखें खोलेंगे।

घरमें बीमारीके समय हमारे बच्चे रोगियोंकी देखभाल करनेकी कला सीख जायंगे और मामूली रोगोंके अिलाज जान जायंगे; घाव किस कारणसे पकता है और क्या करनेसे अुसे पकनेसे रोका जा सकता है, किस तरह मच्छर मलेरिया फैलाते हैं और अुससे संबंधित जीवाणुओंका स्वभाव कैसा है — अिस प्रकारका बहुतसा शास्त्र हम अुन्हें सिखायेंगे। हम अुन्हें हवा, पानी, प्रकाश, व्यायाम आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले स्वास्थ्यके सिद्धान्त भी सिखायेंगे।

संभव है ये सारी बातें हम तमाम सेवक न जानते हों। परन्तु आपको कभी यह विचार आया है कि यह सब न जानना सेवककी हमारी योग्यतामें अेक बड़ी न्यूनता ही मानी जायगी? अब अपने बच्चोंको शिक्षा देनेका रस पैदा होने पर हम यह सारा ज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न करने लगेंगे। और अैसा करनेमें हमें कितना अलौकिक आनंद आयेगा?

कुछ तो हम जानकार मित्रोंसे जान लेंगे और कुछ पुस्तकोंकी सहायतासे जान लेंगे। हम देखेंगे कि अिसका अधिकांश आसानीसे सीख लिया जा सकता है। आज तक हमने अुसे नहीं सीखा, यह केवल हमारी बुद्धिका आलस्य ही था। हम अिस भ्रममें थे कि बड़े कॉलेजोंमें गये बिना और अंग्रेजी पढ़े बिना कोअी ज्ञान मिल ही नहीं सकता।

अब तक गहरे पानीमें अुतरे बिना, बुद्धिसे काम लिये बिना काम करनेकी हमारी आदत थी। अब हमने अपने बच्चोंको सिखानेके निमित्तसे यह सब सीखा, अिसलिअे हम यह क्यों न मानें कि यह बच्चोंने अप्रत्यक्ष रूपमें हम पर बड़ा अुपकार किया है? विज्ञानकी आंखसे प्रत्येक प्रवृत्तिको देखना हमें आयेगा, तब अिन प्रवृत्तियोंमें हमारा रस कितना ज्यादा बढ़ जायगा? अब तक हमारे सब काम निर्जीव थे। अब वे हमें सजीव लगेंगे। अब लोगोंमें भी हम अपने कामोंके लिअे अधिक दिलचस्पी पैदा कर सकेंगे।

नौ-दस वर्षकी अुम्र तक बालक अैसे काम खेलके रूपमें, अपनी भीतरी प्रेरणासे हमारे साथ करते थे। अुनके छोटे होनेके कारण हम अुन पर कर्तव्यके रूपमें कोअी काम लादते नहीं थे और न अुन पर किसी कामका आधार रखते थे। परन्तु अब वे बड़े हो गये हैं, अिसलिअे अुन्हें स्वतंत्र काम सौंपे जाने चाहिये। स्वतंत्र रूपमें काम करनेका मौका न मिले तब तक अुनमें सच्ची कुशलता नहीं आ सकती।

और देखिये, अीश्वरकी कुदरत भी कैसी है? अिस अुम्रमें बच्चोंमें भी स्वतंत्र रूपमें काम करनेका स्वयंभू अुत्साह प्रकट होता है। अुनके जीवनके विकासके लिअे जिस शिक्षाकी अुन्हें जरूरत है, अुसकी भूख अुन्हें कुदरती तौर पर लगती है। विविध कार्य करते हुअे अुनके मनमें अनेक प्रश्न भी अिस अुम्रमें स्वाभाविक तौर पर अुठते हैं। अुनके ये प्रश्न हम यदि सहानुभूतिपूर्वक सुनें, अुनमें गहरे जाकर स्पष्टीकरण करते रहें और हमें न आता हो अुसका स्पष्टीकरण ढूंढ़नेकी कोशिश करें, तो बच्चोंको अपने कामोंमें सजीव दिलचस्पी मालूम होगी। अुनकी बुद्धि अुन कामोंके आधार पर वैसे ही दौड़ने लगेगी, जैसे रेलकी पटरी पर रेलगाड़ी दौड़ती है। अुन्हें नअी नअी बातें सूझने लगेंगी।

अब हम यह भी देखेंगे कि बच्चोंकी जिज्ञासा-वृत्तिको केवल घरके सादे कामोंसे सन्तोष नहीं होता। वे अपने लिअे अधिक बड़े और विशाल कार्य-क्षेत्रकी मांग करेंगे। यदि हमारे घर या आश्रममें खेती-बाड़ी या कताअी, पिंजाअी और बुनाअी जैसा कोअी-ग्रामोद्योग चलता होगा, तो बच्चे अुसकी ओर आकर्षित हुअे बिना कभी नहीं रहेंगे। किसानों, जुलाहों, सुतारों, लुहारों और कुम्हारों वगैराके बच्चे कितने भाग्यशाली हैं? अुन्हें अैसे रसीले अुद्योगोंमें अपना हाथ आजमानेका मौका स्वाभाविक तौर पर मिल जाता है।

अिसमें आपत्ति अेक ही है। कारीगर मां-बापके पास बच्चोंको सिखानेकी दृष्टि नहीं होती। वे अुन्हें अिस ढंगसे काममें लगाते हैं, मानो वे छोटी अुम्रके मजदूर हों, और अुनसे शिक्षा देनेकी दृष्टिसे नहीं परन्तु अपनी कमाअी बढ़ानेकी दृष्टिसे ही काम कराते हैं।

हम सेवक तो यह समझकर ही बच्चोंको अिन अुद्योगोंमें लगायेंगे कि अुद्योग अुनकी शिक्षाका आगेका 'वर्ग' है। हम सेवकोंके घरोंमें कताअी-पिंजाअीके अुद्योग तो चलते ही होंगे। अिन्हें हमारे बच्चोंने मांके दूधके साथ सीख लिया होगा। अब हम अुनके लिअे बुनाअी सीखनेकी भी कुछ न कुछ सुविधा कर देंगे। किसी सज्जन जुलाहेके परिवारमें अुन्हें बुनाअी सीखनेके लिअे भेजनेकी व्यवस्था करेंगे। अुद्योगकी कला जुलाहा सिखायेगा और शास्त्र हम सिखाते रहेंगे। यह राष्ट्रीय अुद्योग कैसे नष्ट हुआ, अिसका अितिहास भी अब हम अुन्हें बतायेंगे। और अुसके अुद्धारके कैसे कैसे प्रयत्न — अर्थात् स्वदेशी आन्दोलन — हुअे हैं अिसकी बातें भी कहेंगे।

खेती-बाड़ी और पशु-पालनकी शिक्षाका अवसर भी हमें बच्चोंके लिअे ढूंढ़ देना चाहिये। अिसके बिना तो किसी भी लड़के या लड़कीकी शिक्षा हमें बिना हड्डियोंके

शरीर जैसी ही लगेगी। हमारे पास जमीनकी सुविधा शायद ही होगी। परन्तु अिससे क्या? किसानोंमें हमें सज्जन मित्र मिलना कठिन न होना चाहिये। अुनके साथ हम बच्चोंको ये दोनों काम सिखानेका बन्दोबस्त कर सकते हैं। अैसे मेहनती और तरुण सहायक किसे अच्छे नहीं लगते? किसान मित्र अुनसे हल चलाने, चड़स चलाने, क्यारियां बनाने वगैराका काम करायेंगे और पशु-पालनमें दूध दुहना, पशुओंको चारा-दाना देना, मट्ठा बिलोना वगैरा काम करायेंगे।

परन्तु संभव है वे अिसके भीतरका शास्त्र बालकोंको न समझा सकें। वह काम हमारे करनेका है। यह हमें सदा खटकता रहेगा कि हमारे पास भी यह पूंजी कम है। बच्चोंकी शिक्षा जैसे-जैसे विशाल होती जायगी, वैसे-वैसे हमारी अपनी पूंजी हमें बहुत थोड़ी प्रतीत होती जायगी। वनस्पति-शास्त्र और खेती-बाड़ीमें होनेवाली भिन्न भिन्न फसलोंके बारेमें हम कितना कम जानते हैं? गाय-बैलोंके पालन-पोषणके विषयमें भी हम बहुत नहीं जानते।

परन्तु हम प्रयत्न करें तो यह ज्ञान प्राप्त कर लेना बहुत मुश्किल नहीं होगा। हम किसानोंके साथ बातें करेंगे तो अुनसे ही अिस विषयका बहुत-सा ज्ञान अिकट्ठा कर सकेंगे। अुन लोगोंको बोलनेकी आदत नहीं होती, परन्तु अुनकी जानकारी अपार होती है। साथ ही, भूमि-माता और गाय-माता दोनोंकी स्थिति हमारे यहां कैसे कंगाल हो गअी है और अुन दोनोंको फिरसे कैसे पुष्ट किया जाय, अिसके विचारोंमें भी हम बच्चोंका प्रवेश करायेंगे।

जैसे-जैसे बच्चोंकी सीखनेकी भूख बढ़ती जाय और हमें सुविधा मिलती जाय, वैसे-वैसे कुम्हार, लुहार, बढ़अी वगैरा मित्रोंकी सहायतासे अिन ग्रामोद्योगोंकी तालीम भी हम अपने बच्चोंको सहज ही दे सकते हैं।

कितनी विशाल, कितनी विविधतापूर्ण, कितनी ज्ञान-विज्ञानके रससे भरी हुअी है यह शिक्षा! अिसकी तुलनामें आप हाअीस्कूलोंमें मिलनेवाली शिक्षाको रख ही नहीं सकते। और मैंने बिलकुल मोटी मोटी बातें ही, जो याद आयीं, यहां गिना दी हैं। बच्चोंको हम चौदह-पंद्रह वर्षकी अुम्र तकमें तो अिससे कहीं अधिक शिक्षा दे सकते हैं।

परन्तु लोगोंको शंका होती है कि हमारे पास अपने काम-धंधे होते हैं, हमें बच्चोंके साथ सिरपच्ची करनेका समय ही कहां रहता है? अैसी शंका होनेका कारण यही है कि हमें सच्ची शिक्षाकी कल्पना नहीं होती। अिसीलिअे हम चौंकते हैं। हमें यह वहम हो गया है कि पाठशालामें बच्चे बैठें, वहां शिक्षक अुन्हें पढ़ायें, थोड़ी देरमें यह पुस्तक और थोड़ी देरमें वह पुस्तक पढ़वायें, तभी विद्या आती है। मेरे वर्णन परसे आप कल्पना कर सकेंगे कि कामकाज और ग्रामोद्योग करते हुअे बच्चे जो विशाल ज्ञान आसानीसे प्राप्त कर सकते हैं, वह पाठशालाओंकी पुस्तकोंमें कभी समा ही नहीं सकता; और यह सब सिखानेके लिअे कक्षामें चार-छः घण्टे बैठनेकी, भाषण देनेकी

या पुस्तक पढ़ानेकी जरूरत ही नहीं है। चलते काममें दो शब्द कहनेसे लंबे भाषणकी अपेक्षा अधिक समझ दी जा सकती है।

शिक्षाकी अुपरोक्त कल्पनामें अेक बात कहनी रह गअी है। पुराने विचार-वालोंकी आंखमें वह आये बिना नहीं रहेगी। अिसमें पढ़ने-लिखने और गणितका तो नाम भी नहीं आया। हां, हमारी कल्पना पूरी करनेके लिअे ये कलाअें बच्चोंको सिखानी ही चाहियें। अिसके लिअे मां-बापको घण्टा आध घण्टा बच्चोंको देना होगा।

बच्चोंको कुछ चित्रकारी करनेका प्रोत्साहन छुटपनसे दिया गया होगा, तो वे दस-बारह वर्षकी अुम्रमें बहुत ही तेजीसे लिखने लगेंगे। और अुनकी सधी हुअी अुंगलियां बहुत ही सुन्दर, मोती जैसे अक्षर लिख सकेंगी।

गणित भी कामकाज करते हुअे अुन्होंने कुछ जान ही लिया होगा। अब अुसे लिखकर करनेमें अुन्हें देर नहीं लगेगी।

पाठशालाओंमें जब यह वस्तु बिलकुल ही छोटे बालकोंके सामने रखी जाती है, तब अुन्हें अनेक कारणोंसे अिसमें रस नहीं आ सकता। अिसलिअे पाठशालामें प्रारंभके अुनके चार-पांच साल अत्यंत अुबानेवाले बीतते हैं। बड़ी अुम्रमें वही सिखानेसे छुटपनके अनुभवके आधार पर बालक पांच वर्षकी शिक्षा अेक वर्षकी अवधिमें ग्रहण कर लेंगे और अुसमें अुन्हें रस भी अुद्योगोंके बराबर ही आयेगा। कामकाज और अुद्योगोंमें तरह तरहके हिसाब लगानेकी जरूरत होती ही है। अिससे गणित सीखनेमें अुन्हें नित्य नया रस बना रहेगा। अुद्योगोंके बारेमें, अुनसे संबंध रखनेवाले शास्त्रोंके बारेमें और अितिहास आदिके बारेमें जैसे हम अुन्हें मौखिक ज्ञान देते रहेंगे, वैसे ही आगे चलकर अुनसे संबंधित पुस्तकें भी अुनके हाथोंमें रखते रहेंगे। अुन्हें पढ़कर वे अपनी विविध प्रकारकी शिक्षाको और अनुभवोंको लेखबद्ध करनेकी कलाका भी रसपूर्वक विकास करने लगेंगे।

अिस सिलसिलेमें रोज घंटा आधा घंटा देनेका नियम यदि हम सतत पांच-सात वर्ष तक पालन करेंगे, तो गणित-शक्ति और लेखन-शक्ति दोनोंमें हम अपने बच्चोंको क्रमशः देने लायक सब कुछ दे सकेंगे। वे जो अलग अलग अुद्योग सीखते होंगे, अुनकी गहरी जानकारीके सिलसिलेमें बीजगणित, भूमिति और थोड़ी-बहुत त्रिकोणमितिका भी आश्रय लेना पड़ेगा। अुद्योगोंकी सच्ची आदत — सावधानी — पैदा करनेकी हमने चिन्ता की होगी, तो बच्चे डायरी और हिसाब रखेंगे। तभी अुन्हें अुद्योग सीखनेका सच्चा आनंद आयेगा। अपनी रोजकी प्रवृत्तियोंकी डायरी लिखनेमें भी अुन्हें आन्तरिक आनन्द आयेगा। हिसाबी काम तथा डायरी ये दो चीजें गणित और लेखनकी कलाओंको बहुत ही आगे बढ़ानेवाली हैं।

हमारा रोज कुछ न कुछ प्रगति करनेका संकल्प होगा, तो हमें मातृभाषाका साहित्य और व्याकरण तथा राष्ट्रभाषा और हमारे देशकी दो-चार अन्य भाषाअें सिखानेके लिअे भी काफी अवकाश मिल जायगा।

यह सब सुनकर आपके मनमें कैसी परेशानी पैदा हो रही है, अिसकी मैं कल्पना कर सकता हूं। आप अपने प्यारे बच्चोंको शिक्षा देनेके लिअे समयकी कुर्बानी करना नापसन्द तो नहीं करेंगे। परन्तु आप सालमें तीन सौ पैंसठ दिन घर पर ही नहीं रह सकते। अपने कामकाजके सिलसिलेमें बहुत दिनों तक आपका दूसरे गांवोंका दौरा करना भी जरूरी होगा। हम अभी तो ग्रामसेवकोंकी ही बात कर रहे हैं। अुदाहरणके लिअे, मान लीजिये कि आप खादी कार्यकर्ता हैं और आपको खादी-कामके सिलसिलेमें पांच-पचास गांवोंमें चक्कर लगाते रहना पड़ता है।

परन्तु अिससे आपको परेशान नहीं होना चाहिये। आपने कहां पाठशाला खोल रखी है कि अुसके कार्यक्रममें खलल पड़नेसे यह परेशानीका विषय बन जाय? गांवोंमें घूमने जायं तब बच्चोंको साथ ले जाअिये। वे आपके काममें बाधक नहीं होंगे। वे किसीका पींजन सुधार देंगे, किसीका चरखा ठीक कर देंगे, तो किसीके तकुअेका बल निकाल देंगे। सूतके दाम चुकाते समय हिसाब नोट करनेमें भी वे आपके सहायक बन जायंगे, और ये अधखिली कलियों जैसे बाल-ग्रामसेवक आपकी कार्य-पद्धतिका अवलोकन भी करते रहेंगे। लोगोंसे आप कैसे काम लेते हैं, अुनकी शंकाओंका कैसे समाधान करते हैं, अुन्हें नअी-नअी बातें सीखनेका कैसे शौक लगाते हैं, यह देखना और अनुभव करना अुनकी शिक्षाके लिअे बहुत जरूरी है।

असलमें अकेली अुद्योगकी शिक्षा कभी पूरी शिक्षा नहीं कही जा सकती। होशियारसे होशियार किसान बन जाने या कारीगर बन जानेसे सारा जीवन सेवामें लगानेका शौक पैदा हो जायगा अैसा नहीं कहा जा सकता। अक्सर गणित और विज्ञानके विद्यार्थियोंके बारेमें हम देखते हैं कि अुन्हें अपने आंकड़ोंमें, अपने लोहे-लकड़ीके साधनोंमें और ताने-बानेमें ही रस आता है, परन्तु आसपासके मनुष्योंके सुख-दुःखोंमें सहानुभूति पैदा नहीं होती। वे अेकाकी और स्वार्थी भी बन जाते हैं।

यह कहना चाहिये कि आपके बच्चे अिस मामलेमें बहुत ही भाग्यशाली हैं। आपका काम ही अैसा है कि अुसमें मनुष्योंके और वह भी दीन-दुःखी-दरिद्र मनुष्योंके सम्पर्कमें आना पड़ता है। आपकी प्रवृत्तिका यह भाग तो अुद्योगकी शिक्षासे भी अधिक कीमती तालीम है। अुसका लाभ पाठशालामें पढ़नेवाले बच्चोंको सपनेमें भी नहीं मिल सकता। आपके यहां आप घरमें हों या बाहर — लोगोंसे बरताव करनेका आपका ढंग ही अलग है। सब पढ़े-लिखे कहलानेवाले लोग जिन्हें तू-तड़ाक और तिरस्कारसे ही बुलाते हैं, जिन्हें मनुष्य नहीं परन्तु नौकर मान लेते हैं, जिनसे कस कर काम लेने और कमसे कम दाम देनेमें ही अपनी होशियारी समझते हैं, जिनके सुख-दुःख, खाने-पीने, तंदुरुस्ती-बीमारी वगैराके संबंधमें कथित संस्कारी लोगोंकी बुद्धिके दरवाजे भी सदा बन्द ही रहते हैं — अुनके साथ आपका व्यवहार दूसरी ही तरहका होता है। आपसे अुन्हें 'तुम' संबोधन मिलता है, आपके पास अुन्हें बैठनेको आसन मिलता है तथा आर्थिक व्यवहारमें अुन्हें अेक पाअी भी बेजा तौर पर कम न मिले,

अिसके लिअे आप जाग्रत रहते हैं। अितना ही नहीं, परन्तु अुन्हें निर्वाह-वेतन न दिला सकें तब तक आपको चैन नहीं पड़ता।

और आप सच्चे खादी-सेवक हों तो अुन्हें काम देकर और अुन्हें मजदूरी चुका कर ही संतोष नहीं कर लेते। वे बीमार होते हैं तब आप अुनकी सेवामें जागरण करते हैं, वे साहूकार या कोर्ट-कचहरीके फंदेमें फंस जाते हैं तब भी आप अुनकी सहायताको दौड़ते हैं। आप समय-समय पर अुनके यहां ग्राम-सफाअी आदि सेवा करने जाते हैं।

कभी-कभी अुनकी सेवा करते हुअे आपको अुग्र लड़ाअियां और सत्याग्रह करनेके प्रसंग भी आ जाते हैं। कभी आप हैजे जैसी छूतकी बीमारियोंके विरुद्ध जिहाद चलाते हैं, कभी शराब और ताड़ीकी दुकानों पर पहरा लगाते हैं, कभी अुन्हें कथित अूंची जातियोंकी तरफसे मजदूरी वगैराके संबंधमें न्याय दिलानेके लिअे आन्दोलन करते हैं और कभी हरिजनोंको कुअें-मंदिरके अधिकार दिलवानेके लिअे सत्याग्रहका आश्रय लेते हैं।

क्या ये सब प्रवृत्तियां आपको बच्चोंकी शिक्षामें बाधा डालनेवाली लगती हैं? अुनके लेखन और गणितके समयको बिगाड़नेवाली मालूम होती हैं? आप कभी अैसा न मानें। अिनसे तो अुन्हें जीवनका सच्चा भोजन मिलेगा। अिससे अुन्हें वह शिक्षा मिलेगी, जिसे हृदय अथवा भावना अथवा आत्माकी शिक्षा कहते हैं। अपने जीवन और प्रवृत्तियोंके द्वारा वह शिक्षा देनेकी बात हमारे पाठ्यक्रममें मौजूद ही है। हृदयकी शिक्षा देनेका और कोअी तरीका ही नहीं है। परेशान होनेके बजाय आपको अीश्वरका अुपकार मानना चाहिये कि आपके जीवनमें अिसके लिअे काफी गुंजाअिश है।

आपने सेवकका जीवन स्वीकार किया है, अिसलिअे यदि आपको धन, बड़प्पन और अैश-आराममें कमी करके गरीबीका वरण करना पड़ा है, तो अुससे आपको कुछ अैसे लाभ भी मिले हैं जिनके लिअे बड़े बड़े धनिक और विद्वान भी आपसे अीर्षा करेंगे। आप आश्रम जैसे स्थानोंमें रहते हों तो खुली हवा, परिश्रमी जीवन वगैराके कारण तन्दुरुस्तीका दुर्लभ धन आप प्राप्त कर सकते हैं। शहरवालोंके लिअे दुर्लभ शुद्ध दूध, घी, ताजी सागभाजी वगैरा आपके लिअे सुलभ हैं। बीमारीमें आपको डॉक्टरोंका लाभ भले न मिलता हो, परन्तु प्रेमसे सेवा करनेवाले पड़ोसियों और मित्रोंका सौभाग्य जरूर प्राप्त हुआ है। और अन्य सबके मनमें अीर्षा पैदा करनेवाला सबसे बड़ा सौभाग्य तो आपको यह प्राप्त हुआ है कि आपका जीवन आपके बच्चोंको अत्यन्त सुन्दर शिक्षा और संस्कार प्रदान करता है। आप अुनकी शिक्षाके लिअे विशेष खर्च न करें, खास परिश्रम न करें, तो भी अुन्हें अिससे शरीर, बुद्धि तथा हृदयकी पवित्र शिक्षा अपने-आप मिल जाती है।

बच्चोंको कसरत और मेहनत कराकर अुनका शरीर बलवान बनानेका और अुद्योग तथा शास्त्र सिखाकर अुन्हें बुद्धिमान बनानेका तो दूसरे मां-बाप भी चाहें

तो प्रवन्ध कर सकेंगे। परन्तु ये शरीर-वल और वुद्धि-वल किसी शास्त्रकी भांति अूंचा अुठानेवाले भी वन सकते हैं और नीचे गिरानेवाले भी वन सकते हैं। अुनका पुण्यमय अुपयोग तो तभी हो सकता है जव अुनके साथ साथ हृदय सुसंस्कृत हो, मनमें सेवाकी भावना अुत्पन्न हुअी हो, दीन-दरिद्र लोगोंके लिअे प्रेम पैदा हुआ हो और अुन्हें अूंचा अुठानेके लिअे मर मिटनेकी वीरता आ गअी हो।

आपका सेवक-जीवन अिस शिक्षाके लिअे कितना अधिक अनुकूल है? अुससे आपके वच्चोंके हृदयमें पवित्र संस्कारोंका सिंचन होता है, यह विचार आप अपने मनमें जाग्रत रखें तो आपको अपने कष्ट, संयम और गरीवी सव कितने मीठे लगेंगे?

अेक सेवक, जिसके पास विद्वत्ताकी वहुत वड़ी पूंजी नहीं है, अल्प प्रयाससे ही अपना काम करते-करते अपने लड़के-लड़कियोंको खर्चीली पाठशालाओंमें भेजे विना किस तरह शिक्षा दे सकता है, अिसका चित्र मैंने काफी विस्तारसे आपके सामने पेश किया है।

मैं तो मानता हूं कि मामूली किसान या कारीगर भी चाहे तो अैसी शिक्षा अपने वच्चोंको दे सकता है। परन्तु आज तो वे शरीरसे और संपत्तिसे जैसे दुर्वल हैं, वैसे ही ज्ञानसे भी अत्यन्त दुर्वल हैं। अुनके पास अपने धंधोंकी जानकारी तो होती है, परन्तु अुनकी आत्मा दवी हुअी होनेके कारण वे धन्धे अुन्हें या अुनके वच्चोंको अूंचा अुठानेमें काम नहीं आते। दुःखोंकी आग और गुलामीमें वे जीवनके अूंचे सिद्धान्तोंके वारेमें श्रद्धा और अुत्साह गंवा वैठे हैं। अिसलिअे अुनसे हम अितनी अपेक्षा नहीं रख सकते कि वे वच्चोंकी शिक्षाकी जिम्मेदारी अुठायें।

परन्तु सेवकोंके वारेमें मैं जरूर कहूंगा कि अगर वे अपने वच्चोंको अिस प्रकारकी शिक्षा देनेका फर्ज अदा नहीं करेंगे और साधारण लोगोंकी तरह वच्चोंको पाठशालामें भेजकर अपने सिरकी वला टालेंगे, तो यह अुन लोगोंके सेवक-धर्ममें सचमुच अेक वहुत वड़ी खामी मानी जायगी। यदि वे अैसा करें तो यही कहा जायगा कि अुनके हाथमें शिक्षाका जो स्वादिष्ठ, पौष्टिक और सात्त्विक भोजन अीश्वरकी कृपासे आ गया है, अुसे वे घूरे पर फेंक देते हैं और वच्चोंका पालन-पोषण रुपया खर्च करके पाठशालाकी पढ़ाअी-रूपी हलकी वाजारू मिठाअी पर करते हैं। अैसे वच्चे वड़े होने पर मां-वापके सेवाधर्मके प्रति अश्रद्धा और आलोचक वृत्ति रखने लगें, मां-वापकी गरीवी, सादगी और शरीर-श्रमके रहन-सहनके लिअे तिरस्कार रखने लगें, अैश-आरामके पुजारी और धनके लोभी निकलें, माता-पिताकी देशभक्तिका अुत्तराधिकार न अपनायें, तो अिसमें कोअी आश्चर्यकी वात है?

यह केवल अशुभ कल्पना ही नहीं है। वहुतसे मामलोंमें अैसा ही होता है। अैसा होने पर सेवकोंका जी जलता है और वे दुनिया और दैवको दोष देते हैं। वे पाठशालाकी पढ़ाअीकी निन्दा भी करते हैं। परन्तु हम जांच करेंगे तो मालूम होगा कि यह निन्दा सिर्फ जवानी ही होती है, क्योंकि अुनके जो और छोटे वालक

होते हैं अुनके वारेमें भी वे घरकी शिक्षा पर अुतनी ही अश्रद्धा और पाठशालाकी पुरानी शिक्षा पर अुतना ही मोह रखते हैं।

सेवकोंमें भी जो सेवक राष्ट्रीय शिक्षाका काम करनेवाले हैं, वे भी जव अपने वच्चोंकी पढ़ाअीका सवाल खड़ा होने पर अंग्रेजी पढ़ाअीके लिअे अैसा मोह दिखाते हैं और अुनके लिअे 'अच्छी अच्छी' पाठशालाअें और कॉलेज ढूंढ़ते हैं तो अुनके लिअे क्या कहा जाय? अपने कार्यके संवंधमें अुनकी कच्ची श्रद्धाके विपयमें क्या कहा जाय? वेशक, यही कहना चाहिये कि वे अैसा मोह दिखाकर अपने वच्चोंका द्रोह करते हैं और अपने शिक्षक-धर्मके प्रति पाप करते हैं। जो दूसरोंको कातने और खादी पहननेका अुपदेश देते हैं, परन्तु खुद विदेशी वस्त्र ही काममें लेते हैं, अुनके अुपदेशका जैसा फल निकलेगा वैसा ही फल अिन राष्ट्रीय शिक्षकोंकी राष्ट्रीय शिक्षाका निकले तो अिसमें कोअी आश्चर्यकी वात नहीं? वे राष्ट्रीय शिक्षाकी वात करें तव सच्ची श्रद्धाका वल अुनके वचनोंमें कैसे आ सकता है? लोग समझ जाते हैं कि वुद्धिमानी अुनके कहे अनुसार करनेमें नहीं, परन्तु वे अपने वच्चोंके लिअे जैसा करते हैं वैसा करनेमें ही है।

परन्तु कोअी सेवक यदि यह मोह छोड़कर मेरी वताअी हुअी शिक्षा और पाठशालाओंमें मिलनेवाली शिक्षा — अिन दोनोंकी शिक्षाकी दृप्टिसे तुलना करे और अिस वातका विचार करे कि दोनोंमें से कौनसी शिक्षाने वच्चोंके लिअे सच्चे सेवा-जीवनका दरवाजा खोल दिया है और किसने सदाके लिअे वन्द कर दिया है, तो अुसे स्वीकार करना पड़ेगा कि जिसका मैंने वर्णन किया है वही श्रेप्ठ शिक्षा है। अितना ही नहीं, वही शिक्षाके नामको सुशोभित करनेवाली है।

शिक्षाशास्त्री भी यदि शिक्षाके तत्त्वमें घुस कर विचार करें, केवल अुसके वाह्य आडंवरमें ही चक्कर लगाना छोड़ दें, यह कसौटी अपने सामने रखें कि मनुष्य-जीवनका सच्चा विकास किस शिक्षासे होता है और यह गलत कसौटी छोड़ दें कि दुनियामें धन-मान कमाना किससे आसान होता है, तो अुन्हें भी अिस शिक्षाके पक्षमें ही खड़े रहना होगा। क्या वर्धा-योजनाका प्रख्यात शिक्षाशास्त्रियोंने समर्थन नहीं किया है? और मैंने जिस शिक्षाकी वात कही है, वह क्या अुससे भिन्न कोअी चीज है?

वर्धा-योजनामें जो सिद्धान्त प्राथमिक शिक्षा अर्थात् छोटे वच्चों पर लागू किये गये हैं, अुन्हीं सिद्धान्तोंका मैंने आगेकी शिक्षाके लिअे विस्तार किया है। परन्तु मैं जानता हूं कि जिन शिक्षा-पंडितोंने अुनका छोटे वच्चोंके मामलेमें समर्थन किया है, वे भी वड़ोंके लिअे अुनका समर्थन करनेमें कांप अुठेंगे। शायद अुनकी नजरमें यही होगा कि "वचपनमें भले ही लड़के-लड़की खेलें-खायें और शरीरसे जरा ताजे-तगड़े वनें; वड़े होकर तो अुन्हें हाअीस्कूल-कॉलेजकी पढ़ाअी ही करनी है न? अिसलिअे वर्धा-योजनामें जो कमी रह गअी होगी, अुसे पूरा कर लेनेकी हाअीस्कूलमें काफी गुंजाअिश है।" परन्तु हम सेवकोंको शिक्षाशास्त्रियों अथवा और किसीके वाहरी

समर्थनकी आशा नहीं रखना चाहिये। हमारी श्रद्धा भिन्न है और दूसरोंकी भिन्न है। हमने जीवनका ध्येय त्याग और सेवाको स्वीकार किया है। दूसरोंका ध्येय धन-मान प्राप्त करना है। हमारी सच्चे हृदयकी अुत्कंठा यही है कि हमारे लड़के-लड़कियां सच्चे सेवक निकलें। अिसलिअे हमें तो स्कूल-कॉलेजोंका मोह छोड़कर अुन्हें अिसी तरहकी शिक्षा देनेकी हिम्मत करना चाहिये। वैसा करते हुअे जो थोड़ा समय बच्चोंके लिअे देना जरूरी है वह हमें असंतोषके बिना देना चाहिये और अपना ज्ञान अधूरा लगे तो अुसे पूरा करके सच्चे शिक्षककी योग्यता बढ़ाते रहना चाहिये। अैसा करनेमें असंतोष हो ही कैसे सकता है? यह काम तो हमारे जीवनमें अपूर्व रस अुंड़ेलनेवाला बन जाना चाहिये।

मैंने यह सब आज सेवकोंके बच्चोंकी शिक्षाकी दृष्टिसे ही कहा है। परन्तु असलमें वह सभी लोगों पर लागू होता है। हम यही चाहते हैं कि सब लोग अैसी प्राणवान शिक्षाका दूध पीकर बड़े हों। परन्तु आज हम सब माता-पिताओंसे अितनी समझ या अितनी श्रद्धाकी आशा नहीं रख सकते, जितनी सेवकोंसे रख सकते हैं।

अिसलिअे मेरे सुझावके अनुसार जो सेवक अपने बच्चोंको शिक्षा देनेका भार अुठानेको तैयार हों, अुन्हें मैं थोड़ा अधिक भार अपने सिर पर अुठानेका सुझाव दूंगा। वे अपने बच्चोंके साथ ग्रामवासियोंके दो-चार बालकोंको भी मिला लें। अिससे अुनकी और अुनके बच्चोंकी दिलचस्पी घटेगी नहीं, परन्तु जितनी सोची है अुससे अधिक बढ़ जायगी। मैं बड़ी भीड़ जमा करके पाठशाला खोलनेको नहीं कहता। हमारे बच्चोंके हमअुम्र दो-चार संगी-साथियोंके लिअे ही मेरा यह सुझाव है। मैंने बताअी वैसी शिक्षा देनेमें किसी किसान, जुलाहा, कुम्हार आदि मित्रोंका अुपकार लेना ही पड़ेगा। तो क्यों न अिन अुपकारी मित्रोंके बच्चोंको ही अिसमें मिला लिया जाय?

हमने अब तक अपने बच्चोंकी शिक्षाकी जिम्मेदारी खुद अुठानेका कभी विचार ही नहीं किया, अिसलिअे हमें यह नया धर्म सिर पर दस मनके बोझ जैसा लगता है। अिसमें बोझ नहीं, परन्तु रस और आनन्द है, यह हमें जल्दी समझमें नहीं आता।

पश्चिमकी रमणियां अपने बालकोंको अपनी छातीका दूध पिलानेको अेक प्रकारका भार मानना सीख गअी हैं और अिस जिम्मेदारीसे वे बचती हैं। हमारे यहां भी सभ्य स्त्रियां अुनकी नकल करती पाअी जाती हैं। परन्तु क्या हमारी ग्राम-माताओंको कभी यह फर्ज भारस्वरूप लगा है? वे तो अुन सभ्य माताओंका तिरस्कार करके हंसती हैं और कहते हैं: "अुन्हें मां कौन कहेगा?" अपने बच्चोंको शिक्षा देनेके कर्तव्यको भार माननेवाले हम सब माता-पिता भी असलमें अुन सभ्य स्त्रियों जैसे ही हंसीके पात्र हैं। अीश्वर हमें देखकर तिरस्कारसे हंसता होगा: "अिन्हें मैंने मां-बाप क्यों बनाया?"

आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा

आठवां विभाग

प्रार्थना

प्रवचन ४६

प्रार्थना-परायणता

आश्रममें हम रोज प्रार्थना करनेके लिअे जमा होते हैं। हमारा दिनका पहला काम अिकट्ठे होकर प्रार्थना करनेका है और दिनका आखिरी काम भी अिकट्ठे होकर प्रार्थना करनेका रखा गया है। जागकर हम तुरंत प्रातःकालके ब्राह्म-मुहूर्तमें प्रार्थना करते हैं। अुससे हमारे हृदयमें अैसा आनन्द ही आनन्द अुमड़ता रहता है कि अुसकी धुनमें हमारा सारा दिन आनन्द और अुत्साहमें बीतता है। कितना ही काम करें तो भी हमें थकावट नहीं लगती। शामको फिर हम कामकाज निबटाकर शांतिसे प्रार्थनामें बैठते हैं, तब भी अेक प्रकारकी अलौकिक तृप्ति अनुभव करते हैं। हमें यह संतोष होता है कि भगवानने हमारा अेक और दिवस-पुष्प स्वीकार किया, और अुसकी मस्तीमें हमारी सारी रात शान्त निद्रामें पूरी होती है।

प्रार्थना हमारे सारे कार्यक्रमोंमें सबसे सरस और आकर्षक कार्यक्रम है। भोजनकी घंटी सुनकर जैसे हमारा अेक-अेक अणु तैयार हो जाता है और भोजनशालाकी तरफ कान लगा देता है, वैसा ही अनुभव कुछ कुछ हमें प्रार्थनाकी घंटी सुनकर भी होता है। सुबह चार बजेकी नींद हमें जरूर मीठी लगती है, परन्तु प्रार्थनाकी घंटीकी आवाज अुससे भी ज्यादा मीठी लगती है। अुसे सुनकर हमें अपने सब प्रिय साथियोंके हंसते हुअे चेहरे याद आते हैं। अुनके साथ सुन्दर चौकमें बैठने, अुनकी आवाजमें अपनी आवाज मिलाने, अुनके मंत्रोंमें अपने मंत्र गूंथने, और अुनके गायनमें अपना गायन बुन देनेको हमारा अेक-अेक अणु आतुर हो अुठता है।

अपने सब आश्रमवासी मित्रोंको जब जब हम देखते हैं, तब तब हमारे भीतर आनन्दकी लहर अुठती है; परन्तु जब अुनके और हमारे कंठोंसे निकलनेवाली प्रार्थनाका अेकत्रित घोष हम सुनते हैं, तब हमारे आनन्दमें सचमुच पूर्णिमाका ज्वार ही आ जाता है। सुन्दर वृक्षकुंजसे घिरा हुआ हमारा आश्रमका चौक हमें प्यारा लगता है, परन्तु जब अुसकी हवामें हम सबका सम्मिलित प्रार्थना-घोष व्याप्त हो अुठता है तब तो हमारी आत्मा सचमुच नाच अुठती है; मनमें अैसी अुमंग आती है कि अिस भूमिके लिअ तो हम अपना सिर भी दे सकते हैं; मनमें हम अैसा बल अनुभव करने लगते हैं मानो अिन सब साथियोंके साथ तो खुद शैतानकी सेनासे भी हम युद्ध कर सकते हैं।

हमारी प्रार्थनाकी क्रियामें कुछ अैसी ही भावना होती है। वह भावना कितनी संक्रामक है! आपका हृदय प्रफुल्लित होता है, अुसके असरसे मेरा हृदय प्रसन्न होता है; और मेरा हृदय नाच अुठता है तो अुसे देखकर आपका हृदय भी नाच अुठता है। किसीकी भावना कुछ गहरी होगी तो किसीकी अभी बहुत छिछली होगी, परन्तु हम सब अेक-दूसरेके सहारेसे, अेक-दूसरेके सत्संगसे, अुसे प्रतिदिन बढ़ाते रहना चाहते हैं।

हम सब प्रभुके मार्गके पथिक हैं। वह मार्ग लंबा है, विकट है, अनजाना है। अुसमें पग-पग पर भय और खतरे बिछे हुअे हैं। और हमारे पैर कमजोर हैं। पैरोंसे हमारा मन अधिक दुर्बल है और मनसे छाती और भी ढीली है। हमें प्रतिक्षण शंका होती है — "हम मार्ग भूल तो नहीं गये हैं? दुनियामें और सब तो धन, मान और कीर्तिके मार्ग पर चल रहे हैं। हम अकेले ही त्याग और सेवाके मार्ग पर चलते हैं। कहीं हम भुलावेमें तो नहीं पड़े हैं? सबके साथ पुराने मार्ग पर चलकर प्रत्यक्ष सुख और आराम भोगना छोड़कर हमने भावी कल्याणकी कल्पित आशामें दुःख-दारिद्र्यका मार्ग अपनाया है; यह अेक प्रकारका पागलपन तो नहीं है? विदेशी राज्यका सहारा लेकर पढ़े-लिखे लोग अनेक प्रकारसे अपना फायदा कर लेते हैं। अकेले हमींको स्वराज्यकी क्या पड़ी है? भूखे-अभागे लोगोंके दुःखसे हम अकेले ही क्यों सूख रहे हैं?"

हमारा दुबला शरीर बकरीका-सा दीन मुंह बनाकर अिस शंकामें वृद्धि करता है, मानो भिन्न अस्तित्व रखता हो अिस तरह स्वयं अपनेसे वह दयाकी भीख मांगता है: "अब बहुत हो गया, बहुत हो गया। मैं अच्छा ताजा और जवान था तब तक मुझ पर जुल्म किया सो तो ठीक, परन्तु अब मैं बूढ़ा हो गया हूं। अब तुम्हारे गांवमें मुझसे नहीं रहा जाता, तुम्हारी मोटी रोटियां नहीं खाअी जातीं, तुम्हारी मोटी खादी नहीं पहनी जाती और अब तुम्हारा कैदखाना भी बरदाश्त नहीं होता। अब जरा आरामसे बैठने दो, तो तुम्हारी बड़ी मेहरबानी होगी!"

दुनियाके सयाने लोग हमें बुद्धू समझकर हमारी हंसी अुड़ाते हैं। जातिवाले लाल आंखें करके तानोंकी मार चलाते हैं। अुससे मुश्किलसे बचते हैं तो मां-बाप और पत्नी आंसुओंका दरिया बहाते हैं। दूसरी तरफ सरकार भी नहीं झुकती। वह दिन-दिन अपना पंजा अधिकाधिक कसती जा रही है। हमारे कार्यकी बाड़ीमें दो पत्ते अुगे न अुगे कि अुसे अुखाड़ डालती है।

यह सब होने पर भी हमारा कार्य टिक सकता है, यदि भोली-भाली जनता हमारा कहना माने। परन्तु हा! असके चेहरे पर श्रद्धाकी चमक आती ही नहीं। अुसका दुःख कहांसे आता है, अिसे वह समझती ही नहीं; और कभी तो वह हम जैसे अपने हितचिन्तक और सेवक लोगोंको ही दुःखका कारण मानकर अुन्हें दुतकारती है।

पर अिसमें अुसका भी दोष क्या है? वह तो अूपर-अूपरसे ही देख सकती है। और क्या अूपरसे अैसा ही नहीं दीखता कि जहां हमारा काम चलता है, वहीं जुल्मका कोड़ा अधिकसे अधिक क्रूरतासे लगाया जाता है?

प्रभुका पंथ अैसा विकट है, परन्तु अुसे हमने स्वीकार किया है। अुसमें पीछे न हटकर निरंतर आगे ही आगे बढ़ते रहनेकी हमारी अिच्छा है। अुसके लिअे प्रार्थनाके सिवा और किस वस्तुसे हम बल प्राप्त करेंगे? प्रार्थना करनेसे वह बल हमारे अंतरमें प्रगट होता है। अेक-दूसरेकी आंखोंमें अुसका प्रतिबिम्ब देखकर हममें हिम्मत आती है। आपकी आंखोंमें श्रद्धाकी चमक देखकर मेरी आंखोंमें भी श्रद्धा चमक अुठती है और मेरी श्रद्धाकी चमक देखकर आपकी दुर्बलता दूर होती है। सचमुच हम रोज प्रार्थनामें श्रद्धापूर्वक साथ न बैठें तो हमारा क्या हाल हो?

हमारे पसन्द किये हुअे पंथमें केवल संकटों और कठिनाअियोंसे डिग जानेका ही खतरा नहीं है। अुनके सामने टिकना तो तुलनामें आसान है, परन्तु बड़ेसे बड़ा खतरा तो ध्येयके संबंधमें ही हमारी दृष्टि अुलटी हो जानेका है।

जब तक हृदयमें यह श्रद्धा थी कि अहिंसाका मार्ग ही सच्चा मार्ग है, तब तक तो अुस मार्ग पर चलते हुअे जितने भी संकट आये सबको हम अुत्साहसे शिरोधार्य करते रहे। परन्तु मान लीजिये कि अेक अभागी रातमें अहिंसा परसे हमारी श्रद्धा अुड़ गअी और मनमें अैसी गांठ बंध गअी कि हिंसाका रास्ता ही सही है! फिर तो हमारे भीतर जो भी बल होगा वह सब हमें अुसी मार्गमें लगानेकी सूझेगी न? मान लीजिये कि संयम और त्यागके प्रति हमें प्रेम नहीं रहा और भोग तथा सत्तासे प्रेम हो गया। सादे और सुन्दर ग्राम-जीवन परसे हमारी आस्था अुठ गयी और भड़कीले शहरी जीवनमें ही संस्कृतिका सार है, यह खयाल बन गया। चरखेका शान्त संगीत हमें फीका लगने लगा और सर्वभक्षक यंत्रोंके मोहने हमारी बुद्धिको घेर लिया। तो हमारी क्या दशा होगी? फिर तो सूर्योदयकी दिशासे मुंह मोड़कर हमारा जीवन सूर्यास्तकी तरफ ही दौड़ने लगेगा न? रामके मार्गसे मुंह फेरकर हम रावणकी तरफ ही वेगसे बढ़ने लगेंगे न?

और यह भय क्या केवल मनका कल्पित भय है? क्या हमारे अेक नहीं परन्तु अनेक अैसे साथियोंके दृष्टान्त अिस क्षण हमारी नजरके सामनेसे नहीं गुजर रहे हैं, जिनके जीवनके ध्येय अिस प्रकार अचानक बदल गये हैं? हमने कुछ समय तक यह आशा रखी थी कि वे मस्तिष्कका संतुलन फिर प्राप्त कर लेंगे, पछतायेंगे और फिर अपने मूल ध्येय पर आ जायेंगे। परन्तु वर्षों बीत जाने पर भी अैसा हुआ नहीं। वे सही रास्ता छोड़कर गलत रास्ते लग गये हैं, अैसा हम मानते हैं, परन्तु वे कहां मानते हैं? वे तो यही मानते हैं कि मूर्खोंके मार्ग पर लग गये थे, अुससे अपनी बुद्धिके तेजसे, अपनी स्वतंत्र विचार-शक्तिसे समय रहते हम छूट गये। बुद्धि तो दुधारी तलवार है। जिसे जिस मार्गसे प्रेम हो, अुसे अुस मार्गकी पोषक दलीलें जुटा देना अुसका काम है। दिन-दिन अुनका यह खयाल पक्का होता जाता है कि वे समय पर चेत गये यह अच्छा ही हुआ।

अैसी अुलटी दृष्टि हमें भी किसी दिन ग्रस ले तो हमारी क्या दशा होगी? क्या वे मित्र पहले हमारी ही तरह अटल और अुत्साही नहीं थे? यह देखते हुअे हमारा अपने बल पर अति विश्वास और अभिमान रखकर चलना क्या ठीक है? क्या हम सदा ही परमेश्वरकी कृपाके भूखे नहीं रहते? क्या अुसके प्रति हमेशा प्रार्थना-परायण रहनेमें ही हमारा कल्याण नहीं है?

परमेश्वर हमें दौड़कर मदद देने नहीं आता। वह तो हमें अकल्पित रीतिसे और न सोची हुअी दिशाओंमें कसौटी पर कसता रहता है। हम कसौटीकी आंचमें सिकते सिकते अधिकाधिक पक्के बनें, अैसी अुसकी योजना जान पड़ती है।

परन्तु अुसने दया करके हमें अच्छे अच्छे साथी दिये हैं। अुनकी सहायतासे और अुनके सहारेसे हम बड़ीसे बड़ी कसौटीको पार कर लेंगे। मेरी श्रद्धा-ज्योति

किसी दिन मन्द पड़नेका डर हो सकता है, पर हम सबकी तो अेकसाथ मन्द नहीं पड़ेगी। हममें से अेकाधका बल ठीक समय पर मेरे काम आ जायगा। अिसी तरह आपकी ज्योति मन्द पड़ेगी तब आपको भी अिस तरह सहारा मिल जायगा। अैसी वृत्तिसे हम सब अेक राहके मुसाफिर, प्रेम-बंधनसे बंधे हुअे साथी, रोज प्रार्थना-परायण होकर अेक-दूसरेके साथ झुंड बनाकर बैठते हैं। अुस समय हम कैसी अद्‌भुत गरमी अनुभव करते हैं! भगवानको हम देखते नहीं, परन्तु साथियोंके साथ मिलकर प्रार्थना करते हैं तब हमारे हृदय भगवानकी अुपस्थिति अनुभव करते हैं। अुस अुपस्थितिमें हमारी श्रद्धा तेज होती है, हमारे पैरोंमें जोर आता है और संकटोंका पहाड़ हमें दीमकके घरकी तरह छोटीसी टेकरी दीखने लगता है।

प्रार्थनाके बारेमें मेरी अैसी भावना होनेके कारण आप सब आनंदसे प्रार्थनामें आते हैं, अिससे मेरी आत्मा बहुत प्रसन्न होती है और मूक भावसे आपका आभार मानती है।

अीश्वररूपी सूर्यको देखनेकी आंख मुझे नहीं मिली। वह प्रत्यक्ष दिखाअी दे जाय तो शायद मैं जल भी मरूं। परन्तु अुसकी गरमी तो मुझे चाहिये ही। वह न हो तो मेरा जीवन ठंडा होकर निष्प्राण बन जाय। आप सब अिकट्ठे होकर जब मेरे साथ प्रार्थना करते हैं, तब आप मेरे लिअे अुस सूर्यकी गरमी पैदा करते हैं। फिर मैं आपका आभार क्यों न मानूं? मैं प्रभुसे प्रार्थना क्यों न करूं कि आपके हृदयमें वह रोज प्रार्थनाके लिअे श्रद्धा प्रेरित करता रहे और मेरे लिअे प्रेम बहाया करे? आपके अिस अुपकारके बदलेमें, आपके प्रेमके बदलेमें, मैं भी प्रार्थनामें मेरा अपना अल्प भाग अदा करनेके लिअे समय पर हाजिर हो जाता हूं। अैसा करनेमें मैं कोअी बड़ी असाधारण वस्तु कर डालता हूं सो बात नहीं। अैसा न करूं तो मेरे समान अुपकारको भूलनेवाला और कृतघ्नी दूसरा कौन होगा? जैसी वृत्ति धारण करके मैं प्रार्थनामें बैठता हूं, वैसी ही वृत्ति धारण करके आप भी बैठते हैं। हमारी प्रार्थनामें कोअी रंग जमता हो तो वह हमारी अिस प्रार्थना-परायण वृत्तिके कारण ही जमता है।

आज हम साथ हैं, परन्तु जिन्दगीमें रोज साथ रह सकना संभव नहीं है। अैसी आशा भी हम नहीं रख सकते। हमारे कार्य हमें कब और कहां ले जायेंगे, यह तो अकेला परमेश्वर ही जानता है। हम सबको साथ रहना पसन्द है और अेक-दूसरेकी सहायतासे आगे बढ़ना हमारे लिअे आसान होता है, परन्तु अिस कारणसे कर्तव्य बुलावे तब क्या अनजान लोगोंके बीच बसनेमें हम आनाकानी कर सकते हैं?

कर्तव्यके बुलाने पर हमें कभी कभी साथियोंके सहायतापूर्ण सहवासको छोड़कर अलग भी रहनेका प्रसंग आ जाता है। कभी कभी फर्जके बुलाने पर आश्रमके शांत और सुविधापूर्ण वातावरणको छोड़कर किसी सत्याग्रहकी लड़ाअीमें शामिल होना पड़ता है। और फर्जके बुलाने पर हमें कृत्रिम, निष्ठुर और अमानुषी कारावासमें भी अनेक बार जानेकी नौबत आती ही रहती है न?

हम अपनेमें यदि प्रार्थना-परायणता पैदा कर लेंगे, तो हमें अिस बातकी जरा भी चिन्ता नहीं होगी कि हमें कब किस स्थितिमें रखा जाता है। किसी भी परिस्थितिमें

हमारी प्रार्थना हमें टिकाये रखेगी, क्योंकि हम अलग तो केवल तभी तक हैं जब तक आंखें खुली रखते हैं। अेक बार ध्यानस्थ होकर बैठे, आंखें बन्द कीं और प्रिय साथियोंका स्मरण किया कि फिर कौन दूर रहा? छोटीसी कोठरीमें बन्द होंगे तो भी आंखें बन्द कीं कि तुरन्त अुसमें हमारे साथ अपना सारा आश्रम समा जायगा, जरा भी दिक्कत हुअे बिना हमारे साथ प्रार्थनामें शामिल हो जायगा और हमें अपनी सहानुभूति और स्नेह देगा।

आज जो सुविधा है अुसका हम पूरा लाभ अुठा लें, सबके साथ प्रार्थना करनेका आनन्द लेना सीख लें, सबके सहवासकी गरमी अनुभव करनेकी आदत डालें। दुःखके अवसर पर यह शिक्षा और यह आदत हमारे काम आयेगी। अैसे अवसर पर हमारे आश्रमके आश्रमवासी तो हमें धीरज दिलायेंगे ही, परन्तु यदि हमने अपनी कल्पना-शक्तिका विकास किया होगा, तो खुद बापूजीको भी हमारी प्रार्थनामें आवाहन करने और अुनसे पवित्र बल प्राप्त करनेसे हमें कौन रोक सकेगा? और स्वर्गमें विराजमान परमभक्त महादेवभाअीको भी हम घड़ी भरके लिअे अपनी प्रार्थनामें निमंत्रित कर लायेंगे तथा अुनकी भक्तिका स्पर्श अनुभव करेंगे। कभी कभी भक्त-गायक स्व० पंडित खरेके भक्तिपूर्ण भजन सुनकर भी हम अपने सूखते हुअे जीवनमें अमृत सींच सकेंगे। वे सब प्रार्थनाके रसिया थे। हमें भी अपने भीतर वह रस पैदा करना है।

प्रवचन ४७

ध्यानयोग

हम सब प्रार्थनामें स्थिर आसन लगाकर और आंखें मूंद कर, ध्यानमुद्रा धारण करके दो घड़ी अिसलिअे नहीं बैठते कि हमें अिस बातका दिखावा करना है कि हम कोअी बड़े योगी या सिद्ध बन गये हैं। नहीं, नहीं, सपनेमें भी हमारा अैसा अिरादा नहीं हो सकता। जन्म-जन्मान्तरमें वैसे समाधिस्थ योगी बननेकी हमारी अभिलाषा जरूर है। परन्तु आज तो हम अुससे हजारों कोस दूर हैं। अुनकी तरह हम चौबीसों घंटे अीश्वरका और अपने ध्येयका ध्यान जाग्रत जरूर रखना चाहते हैं। वैसे हम जानते हैं कि आज तो प्रार्थनाके समयमें भी पूरी तरह अेकाग्र होना हमें भारी पड़ता है।

हम श्लोक तो पढ़ जाते हैं, परन्तु सब श्लोकोंमें अभी तक लगातार ध्यान कहां रख पाते हैं? भजन होता रहता है तब भी अुसके प्रत्येक भावमें अेकसी तल्लीनता कहां रख पाते हैं? नअी नअी नालियोंमें से पानी ले जानेवाले किसानकी तरह फावड़ा लेकर हम मनरूपी पानीके साथ साथ चलते हैं। मन जगह जगहसे फूट निकलता है, और हम दौड़कर नालीको सुधार लेते हैं। परन्तु अेक जगह नाली सुधारते हैं तो दूसरी पांच जगहसे वह फूट निकलता है; और यह सब सुधार कर दम लेते हैं तब तक मालूम होता है कि हमारी पीठके पीछे न जाने कबसे अेक बड़ी जगह बन गअी है और बहुतसा पानी अुसमें से बह गया है।

परन्तु अैसा होने पर भी हम अेक-दूसरेकी मदद और सहानुभूतिसे जाग्रत रहनेकी कोशिश करते रहते हैं; अैसा करनेमें हमें अेक प्रकारका आनन्द भी आता है। अैसा करते हुअे किसी क्षण अेकाध श्लोकरत्नका प्रतिबिम्ब हृदयमें चमक अुठता है। अेकाध भजनका भाव हृदय-वीणामें बज अुठता है। अुस दिनकी प्रार्थना मानो धन्य हुअी, अैसा हमें आनन्द होता है। अुसकी खुशीमें हमारा सारा दिन अुल्लासमें बीतता है। जो भी काम अुस दिन हम करते हैं अुसमें हमें अनोखा आनन्द आता है। अुस दिन दिमागमें अैसी खुशी रहती है मानो जीवनकी सूखी डाली पर नव पल्लव फूट निकले हों।

किसी दिन बड़ी कोशिशसे हम मनको कोअी अच्छा व्रत धारण करनेके लिअे तैयार करते हैं। ठीक अुसी दिन हमारे अुपकारी संगीत-शास्त्री गाते हैं — 'अबकी टेक हमारी।' बस! हमारी अपनी सीपमें स्वातिकी बूंद पड़ गअी। अुस क्षणसे श्रम और प्रयत्नका क्लेश मिट जाता है। न जाने कहांसे हृदयमें बल आ जाता है। अुसी क्षणसे व्रत व्रत न रहकर खेल जैसा आसान हो जाता है। आज तो छठे-चौमासे ही हम अैसा अनुभव करते हैं, परन्तु अितनेसे भी हमारी प्रार्थना-परायणताको अच्छा पोषण मिलता है और यह श्रद्धा दृढ़ होती है कि किसी न किसी दिन हम अिस वृत्तिको निरन्तर टिकाये रख सकेंगे।

हम कैसी वृत्ति धारण करके प्रार्थना करते हैं, अिसका कुछ खयाल अभी मैं दे चुका हूं। हम दिन-दिन अैसी प्रार्थना-परायण वृत्ति बढ़ानेकी कोशिश करते हैं। कुछ अपने प्रयत्नसे, कुछ अेक-दूसरेकी सहायतासे, परन्तु ज्यादातर तो परम कृपालु प्रभुकी कृपासे हम देर-सवेर अिस वृत्तिका पूर्ण विकास अपने भीतर कर लेंगे। हमारा अनुभव है कि अधूरी होते हुअे भी वह वृत्ति हमें काफी अूंचा अुठाती है, संकटोंसे पार कराती है। अिसीलिअे तो दिन-दिन अुसमें हमारा रस बढ़ता रहता है और प्रार्थनाकी हमारी भूख खुलती जाती है।

आज तो हममें से बहुत थोड़े यह कह सकेंगे कि हमारी भूख पूरी तरह खुल गअी है। मैं खुद तो अीमानदारीसे अैसा नहीं कह सकता। मधुमक्खी जब फूल पर बैठती है तब कैसी तल्लीन हो जाती है! आसपास कितना ही शोरगुल होता हो, हम अुसके कितने ही नजदीक चले जायं, तो भी जब तक अुसे अुंगलीसे छूते नहीं, तब तक अुसकी तल्लीनता टूटती नहीं। अैसी ही तल्लीनता — अैसी ही भूख — प्रार्थनाके लिअे हममें पैदा हो, अिसीकी लगन हमें लगी हुअी है।

आज तो यह अनुभव अधूरा है। परन्तु अितना अनुभव जरूर होता है: बहुत बार कामके कारण लम्बे समयके लिअे बाहर जाना होता है। कभी कभी आप सब अपने घर जाते हैं तब कअी दिनों तक सबके साथ बैठकर प्रार्थना करनेका सुख नहीं मिलता। कहीं अकेले बैठकर प्रार्थना जरूर कर लेते हैं। आंखें बंद करके सबके साथ बैठे हैं, अैसा ध्यान करनेका प्रयत्न भी करते हैं। परन्तु अिससे तृप्ति नहीं होती। सबके सम्मिलित कण्ठका गंभीर घोष सुने बिना कानोंकी भूख मिटती नहीं। पास पास झुंड बनाकर बैठे हुअे संघकी गरमीके बिना अैसा लगता है मानो अेक प्रकारकी

ठंड लग रही हो। समझमें नहीं आता कि क्या हो रहा है। परन्तु किसी अस्पष्ट अस्वस्थताका अनुभव होता रहता है। अैसा अनुभव होता रहता है मानो किसी अतृप्त भूखसे आत्मा पीड़ित है।

दो-चार महीने वाद फिरसे संघके साथ मिलकर प्रार्थना करनेका प्रसंग आता है। अुस दिनके आनंदकी क्या वात कही जाय? अैसा लगता है मानो वहुत दिनके भूखेको भोजन मिल गया हो! मानो गरमीभर तपी हुअी धरती पर मेह वरस गया हो! प्रभु करे यह पहले दिनका आनन्द सदा वना रहे। प्रभु करे प्रार्थनाके समयका आनन्द जीवनके छोटे-वड़े सव कामोंके समय भी वना रहे।

हमारी अेकाग्रताकी कमीको, प्रार्थनाके समयकी हमारी मानसिक शिथिलताको देखते हुअे कभी कभी मनमें अैसा खयाल आ जाता है कि अिस प्रकार संघमें मिलकर प्रार्थना करनेसे प्रार्थना जैसी चीज रह ही नहीं सकती। वह अेक निर्जीव विधि वने विना नहीं रह सकती। साधारण मनुष्योंके मामलेमें वह वाहरका झूठा दिखावा अथवा दंभ भी वन जाती है। किसी किसीका मन अिस विचारसे अितना अधिक अस्वस्थ हो जाता है कि अुसे सामूहिक प्रार्थनामें शरीक होना व्यर्थ और हानिकारक प्रतीत होता है, सामूहिक प्रार्थनाकी विधि अुसे असह्य लगती है। अैसे लोग यह मानते हैं कि सामूहिक प्रार्थनामें चित्तको अेकाग्र करना सर्वथा असंभव है।

अुन्हें प्रार्थनाके ख़िलाफ कोअी आपत्ति नहीं होती। वे अीश्वर-परायण होते हैं और प्रार्थनाके लिअे अुनकी आत्मा लालायित रहती है। परन्तु हमारी सामूहिक प्रार्थना अुन्हें प्रार्थना ही नहीं लगती। अुन्हें तो अपनी आत्मामें लीन होनेकी भूख होती है। और अिसके लिअे अुन्हें आसपासके सव विक्षेपोंसे मुक्त होकर अपने चित्तको अेकाग्र होनेकी शिक्षा देनी है।

अेकध्यान होनेको ही वे प्रार्थनाका मूल और सच्चा अुद्देश्य मानते हैं। अुन्हें सामूहिक प्रार्थनाके समयकी राह देखते वैठना कैसे पसन्द हो सकता है? अुनका कहना है कि अेकध्यान होनेके लिअे मनुष्यको अेकान्तमें ही साधना करनी चाहिये।

अुनका यह कथन अेकध्यानताकी दृष्टिसे विलकुल ठीक लगता है। ध्यानकी साधना तो मनुष्यको अुमंग आते ही तुरंत करने वैठ जाना पड़ता है। सामूहिक प्रार्थनाकी घंटी वजे और सव अिकट्ठे हों, तव तक अिन्तजार करना अुनके लिअे जरूरी नहीं है। सामूहिक प्रार्थनामें कार्यक्रम पूरा होने पर सव लोग अुठ जाते हैं, लेकिन वे अैसा नहीं कर सकते। वे तो रंग चढ़ जाने पर घंटों और दिनों तक अपनी साधना नहीं छोड़ते।

अिसके सिवा, समूहमें अनेक प्रकारकी वाधाअें आनेकी भी संभावना रहती है। साथियोंमें से किसी न किसीको खांसी आ सकती है, छींक आ सकती है, कोअी देरसे आनेवाला तकलीफ दे सकता है, और अितने सारे वैठे हों तो किसीको वीचमें अुठनेकी भी जरूरत पैदा हो सकती है। समूहमें सव अेकसे भक्तिलीन नहीं हो सकते। और हों तो भी किसीकी आवाज वेसुरी हो, कोअी अुत्साहसे ताल देते हों, परन्तु गलत

ताल देते हों। अिन सब बातोंका भी ध्यानभंग करनेमें बड़ा हाथ होता है। अथवा समूहमें माताअें आअी हों, तो अुनके साथ बालराजा भी आये होंगे। वे अनेक प्रकारकी चेष्टाअें करके बाधा डाल सकते हैं। कोअी आकर आपकी गोदमें बैठ जाय, किसीको आपकी मूंछ अथवा अैनकसे खेलनेकी अिच्छा हो और कोअी यह देखकर तंग आ जाय कि लोग अुसकी तरफ ध्यान नहीं देते और अपना विरोध प्रकट करनेके लिअे गला फाड़कर रोने लगे तब?

अैसी अैसी बाधाओंसे बचें तो भी सामूहिक प्रार्थनाकी रचना ही अैसी होती है कि वह ध्यानमार्गीको बाधक प्रतीत हो सकती है। अुसे अेक विचार या अेक मूर्ति पर अेकाग्र होनेका अभ्यास करनेकी जरूरत होती है और यहां तो अेकके बाद अेक करके दस-बीस श्लोकोंकी शृंखला बंध जाती है। अेक विचार पूरा हुआ न हुआ कि दूसरा और अुसके बाद तुरंत तीसरा विचार आता है। श्लोकोंके बाद फौरन भजन शुरू हो जाता है। ध्यानके अभ्यासीको यह सब अैसा लगेगा मानो कोअी रेलगाड़ी खड़खड़ भड़भड़ करती और शरीरके अेक अेक जोड़को हिलाती हुअी आगे बढ़ रही हो।

फिर सामूहिक प्रार्थनामें भजनके राग और भावका चुनाव किसी तीसरेका ही होगा; कौन जानता है कि आजकी हमारी अपनी मनोवृत्तिसे वह मेल खानेवाला साबित होगा या बेमेल?

सही बात तो यह है कि ध्यानका अभ्यास ही जिसके लिअे प्रार्थनामें बैठनेका हेतु है, अुसे हमारी सामूहिक प्रार्थना बहुत मदद नहीं कर सकती। अुलटे, बाधाअें ही अुपस्थित करेगी। अिस हेतुवालोंको तो कोअी अेकान्त, शान्त और स्वच्छ स्थान ढूंढ़कर वहां अकेले ही अपनी साधना करनी चाहिये।

सामूहिक प्रार्थनामें शरीक होनेवाले हम जैसोंके लिअे भी अैसा अभ्यास अपने-अपने ढंगसे करना जरूरी है। क्या हम नहीं जानते कि हमारी अेकाग्रता-शक्ति कितनी अल्प है? हम अपने मनको निरन्तर श्लोकों या भजनोंके अर्थोंके साथ कहां रख पाते हैं? हमारे समूहमें कभी कभी कोअी जंभाअियां लेते और अूंघते भी देखे जाते हैं। यह शिथिल मनकी नहीं तो और किस बातकी निशानी है?

फिर, प्रार्थनाके श्लोक संस्कृत भाषामें होते हैं और भजन हिन्दीमें होते हैं। कभी कभी कुरानकी आयतें पढ़ते हैं तो वे अरबीमें होती हैं। समूहमें बैठी हुअी मंडलीमें से कुछ तो ये भाषाअें जानते ही नहीं। क्या वे लगनके साथ प्रार्थनाके अर्थ अच्छी तरह सीख लेते हैं? जितने दिन तक समझे बिना तोतेकी तरह श्लोकोंका रटन करना पड़ता है, अुतने दिन तक क्या वे मनकी अस्वस्थता अनुभव नहीं करते?

हमारे यहां नये लोग आते हैं तब हम अेक बार प्रार्थनाके अर्थ समझाते हैं। परन्तु केवल अेक बार समझानेसे प्राचीन भाषाओंके अर्थ दिमागमें अितने पक्के नहीं बैठ सकते कि पंक्तियां बोलते ही अुनका अर्थ दिमागमें चमक अुठे। हमारे जैसोंके समझानेके बाद प्रत्येक व्यक्तिको अपने प्रयत्नसे अुनके अर्थ और अुनमें छिपे

हुअे भाव समझनेकी कोशिश करनी चाहिये। परन्तु सब कोअी अैसा नहीं करते। फिर प्रार्थनामें तेज कहांसे आये? अथवा प्राण भी कहांसे आयें? वैसी प्रार्थना बरसों करने पर भी हम जरा भी अूंचे नहीं अुठें और जहांके तहां रहें, तो अिसमें आश्चर्यकी कोअी बात नहीं।

ध्यानयोगके अुपासकोंको अैसी शिथिल मंडलीके साथ शरीक होना अेक प्रकारका प्रार्थनाका नाटक खेलने जैसा और व्यर्थका कालक्षेप लगे, तो यह समझा जा सकता है।

अिसलिअे सामूहिक प्रार्थनाका मूल हेतु ध्यानसिद्धिका भले न हो, परन्तु अुसे यांत्रिक अथवा नाटकीय कभी न बनने देना चाहिये। प्रार्थना करनेवालोंको शिथिलता हरगिज न रखनी चाहिये। हमें कमसे कम प्रार्थनाके अर्थ प्रयत्न करके समझ लेने चाहिये और बोलते समय अुन अर्थोंका चिन्तन करनेका प्रयत्न करना चाहिये। अिसी प्रकार अेकान्तमें ध्यानयोग साधनेका भी कुछ न कुछ प्रयत्न करके अेकाग्रताकी शक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ाते रहना चाहिये।

अेकान्तमें बैठकर ध्यानयोग साधनेसे भी सच्ची अेकाग्रता सिद्ध करना कठिन ही है। शरीरको हाथ-पैर समेटकर बैठानेसे तो मनको अधिक स्वतंत्रता मिल जाती है, मनको वशमें रखना अधिक कठिन बन जानेका भय है। अिसके बनिस्बत निर्दोष शरीर-श्रमके कामोंमें लगे रहनेसे मनका अेकाग्र होना अधिक सुलभ होता है। जिन कामोंमें हमारी अधिक गहरी दिलचस्पी हो, जो काम करनेमें हमें स्वाभाविक अुल्लास और अुत्साह मालूम हो, अुनमें मन अपने-आप तल्लीन हो जाता है। अैसी प्रवृत्तिमें मनको अपनी पसंदका वातावरण मिल जाता है और अुसमें हमारी आंतरिक प्रीति होनेसे मनको अिधर-अुधर भटकनेकी अिच्छा नहीं रहती।

अिसमें शक नहीं कि हमारी प्रार्थनाओं द्वारा, अथवा अेकान्त ध्यान-साधना द्वारा अथवा शरीर-श्रमके अुत्साहप्रद कार्यों द्वारा — जिसे जो ढंग आसान लगे अुस ढंगसे, अथवा ये सब ढंग अेक साथ आजमा कर भी — हमें अपनी अेकाग्रताकी शक्ति बढ़ा कर प्रार्थनाको सच्ची और प्राणवान बनाना चाहिये।

अिसके अलावा, हम प्रार्थनाके समय प्रार्थना करके दिनके शेष भागमें अुसे भूल जाना भी नहीं चाहते। हम तो सारे जीवनको अेक अखंड प्रार्थना ही बना देना चाहते हैं। हमारे जीवनके छोटे-बड़े काम और हमारी प्रार्थना — अिन दोनोंमें हम मेल बैठाना चाहते हैं। असलमें काम हमारा जीवन-वृक्ष है। वह हरा-भरा और ताजा ताजा रहे, योग्य ऋतु आने पर अच्छी तरह पनपे और सुन्दर फल-फूल धारण करे, अिसीलिअे तो अुसमें हम रोज रोज प्रार्थनाके अमृत-जलका सिंचन करते हैं। काम तो हमारी जीवन-वीणा जैसे हैं। अुसके तारोंसे बेसुरे नहीं, बल्कि मधुर और भावभीने सुर ही निकलें, अिसीलिअे हम रोज प्रार्थना द्वारा अुसके तार चढ़ाते रहते हैं।

केवल प्रार्थनामें बैठें अुतने समय तक दुनियाके तमाम अूंचे सिद्धान्तोंका चिन्तन करें, परन्तु प्रार्थनासे अुठनेके बाद कामकाजके चक्करमें पड़कर पशुकी तरह व्यवहार

करने लगें, तब तो प्रार्थनाका सारा आनन्द मारा जायगा। तब तो प्रार्थना दो घड़ी खेलनेका नाटक ही बन जायगी। प्रार्थना यदि सच्चे हृदयसे की जाय तो अुसका कल्याण-कारी प्रभाव हमारे अेक अेक काममें व्याप्त हुअे बिना नहीं रहेगा। प्रभु हमारे हाथोंसे जो भी काम करायेगा, वे अूंचे ही होंगे, यज्ञमय ही होंगे, धर्मार्थ ही होंगे, अुनमें स्वार्थकी दुर्गन्ध आयेगी ही नहीं, अुनमें भोग-विलासका मैल रह ही नहीं सकता, अुनमें छल-कपटका जहर हो ही नहीं सकता।

प्रार्थनाका समय पूरा होने पर अुसके श्लोकों और भजनोंका कार्यक्रम पूरा होता है, परन्तु हमारी प्रार्थना-परायणता समाप्त नहीं होती। वह तो संगीतकी लयकी तरह हमारे जीवनके वातावरणमें लम्बे समय तक ओतप्रोत रहती है। वह लय समाप्त हुअी न हुअी कि हम फिर प्रार्थना करने बैठ जाते हैं और नया सुर छेड़ते हैं। अिस प्रकार प्रार्थना-परायणताकी लयको हम पूरी तरह विलीन नहीं होने देते, निरंतर चालू ही रखते हैं।

असलमें हमारे छोटे-बड़े काम ही हमारी सच्ची अुपासना है। ये ही भगवानके चरणोंमें रखनेके हमारे फूल हैं। हमारे कामोंमें प्रार्थना-परायणता मिली हुअी न हो, तो वे कागजके नकली फूल हो जाते हैं। वे देवके मस्तक पर कैसे चढ़ सकते हैं? सुबह-शामकी प्रार्थनाअें हमारी फूलोंकी टोकरीको सींच सींचकर ताजी रखनेका हमारा प्रयत्नमात्र है। परन्तु टोकरीके फूल तो हमारे कर्म हैं। वे सब प्रभुभक्तिकी, देशभक्तिकी, जनसेवाकी सुगन्धसे महकते हों, तो ही देव पर चढ़ाने लायक सच्चे फूल माने जायेंगे और अैसे होंगे तो ही वे प्रार्थनाके छिड़कावसे ताजे रहेंगे। वे झूठे कागजके होंगे तब तो छिड़कावसे गल जायेंगे।

प्रवचन ४८

कुछ लोगोंको प्रार्थना पसन्द क्यों नहीं होती?

हम रोज किस भावनासे प्रार्थना करते हैं, अुससे कैसी भावना अपने भीतर पैदा करना चाहते हैं, यह समझानेका कल मैंने प्रयत्न किया था। परन्तु आपको अैसे बहुत लोग मिलेंगे और आजसे पहले मिले भी होंगे, जिन्हें प्रार्थना जरा भी अच्छी नहीं लगती, जिन्हें दो घड़ी साथ मिलकर शान्तिसे बैठना और अेकस्वर होकर प्रभु-स्मरण करना सहन ही नहीं होता।

अुनके मस्तिष्ककी रचना न जाने किस प्रकारकी होगी, परन्तु वह कुछ अुलटी ही दिशामें काम करता है और अुनकी स्वाभाविक दिलचस्पी ही कुछ अुलटी होती है। हमें शान्ति और व्यवस्था पसंद है, अुन्हें तोड़-फोड़ और अूधममें मजा आता है। हमें संगीत प्रिय है, अुन्हें शोरगुल अच्छा लगता है। किसी फूलको देखकर अुन्हें तोड़कर मसल डालनेकी अिच्छा होती है और स्थिर जल देखकर अुसमें पत्थर फेंकनेका मन होता है। अिसी तरह वातावरणमें फैली हुअी शान्तिको वे सहन नहीं

कर पाते। अुसे कोलाहल और खड़खड़ाहट-भड़भड़ाहटसे बिगाड़ें तभी अुन्हें चैन पड़ता है। चलनेमें अुन्हें अेक साथ, अेक ढंगसे, अेकसा चलना अच्छा नहीं लगता; वे आड़े-टेढ़े, बल खाते, टकराते, साथियोंको तंग करते हुअे ही चलेंगे। अैसे स्वभावके मनुष्योंसे हमारी प्रार्थना भी देखी और सही नहीं जाती। अुसमें खलल डालनेमें, अुसका मजाक अुड़ानेमें अुन्हें अैसा अजीब मजा आता है जो हमारी समझमें नहीं आता।

अैसे कोअी न कोअी असामाजिक प्राणी प्रार्थनाके अुपासकोंको मिल ही जाते हैं। अुनके मजाक और बाबाओंसे मनको कष्ट होना स्वाभाविक है। परन्तु अुनके साथ झगड़ा मोल लेने लायक वे नहीं होते। बचपनसे मिली हुअी गलत शिक्षाके कारण अुन्हें अैसी अुलटी दिशाका आनन्द लूटनेकी आदत पड़ जाती है। परन्तु वे सचमुच दुष्ट नहीं होते। आप प्रार्थनाको और सारे जीवनको जिस गंभीरतासे देखते हैं, अुस गंभीरतासे वे देख ही नहीं सकते। वे बड़े हों या छोटे, स्वभावको देखते हुअे अुन्हें बालकोंकी कोटिमें ही रखना चाहिये। यह संभव है कि हमारे कामकाजको दूरसे देखते-देखते किसी दिन वे बालबुद्धि छोड़ दें और गंभीरता धारण कर लें। हमें अैसी आशा रखनी चाहिये।

प्रार्थनाका विरोध करनेवालोंमें अेक दूसरा वर्ग भी कभी कभी देखनेमें आता है। कोअी भी अनिवार्य नियम बना कि अुनका दिमाग गरम हो जाता है। शिक्षा-शास्त्रकी आधुनिक पुस्तकोंमें अुन्होंने स्वतंत्रता और स्वयंस्फूर्तिके विषयमें काफी पढ़ा होता है। अुसकी विचित्र समझ अुनकी बुद्धि पर सवार रहती है। वैसे शायद वे प्रार्थनामें जरूर शरीक होते, परन्तु नियम है, यह मालूम हुआ कि बात खतम हुअी! अुनकी आपत्ति वास्तवमें प्रार्थनाके विरुद्ध नहीं, परन्तु किसी भी विषयमें अनिवार्य नियम बनानेके विरुद्ध होती है। खाने-पीनेमें, बैठने-अुठनेमें, कामकाजमें — जहां जहां वे नियम देखते हैं वहां अुनसे नियम सहन होते ही नहीं। अुन्हें लगता है कि नियम बनानेसे अुनकी स्वतंत्रताका भंग हो रहा है। सांपको कोअी जाने-अनजाने जरा छू जाय तो वह कैसा फुफकार कर काटने दौड़ता है! छूनेवाला अुसका घातक ही होना चाहिये — अिसके सिवा दूसरा विचार अुसे आ ही नहीं सकता। यही विचार अैसे लोगोंका नियमोंके विषयमें होता है। नियमका नाम आया कि वह स्वतंत्रता पर कुठाराघात करनेके लिअे ही होना चाहिये, अैसा सोचनेके सिवा और किसी तरह अुनका दिमाग काम ही नहीं करता।

और नियमोंमें भी प्रार्थनाका नियम तो अुन्हें दमन और अत्याचारकी पराकाष्ठा लगता है। "अीश्वर-स्मरण तो हृदयसे करनेका काम है, अुसमें भी नियम! हमें प्रेरणा होगी तो आधी रातमें अुठकर भी हम प्रार्थना करेंगे। परन्तु आपकी घंटी बजते ही प्रेरणा न हो तो भी तुरन्त आंखें बन्द करके बैठनेका नियम हम हरगिज नहीं मानेंगे। हम कोअी भेड़-बकरी नहीं हैं!"

अैसे स्वभावका अिलाज होना बड़ा कठिन है। सामूहिक जीवन नियमके बिना कैसे चल सकता है? नियमके बिना कोअी समूह रहे, तो वह संस्था, आश्रम, सभा या

समाज नहीं कहलाता। वह केवल मनुष्योंका अेक झुण्ड ही हो जाता है। जिसमें अेक राग न हो, अेक प्रवाह न हो, अेक अुद्देश्य न हो, वह संस्था नहीं परन्तु झुण्ड है। अुसमें व्यवस्थित जीवन नहीं होगा, परन्तु शोरगुल होगा, संघर्ष होगा, खींचतान होगी, स्पर्धा होगी, मारामारी होगी। स्वयंस्फूर्तिके ग्रंथोंमें नियमकी बात स्वीकार की जाती है, परन्तु यह सोचने और समझनेका धीरज अुन्हें कहां होता है? अनिवार्य नियमकी गंध आअी कि तुरंत अुसका विरोध करनेकी वृत्ति अुनमें अुठी ही समझिये।

अैसा स्वभाव बन जानेसे वे अपने जीवनका बड़ा नुकसान कर बैठते हैं। सुन्दर, व्यवस्थित, नियमबद्ध संस्थाओंसे वे सदा चौंकते रहते हैं और अपने विचित्र कृत्रिम स्वभावके कारण अुनका लाभ खो देते हैं।

अैसे लोगोंके स्वभावको सुधारनेका अेक ही अुपाय मालूम होता है। अुन पर कोअी संस्था या कार्य चलानेकी जिम्मेदारी आ पड़े, तो संभव है नियमबद्ध, व्यवस्थित जीवनमें निहित सुख-सुविधा और शिक्षाका मूल्य अुनकी समझमें आने लगे। संभव है सैनिकके रूपमें जो अनुशासन अुन्हें खटकता है वह सरदारी आ पड़ने पर अच्छा लगने लगे, और विद्यार्थीकी हैसियतसे जो नियम कड़वे लगते थे वे शिक्षकके स्थान पर बैठनेसे जरूरी मालूम होने लगें।

परन्तु अैसा मौका बहुत थोड़े भाग्यशाली लोगोंको मिल सकता है। सभी विद्रोही अैसे अवसरकी आशा पर आधार नहीं रख सकते। अिसलिअे यदि अुन्हें प्रार्थनाके विरुद्ध कोअी और ठोस अेतराज न हो, तो केवल अिसी कारणसे कि प्रार्थना अमुक समय पर और अमुक ढंगसे करनेका नियम है प्रार्थनासे आत्माको मिलनेवाली शान्ति, अुत्साह और आनंद अुन्हें खोना नहीं चाहिये। संस्थाके अुद्देश्य, कामकाज तथा वहांके मनुष्योंके जीवन अुन्हें अच्छे लगते हों और अुसमें अपने जीवनको मिला देनेकी अुमंग हो, तो केवल प्रार्थना आदिके नियमोंसे चौंक कर अुसका लाभ खो देना अैसा ही है, जैसे गंगाजीका पानी दोनों किनारोंसे बंधा हुआ है अिसीलिअे अुसे बन्द पानी मानकर अुसका लाभ छोड़ देना है। वह पानी अुपकारक नियमोंके दो तटोंके बीच बंधा हुआ है, अिसीलिअे वह नदी बनकर तेजीसे बह सकता है। तट टूट जायं तो पानी मैदानोंमें फैल जायगा और थोड़े समयमें सूख कर खतम हो जायगा।

अब अेक तीसरे वर्गके प्रार्थना-विरोधियोंकी बात करें। आप जहां जायेंगे वहां आपको कोअी न कोअी आदमी अैसे जरूर मिलेंगे जो सत्यका गला घोंट-घोंट कर प्रार्थनाके विरोधकी दलीलें देते हैं और देते हुअे कभी थकते ही नहीं। वे मुंह बिगाड़ कर कहते हैं, "हम मनुष्य होकर किसीसे भीख क्यों मांगें? दिनभर मुंह लटका कर दीन भावसे याचना क्यों करें? भारतके लोग गुलामी भुगतकर अपना तेज खो बैठे हैं। जो थोड़ा तेज हड्डियोंमें बचा होगा अुसे भी दिनमें २ बार रोती सूरत बनाकर प्रार्थनाअें करनेकी आदत डालकर मिटा देनेका मार्ग आपने पकड़ लिया है!"

हम बहुत समझाते हैं: "प्रार्थना हम किसी मनुष्यकी तो नहीं करते कि अुसमें आपको दीनता आ जानेका डर लगता है? सकल सृष्टिके सिरजनहारसे याचना करनेको

कोअी दीनता कहेगा? और अुससे हम क्या याचना करते हैं? हे प्रभु, कैसा भी संकट आये तो भी हम तेरा मार्ग न छोड़ें, अैसा बल हमें दे; हे अीश्वर, कैसा भी बलवान मारने आये तो भी डरकर हम सत्यको न छोड़ें, अैसी निर्भयता हमें दे।" अिसे कभी याचना और दीनभाव कहा जा सकता है? सच पूछें तो प्रार्थनाके रूपमें हमने और किसीसे याचना नहीं की, परन्तु अपनी अन्तरात्माके सामने यह दृढ़ प्रतिज्ञा ही की है कि 'हम किसीसे डरेंगे नहीं; कुछ भी हो जाय हम सत्यसे डिगेंगे नहीं।'

परन्तु अैसे स्वभावके लोगोंको 'प्रार्थना' शब्द ही तेज जहरके जैसा लगता है। "प्रार्थनाका अर्थ है भीख। और भीख हम भगवानसे भी क्यों मांगने जायं? यदि परमेश्वर सर्व-शक्तिमान और परम कृपालु हो तो अुसे यह अपेक्षा क्यों रखनी चाहिये कि हम गरीब मुंह बनाकर अुसकी खुशामद करते हुअे अुससे याचना करें?" अुनका दिमाग अिस तरह चलता है।

और प्रार्थनामें भी जब —

"रघुवर तुमको मेरी लाज!
हौं तो पतित पुरातन कहिये,
पार अुतारो जहाज।"

अथवा

मो सम कौन कुटिल खल कामी?
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो,
अैसो नमकहरामी।"

अथवा

"सुने री मैंने निर्बलके बल राम।"

जैसे दीनताके भाव प्रकट करनेवाले भजन गाये जाते हैं, तब तो अुनका धीरज बिलकुल ही छूट जाता है। प्रार्थना हो रही हो वहां जीवनमें कभी खड़े न रहनेकी और प्रार्थना करनेवालोंके सहवासमें ही न आनेकी गां बांध लेनेकी अुनकी अिच्छा होती है।

वे हमें अुलाहना देते हैं: "मैं निर्बल हूं, मैं निर्बल हूं, अैसा जप करते करते आप लोग सचमुच निर्बल हो जायेंगे। परमेश्वरके गुण गाते गाते आप मनुष्यकी खुशामद करने लग जायंगे। रोज दीन मुद्रा और धीमी आवाज निकालकर प्रार्थना करनेसे भगवान कितनी मदद करता है यह तो भगवान ही जाने। परन्तु आपको हमेशाके लिअे दीन मुंह बनाने और शौर्यहीन निस्तेज जीवन बितानेकी आदत जरूर पड़ जायगी।"

ये ही भजन हम प्रार्थना-परायण होकर गाते हैं, तब अैसा लगता है मानो हमारे हृदयमें नये बलका संचार हो गया है, हममें अैसी हिम्मत आ जाती है मानो प्रभुकी अदृश्य प्रेरणासे हमारी कमजोरी अुड़ गअी है, और हमें अैसा संतोष होता है मानो सचमुच गिर पड़नेके समय भगवानने हमारी बांह पकड़ कर हमारी लाज रख ली है। परन्तु वे लोग अिस वृत्तिमें आनेको तैयार हों तब न अुन्हें अैसा अनुभव हो?

अिस प्रकार प्रार्थना पर अनेक लोगोंकी अनेक कारणोंसे अश्रद्धा पाअी जाती है। अश्रद्धाका मूल कारण लोगोंकी अलग अलग प्रवृत्तियोंमें निहित है। वाद-विवाद करके अुनमें प्रार्थनाका प्रेम पैदा करनेकी हमारी अिच्छा हो सकती है। परन्तु प्रकृति अति प्रवल होती है। वह वाद-विवादसे थोड़े ही वदलती है? अिससे तो आलोचकोंका आलोचना करनेमें ही रस वढ़ेगा, और अेक-दूसरेके बीच अन्तर ही वढ़ेगा। अिसलिअे सर्वोत्तम मार्ग यही है कि हम अुनके स्वमानको सहन कर लें। हम साथ वैठकर प्रार्थना भले न कर सकें, परन्तु साथ मिलकर सेवा करना संभव हो, तो अुसे प्रेमसे करें। हम सच्चे प्रार्थना-परायण हों, तो यही मार्ग अपनाना हमें शोभा देगा।

प्रवचन ४९

प्रार्थना-नास्तिक

अव तक प्रार्थना-विरोधियोंके जिन प्रकारोंका विचार किया गया, अुनको प्रार्थनाके हमारे ढंगके वारेमें और प्रार्थना करनेकी हमारी योग्यताके विषयमें कुछ न कुछ शिकायत है। अिस ढंग और योग्यतामें अुनके स्वभावके अनुकूल फेरवदल हो जाय तो अुनका हमारे साथ कोअी वुनियादी झगड़ा नहीं है। हम सच्चे दिलसे परमेश्वरके मार्ग पर चलें और अुसकी तरफसे वल और प्रेरणा प्राप्त करें, तो अिसमें वे हमें आशीर्वाद देने और कदाचित् साथ देनेको भी तैयार हो जायंगे।

परन्तु अव हम अेक भिन्न वर्गके आलोचकोंका विचार करेंगे। अुन्हें असलमें परमेश्वरका अस्तित्व ही स्वीकार नहीं है, तो फिर प्रार्थनाका तो प्रश्न ही कहां रहता है? वे अपनेको नास्तिक कहते हैं और अैसा कहलवानेमें अभिमान करते हैं। अीश्वरको तुरन्त स्वीकार कर लेनेवाले, अुसके साथ पुत्रभाव, शिष्यभाव या सेवक-भावकी कल्पना करके अुसकी प्रार्थना करने वैठ जानेवाले लोगोंके भोलेपन पर, अुनके छिछले श्रद्धालुपन पर, अिन आलोचकोंको दया आती है। वे दर्शन-शास्त्रोंमें गहरे जाते हैं, और सृष्टिका अंतिम तत्त्व क्या होगा, अिसका अपनी वुद्धि पर जोर डालकर पता लगानेकी कोशिश करते हैं। कोअी जड़ नीहारिका पर आकर अटक जाते हैं, तो कोअी परमाणु पर। कोअी कहता है गति अथवा कर्मके सिवा कुछ नहीं है, तो कोअी कहता है कर्मके कानूनके सिवा कुछ नहीं है। कोअी कहता है प्रकृति और पुरुष दोनोंने मिलकर सव कुछ वनाया है, तो कोअी कहता है कि जो कुछ है सो सव ब्रह्म, ब्रह्म और ब्रह्म ही है — जिसके शरीर नहीं हो सकता, मन नहीं हो सकता, भावना नहीं हो सकती। अैसी हालतमें हाथ जोड़कर प्रार्थना किससे की जाय? जहां कोअी दे सकनेवाला न हो, वहां मांगनेकी वात ही कहां रहती है? हमारी प्रार्थनाअें अुन्हें हंसने लायक मिथ्या प्रवृत्ति लगती हैं, अवुद्धिका लक्षण मालूम होती हैं, मिट्टीकी पुतलीको मां मानकर अुससे यह आशा रखनेवाले नादान वालककी तरह लगती हैं कि वह गोदमें लेकर दूध पिलायेगी।

अैसे नास्तिक प्रार्थनामें तो हमारे साथ नहीं बैठेंगे; परन्तु जैसे वे अन्तिम पृथक्करणमें अणु हों या कर्म हों या ब्रह्म हों, भूख लगने पर शरीरको अन्न-जल देते हैं और मनको भी शास्त्रपाठकी खुराक देते हैं, वैसे यदि वे समाजमें सबके साथ रहते हैं और सबकी सेवाका लाभ अुठाते हैं, तो सबके प्रति अपना धर्म भी वे क्यों न पालन करें?

कोअी कोअी नास्तिक बड़े सरल और सीधे होते हैं। वे प्रार्थना न करते हुअे भी देशके प्रति अपना कर्तव्य पालन करनेमें किसीसे पीछे नहीं रहते। अुनके साथ हमारी बहुत अच्छी तरह बन सकती है।

परन्तु सारे नास्तिक अितने सरल नहीं होते। कुछका दिमाग दूसरी ही तरह चलता है। "यदि ब्रह्म ही सत्य है और दूसरा सब कुछ माया अथवा भ्रम है, तो स्वराज्य क्या और परराज्यका क्या? अत्याचारी कौन और अत्याचार सहनेवाला कौन? शोषक कौन और शोषित कौन?"

कोअी कहते हैं, "यदि कर्मके कानूनके सिवा दूसरा कुछ है ही नहीं और सब अपने-अपने कर्मोंके अनुसार ही फल भोगते हैं, तो दुःखी पर दया करके अुसकी मददको दौड़ना या सुख मिलने पर सुखका त्याग करना कर्मके कानूनका भंग करने जैसा ही होगा।"

अैसे तार्किकोंको हमारी प्रार्थना ही नहीं, परन्तु हमारे ध्येय, हमारी सेवाअें, हमारे सत्याग्रह, हमारे चरखे और ग्रामोद्योग, हमारी हरिजन-सेवा आदि जीवनका सर्वथा दुर्व्यय करने जैसा लगता है। रस्सीको सर्प मानकर कोअी व्यर्थ घबराये और अुसे पकड़ने या मारनेको दौड़-धूप करने लगे, तो जिस तरह अुसकी दौड़-धूप निःसार मानी जायगी, अुसी तरह अुन्हें हमारी ये सारी प्रवृत्तियां निःसार लगती हैं। सार तो अुन्हें अपने तत्त्वज्ञानके ग्रंथोंमें और अपने जैसोंके साथ चर्चाअें करनेमें ही मालूम होता है।

अलबत्ता, दोपहरको १२ बजे थोड़ी देरके लिअे अुन्हें थाली पर बैठकर अिस असार संसारमें अुतर आना पड़ता है! अुतने समय तक यदि अुन्हें ये विचार आने लगें तो कितना अच्छा हो कि यह थाली कैसे और कहांसे आअी, आसपासके गांवोंमें सबको पेटभर खानेको मिला या नहीं मिला और यदि नहीं मिला तो किस कारणसे नहीं मिला? शास्त्रसेवनसे तीक्ष्ण बनी हुअी अुनकी बुद्धि अिस स्थितिका भेद खोलनेमें अुन्हें जरूर मदद दे सकती है और अुन्हें यह भान करा सकती है कि अकेली शास्त्र-चर्चाका जीवन कृत्रिम है। और अगर अैसा हो जाय तो वे हमारे साथ कंधेसे कंधा मिलाकर देशकार्यमें अग्रसर हुअे बिना नहीं रहेंगे — फिर भले ही वे हमारे साथ प्रार्थना करने न बैठें और रातके समय दीयेके पास बैठकर तत्त्वज्ञानकी पुस्तकोंमें ही तैरना जारी रखें।

फिर भी अैसे नास्तिक औरोंसे निर्दोष माने जायेंगे। वे कभी कभी हम पर दया दिखाकर फिरसे अपनी पुस्तकोंमें डूब जाते हैं; और अगर हमारे कार्यमें मदद नहीं करते, तो विशेष बाधक भी नहीं होते।

परन्तु असली तीखे नास्तिक तो आजकी पश्चिमकी हवामें रंगे हुअे नौजवान हैं। वे लड़ाकू स्वभावके नास्तिक हैं, और यह सीखे हैं कि परमेश्वर, प्रार्थना, धर्म, मंदिर, शास्त्र और संन्यासी सब अत्याचारी सत्ताओंके अलग अलग प्रकारके बम या जहरीली गैस ही हैं। वे अैसा मानते हैं कि अिन हथियारोंसे पूंजीवादी और साम्राज्यवादी लोग जनताको सदा अफीमके नशेमें डूबी हुअी रखते हैं, अुसे सिर नहीं अुठाने देते, ताकि अुसे अज्ञान और गुलामीमें रखकर बेखटके अुसका शोषण कर सकें। हमारी प्रार्थनाओंको और बात बातमें अीश्वरका नाम लेनेको भी वे अिसी नजरसे देखते हैं। और अिसलिअे अुन्हें हम पर बड़ा रोष होता है।

सच पूछें तो यह रोष अनुचित है। हमारी प्रार्थना तो दलित और शोषित लोगोंका अपने ही अन्तरमें निहित बलको पहचाननेका प्रयत्न है; हमारी महान लड़ाअीमें दिल आखिर तक मजबूत रहे, किसी बातसे पीछे न हटे, अैसा दृढ़ संकल्प करनेका प्रयत्न है। हमारी प्रार्थना हमारे जैसे सेवकोंका दलित-शोषित लोगोंके साथ अेकात्मता साधनेका प्रयत्न है। हमें अुन्हें जाग्रत करना है, अुनकी शक्तिका अुन्हें भान कराना है, अुनके साथ रहकर सारी जिन्दगी लड़ना है और अैसा करते हुअे जो त्याग और कष्ट सहन करना पड़े सो करना है। अैसे कठोर जीवनमें अटल रह सकनेके लिअे हमें प्रेरणा चाहिये। यह बल और प्रेरणा हमें अपनी प्रार्थना देती है, अिस विश्वमें ओतप्रोत रहनेवाला परमेश्वर देता है, हमारे अपने हृदय-कमलमें विराजमान अंतरात्मा देती है, जिनके साथ बैठकर हम प्रार्थना करते हैं वे हमारे मित्र, साथी और श्रद्धेय जन देते हैं और हमारे विचारोंके पोषक गीता जैसे सद्ग्रंथ देते हैं। हमारी प्रार्थना पर क्रोध करने या द्वेष करनेका कारण ही अुनके लिअे कहां रह जाता है?

परन्तु अुनके आचार-विचार भिन्न हैं, अुनके श्रद्धेय गुरु भिन्न हैं और अिसलिअे अुनकी काम करनेकी पद्धति भिन्न है।

अिसके बावजूद अुन्हें भी दुनियामें समानता स्थापित करनी है, राज्यतंत्र, धर्मतंत्र और धनतंत्र वगैराके फंदेसे लोगोंको छुड़ाना है। यह महान ध्येय पूरा करनेमें क्या अुन लोगोंको जान-मालकी, सुख और सुविधाओंकी कुर्बानी नहीं करनी पड़ी है? प्राणोंकी बाजी लगाकर लड़ाअियां नहीं लड़नी पड़ी हैं? वे भले ही हमारी तरह प्रार्थनामें नहीं बैठते और न अीश्वरकी शरण लेते हैं, परन्तु अपने खतरेभरे जीवनमें क्या अुनमें से किसीने कभी आंखें बन्द करके भीतरसे बल प्राप्त नहीं किया है? क्या वे कभी अपने श्रद्धेय गुरुओं और मित्रोंके पास श्रद्धासे बैठने या अपने मान्य ग्रंथोंमें डुबकी मारनेकी भूख अनुभव नहीं करते? भले वे हमारी तरह भजन नहीं गाते और धुन नहीं गुंजाते, परन्तु क्या वे अुछल-अुछल कर अपने ध्येयसे संबंध रखनेवाले गीत नहीं गाते और नारे नहीं लगाते?

क्या अिन सबमें अीश्वरका नाम लेनेके सिवा प्रार्थनाका अेक भी लक्षण बाकी है? अथवा अीश्वर-भक्तिको यदि हम 'आजका प्रगट दुःख और नुकसान बरदाश्त

करके भी अदृश्य आदर्शके प्रति वफादार रहने' की आधुनिक भाषामें ढालें, तो हम यह भी नहीं मान सकते कि अुनके व्यवहारमें परमेश्वर नहीं है।

परन्तु अीश्वर और धर्मके प्रति अुनके क्रोधका दूसरा ही कारण है। वे पश्चिमके गुरुओंसे पढ़े हैं। अुन देशोंमें अेक जमानेमें ओसाओी धर्मके गिरजे और अुनके महन्त राज्यसत्तासे भी अधिक सत्ता भोगने लगे थे। वे परम्परासे चली आ रही धार्मिक रूढ़ियों और अंधविश्वासका राज्यके कानूनोंकी तरह सख्तीसे पालन कराते थे और जो न करता था अुसे भयंकर सजायें देते थे। राजा अिन महन्तोंके जुल्म करनेवाले दलालोंके रूपमें काम करनेको तैयार रहते थे और बदलेमें महन्त भी राजाके जुल्मोंको धर्म और पुण्यका मुलम्मा चढ़ा देते थे।

ये दो सत्तायें अकेली रहें तो भी लोगोंको पूरी तरह त्रस्त करनेको काफी हैं, दोनों अिकट्ठी हो जायं तब तो पूछना ही क्या? अुन्होंने लोगोंको मनुष्य न रहने देकर जानवर ही बना दिया। स्वतंत्र बुद्धिसे काम लेने, सत्ताके विरुद्ध सिर अुठानेको अेक सत्ता राजद्रोह कहने लगी और दूसरी सत्ता महापाप घोषित करने लगी।

अैसी परिस्थितिमें पश्चिमके जनसेवकोंको दोनों सत्ताओंके विरुद्ध लड़नेकी जरूरत पड़ी। अुसमें राजतंत्रके विरुद्ध लोगोंको जाग्रत करना तो आसान था, क्योंकि अुसका जुल्म सबको दिखाओी देनेवाला था। परन्तु धर्मतंत्रके विरुद्ध लड़ना बड़ा मुश्किल था। भोले लोग स्वयं ही यह मानते थे कि अुसका विरोध करनेसे पाप लगता है। अुन्हें कैसे समझाया जा सकता था? हमारे यहां हरिजन खुद ही अपनेको अस्पृश्य समझते हैं और कोओी सवर्ण अुनसे छू जाय तो वे मानते हैं कि सवर्णको पापमें डालनेका पाप अुन्हें लग गया। अैसी ही बात यह है।

अिसलिअे वहां जनताकी लड़ाअियां लड़नेवालोंको महन्तों और अुनके धर्मतंत्रोंके प्रति प्रबल क्रोध चढ़नेका कारण था। और धर्मतंत्रके बलका मूल आधार देव और देवालय तथा धर्म थे, अिसलिअे वह क्रोध अिन पर निकला। नेता पुकारने लगे, "धर्म तो अफीम है, जिसकी मददसे धर्मतंत्र लोगोंको नशेमें चूर रखकर अुनका शोषण करता है। अीश्वर जालिमोंका सरदार है, क्योंकि अुसकी आड़में रहकर ही महन्त और राजा दोनों अपना जुल्म लोगों पर चलाते हैं। अिसलिअे सबसे पहले अिस अीश्वरको ही हम खतम करेंगे और राजतंत्रोंको तोड़नेसे पहले देवके देवालयोंको तोड़ेंगे।"

पश्चिममें धर्म और परमेश्वरके नाम पर नेताओंको क्यों अितना क्रोध और जहर चढ़ा, अिसका यह कारण है। पश्चिमके गुरुओंसे सीखे हुअे हमारे भाओी अुछल-अुछलकर वही क्रोध और वही जहर यहां भी धर्म और अीश्वरके नाम पर बरसाते देखे जाते हैं।

परन्तु अिस देशमें तो अीश्वरने कभी अैसी अत्याचारी सत्ता जमाओी ही नहीं। हमारे देवालय राज्यसत्ताके धाम कब बने? हमारे साधु-महन्तोंके पास अुपदेश देनेके सिवा और सत्ता कहां होती है? ज्यादातर अुन्हें त्यागी, संन्यासी और भिक्षुकका ही

जीवन विताना होता है। वैसा जीवन न विताकर जब वे भोगी बनते हैं, तब तुरंत प्रतिष्ठा खो वैठते हैं। अुनके विरुद्ध हमारी जनतामें पश्चिमके जैसा क्रोध भड़काना संभव ही नहीं, स्वाभाविक भी नहीं और जरूरी भी नहीं है।

अिसलिअे हमारे ये बहादुर भाअी धर्म, प्रार्थना या परमेश्वरके विरुद्ध जो जिहाद छेड़ रहे हैं, वह हमारी जनताकी समझमें नहीं आता। बगीचेके फूलके पेड़ोंको दुश्मन मानकर अुन पर तलवार चलानेवाले अुत्पाती लड़के जैसे पागल माने जायंगे, वैसे ही पागल ये लोग अुन्हें लगते हैं।

हां, अितना सही है कि धर्म और अीश्वरका नाम भोली जनताको अंधश्रद्धा और वहमोंमें फंसाये रखनेका साधन हमारे यहां भी काफी मात्रामें सिद्ध हुआ है। धर्म या भगवानके नाम पर भी वहम और झूठ नहीं चलने देना चाहिये। धर्मश्रद्धाको वुद्धि या ज्ञानकी मारक नहीं बनने देना चाहिये। धर्मके नाम पर अूंच-नीचके भेदको और जालिमोंके जुल्मको प्रोत्साहन नहीं देना चाहिये।

अिसीलिअे धर्मके नाम पर हमारे देशमें अैसी जो बातें चलती हैं, अुनके विरुद्ध हम सेवक सख्तसे सख्त लड़ाअी लड़ा रहे हैं। अूंच-नीचका भेद तथा स्त्री और शूद्रके प्रति अन्याय अीश्वरका बनाया हुआ सनातन धर्म है और अुसके लिअे शास्त्रका आधार है, अैसी मान्यता हमारे यहां सनातन धर्मके नाम पर प्रचलित है। लोगोंका कड़ा विरोध मोल लेकर भी हम अुस मान्यताके विरुद्ध विद्रोह कर रहे हैं। धार्मिक मनुष्योंको संसारसे विरक्त होकर शांतिसे पूजापाठ और भजन-कीर्तन ही करना चाहिये, संसार तो माया है और समाजमें होनेवाले राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक अन्यायोंसे लड़नेके जंजालमें पड़ना अुनका काम नहीं — अैसी अैसी बातें भी हमें सनातन धर्मके नाम पर सिखाअी जाती हैं। अिनके विरुद्ध भी हम सेवकोंका पक्का सत्याग्रह चल रहा है।

हम अीश्वरका नाम लेते हैं, अपने जीवनमें धार्मिकता लानेकी कोशिश करते हैं, सुबह-शाम प्रार्थना करते हैं। जो लोग अिन सबको पुराने वहम, अंधश्रद्धा और धर्मके नाम पर हो रहे पाखंडके साथ जोड़ देते हैं, अुनके लिअे यही कहना चाहिये कि अुन्होंने हमें पहचाना ही नहीं।

प्रार्थना, धर्म वगैरा नामोंके भुलावेमें आकर वे भले हमारी निन्दा कर लें, परन्तु हम यदि सच्चे सत्याग्रही और जनताकी स्वतंत्रताकी लड़ाअीमें प्राणोंकी बाजी लगानेको तैयार रहनेवाले सैनिक होंगे और यदि वे भी ध्येयवादी और लड़वैये होंगे, तो हमें कभी न कभी वे जरूर पहचान लेंगे, हमारे साथ प्रेम करेंगे और स्वातंत्र्य-युद्धमें हमारे साथ अेक हो जायेंगे; फिर स्वभाव-भेदके कारण और शिक्षाभेदके कारण भले ही प्रार्थनामें वे हमारे साथ न वैठें और गीताके पारायणमें शरीक न हों। अिन्हें भी हमें अपने प्रार्थनाके सच्चे विरोधी हरगिज नहीं मानना चाहिये। सच्चे विरोधी तो दूसरे ही हैं। अिन्हें विरोधी कहनेके बजाय प्रार्थनाके निंदक ही कहना पड़ेगा।

सच्चे विरोधियोंको केवल प्रार्थनासे ही नफरत नहीं है, परन्तु हमारे सारे जीवनसे नफरत है। हर मामलेमें अुनका रास्ता हमसे न्यारा है। स्वार्थ ही अुनका

परमेश्वर है। अुसके लिअे मारपीट करना, हत्या करना, छल-कपट करना, अन्याय करना, चोरी करना, लूटपाट करना अुनका धर्म है। अुनके स्वार्थमें जो बाधक हो वही अुनका दुश्मन है — फिर भले वह सगा हो, मित्र हो, स्वदेश हो या स्वधर्म हो।

हम तो अुन्हें खास तौर पर आंखकी किरकिरी जैसे लगते हैं। हम समाजके नैतिक स्तरको अूपर अु ाने और संयम तथा त्यागका मूल्य बढ़ानेकी कोशिश करते हैं। अुनका अीर्ष्यालु हृदय यही मान लेता है कि हम अुनके भोग-विलासरूपी छप्पन भोगमें जहर मिला देते हैं और दुनियामें अुन्हें नीचा दिखाते हैं। हम दीन-दलितोंको समानता, स्वाश्रय और शौर्यके पाठ पढ़ाते हैं। यह अुन्हें अपने विरुद्ध घोर विद्रोह जैसा लगता है, क्योंकि अैसा करके हम अुनके गुलामोंको अुभाड़ कर अुनके विरुद्ध लड़ाते हैं और अुनके मुंहका कौर छीन लेते हैं।

और यह सब हम अहिंसाके मार्ग पर चलकर करते हैं, सचाअी और सभ्यता छोड़े बिना करते हैं और लड़ते हैं तो अिस ढंगसे लड़ते हैं कि कष्ट स्वयं हमें सहने पड़ें। अिससे वे हम पर और अधिक चिढ़ते हैं। वे यही मानते हैं कि दुनियामें अुनकी बदनामी करनेके लिअे ही हम यह युक्ति कर रहे हैं; हम निर्दोष अिसी-लिअे रहते हैं कि अुससे वे लोगोंमें बुरे दिखाअी दें।

सच्चे प्रार्थना-निन्दक तो यही हैं। परन्तु अीश्वरका बड़ा अुपकार है कि अैसे स्वभावके मनुष्य दुनियामें बहुत ही थोड़े होते हैं।

प्रार्थनाके ये सब जो विरोधी मैंने गिनाये हैं, अुनमें सबसे भयंकर कौन हैं, जिनसे हमें सावधान रहना चाहिये? आप फौरन जवाब देंगे कि अन्तमें गिनाये गये लोग, जिन्हें मैंने प्रार्थना-निन्दकका खास हीनतावाचक नाम दिया है, सचमुच भयंकर हैं। परन्तु अेक तो वे थोड़े होते हैं और दूसरे जब तक अुन्हें चुनौती न दी जाय तब तक वे अपने अीश्वर-विहीन जीवनमें मशगूल रहते हैं, अिसलिअे अुनसे तत्काल बहुत डरने जैसी बात नहीं है।

सचमुच भयंकर तो मैंने सबसे पहले बताये वे ही हैं, जो जीवनके बारेमें जरा भी गंभीर नहीं होते; जो नियमितता, सादगी, संयम, सेवा, प्रार्थना आदि सब बातोंको हंसीमें अुड़ा देते हैं और अेक प्रकारका निम्न कोटिका जीवन बिताते हैं। अुन्हें भयंकर कहनेसे मेरा आशय यह नहीं कि वे दुष्ट हैं या हमें कष्ट देनेवाले हैं। परन्तु अुन्हें देखकर अपने मार्गसे फिसल जानेका बड़ेसे बड़ा खतरा हमारे सामने है।

हम जरा अन्तर्मुख बनेंगे तो पता चलेगा कि हममें से अधिकांश अिसी श्रेणीके हैं। मुश्किलसे किसी अच्छे सज्जन या सन्मित्रकी प्रेरणासे, अथवा कोअी अच्छी पुस्तक पढ़नेसे, या देशमें हो रहे महान आन्दोलनोंके पवित्र प्रभावसे हममें जीवनके विषयमें कुछ गंभीरता आने लगी है, हमारे जीवन-ध्येयका मेरुदण्ड थोड़ा मजबूत होने लगा है। अैसे समय फिसलना हमें पुसा नहीं सकता। अतः हमें सावधान रहनेकी बड़ी जरूरत है।

परन्तु अुन्हें भयंकर मानकर अुनसे भागनेकी जरूरत नहीं। अीश्वर-कृपासे और हमारे सब साथियोंके अच्छे सहवाससे हममें आत्म-विश्वास आनेमें देर नहीं लगेगी।

फिर हमें ये आनंदी परन्तु अगंभीर लोग फिसला नहीं सकेंगे। अुलटे हम ही अुन्हें सेवा-जीवनकी ओर धीरे धीरे मोड़ लेंगे। जब तक हमारे जीवनका पौधा कोमल है, तब तक सावधान रहकर अुसका जतन करना हमारा फर्ज है। पेड़ मजबूत हो जायगा तब तो वह सबको अपनी तरफ खींचेगा और कोअी कभी अुसके साथ दुर्व्यवहार करेगा तो भी वह अुसे अनायास सह लेगा और अिसके बावजूद सबको लाभ पहुंचानेका अपना धर्म वह अुतने ही आनंदसे पालता रहेगा।

यह सब जो मैंने कहा अुसका सार अितना ही है कि लोगोंके दिमागों और स्वभावोंकी रचना अलग अलग प्रकारकी होनेसे भले ही अनेक लोगोंको अनेक कारणोंसे प्रार्थना निकम्मी लगती हो, परन्तु हमें तो अुसमें श्रद्धा है और दिनोंदिन यह अनुभव होता जा रहा है कि हमें अुससे बहुत प्रेरणा मिलती है। प्रार्थनासे अपने सब साथियोंके साथ हमारी आत्मा अेकता अनुभव करती है। हमारे सेवाकार्यमें वह आशाका सिंचन करती है। हमारे कठोर जीवनमें वह रस अुंड़ेलती है। और कसौटीके समय वह हमें बचा लेती है।

प्रवचन ५०

प्रार्थनाका शरीर

अब तक हमने प्रार्थनाकी आत्माका विचार किया। अब हम अुसके शरीरका विचार करेंगे। शरीरका यानी अुसके बाह्य स्वरूपका। यानी प्रार्थनामें किन किन चीजोंका समावेश हो, अुसके लिअे कैसा स्थान चुना जाय, अुसे कितना समय दिया जाय, अुसे करते समय कैसे आसन पर बैठा जाय, अुसकी भाषा कैसी हो? अित्यादि अित्यादि।

स्वयंस्फूर्तिवादियोंका तो यह सुनकर मुंह अुतर जायगा। वे कहेंगे: ‘अिस प्रकार प्रार्थनाको भी यदि चारों तरफसे घेरकर अुसका अेक ढांचा बना देना हो, तो फिर स्वयंस्फूर्तिके लिअे गुंजाअिश ही कहां रह जाती है?’ परन्तु अुन्हें भी अपने स्फूर्ति-युक्त ध्यान-धारणा-भक्तिमें बाह्य अंगोंका कुछ तो आश्रय लेना ही पड़ता है। बैठनेका अपना कोना निश्चित करना पड़ता है, वहां अपने अनुकूल आसन निश्चित रखना पड़ता है। कुछ भजन, मंत्र अित्यादि भी सोच लेने होते हैं।

हमें अेक बड़े समूहमें अिकट्ठा होकर प्रार्थना करनी पड़ती है, अिसलिअे प्रार्थनाके शरीरका विचार अनेक पहलुओंसे करना ही होगा। सारे समूहमें सबकी सुविधाका ध्यान रखा जाय, सबकी व्यवस्था रखी जाय, सबकी रुचिका खयाल रखा जाय — यह सब अच्छी तरह सोचकर यदि प्रार्थनाका प्रबंध किया जाय, तो ही वह सफल सिद्ध होगी और समूहका प्रत्येक सदस्य आनंदपूर्वक अुससे अपनी योग्यतानुसार लाभ अुठा सकेगा।

फिर हम अुसके सामने जानेमें शर्मायेंगे नहीं; आशीर्वाद और प्रोत्साहन मिलनेकी आशासे खुशी खुशी अुसके सामने जायंगे।

दो समयके दो संध्याकाल — अितना कहनेसे अिस जमानेके हम लोगोंको स्पष्ट कल्पना नहीं होती। हम तो घड़ीकी सुअी और मिनट मिनटके हिसाबसे चलनेवाले ठहरे। समूहकी अनुकूलताके लिअे घड़ीके निश्चित समय ही तय करने चाहिये। बराबर अुसी मिनट और अुसी सेंकड पर प्रार्थना शुरू होनी चाहिये, न अेक मिनट जल्दी और न अेक मिनट देरसे। अैसी सावधानी रखी जाय तो ही समूहके प्रत्येक सदस्यके दिलमें शांति रहेगी और अपने हाथके कामकाजसे निपटकर वह शांतिसे प्रार्थनामें समय पर पहुंच जायगा।

घड़ीका समय निश्चित करते समय हमारे जैसे देशके अन्य सब आश्रमोंकी सहूलियतका खयाल भी रखा जाय तो कितना अच्छा हो? अैसा करें तो कितनी ही दूर क्यों न हों, किसी भी प्रांत या गांवमें क्यों न बैठे हों, अेक विचार और अेक आचारके हम सब लोग अेक ही समय पर प्रार्थना कर सकते हैं।

सायंकालकी प्रार्थनाके लिअे अिस प्रकार सोचने पर ७॥ बजेका समय हर तरह अनुकूल माना जायगा। आश्रम-पद्धतिसे रहनेवाली संस्थायें और परिवार आम तौर पर शामको ६ बजे भोजन कर लेते हैं। अुसके बाद वायु-सेवन, खेल-कूद आदि हलके कार्यक्रमोंके लिअे काफी समयकी व्यवस्था रखते हुअे ७॥ का समय प्रार्थनाके लिअे ठीक लगता है। आकाशमें संध्या भी अुस समय खिलनेकी तैयारीमें होती है।

अिससे अधिक देर करनेसे हमारा काम नहीं चलेगा। प्रार्थनाके बाद और निद्राका प्रभाव जमनेसे पहले अध्ययनशील लोग यह जरूर चाहेंगे कि थोड़ा शांतिका समय अुनके लिअे रहे। प्रार्थना देरसे हो तो अुसमें कमी हो जाती है।

अिसी प्रकार सुबहकी प्रार्थनाका सही समय कौनसा है, यह तय करना सायं-प्रार्थनाकी तरह आसान नहीं है। अिसमें बहुतसी दृष्टियां खयालमें रखनी होंगी। और आश्रमवासियोंमें मतभेद भी हैं।

सूर्य अुगने अथवा आकाश लाल होनेकी भी प्रतीक्षा करने लगें तो बहुत देर हो जाय। प्रार्थनाका सही समय अुषाकालसे भी थोड़ा जल्दी रखना चाहिये। अिस समयको ही प्राचीन भाषामें ब्राह्म-मुहूर्तका नाम दिया जाता था; आजकलकी घड़ीकी भाषामें अुसे चार बजेका समय कहा जा सकता है। जल्दी चार बजे जागना और सूर्यके अुगनेसे पहले प्रार्थना करके शौचादि नित्यकर्म पूरा करनेके बाद अपने अपने काममें लगनेको तैयार हो जाना आश्रमकी दिनचर्याकी बुनियाद है।

अितनी जल्दी जागनेके विरुद्ध कोअी कोअी लोग आवाज अुठाते हैं, पर अुनकी आवाजकी तरफ ध्यान देनेसे हमारा काम नहीं चल सकता। क्योंकि हमें मालूम है कि अिन आवाज अुठानेवालोंको तो आश्रम-जीवनकी बहुतसी कठिनाअियोंके विरुद्ध शिकायत होती है। प्रयत्नपूर्वक जल्दी सोनेकी आदत डालकर जल्दी जागनेकी आदत डालना और अुसमें प्रसन्नता अनुभव हो अैसी स्थिति बना लेना ही ठीक होगा।

अिस संबंधमें किसीके बारेमें कुछ विचार करनेकी बात यदि हो सकती है तो वह कच्ची अुम्रके लड़के-लड़कियोंके बारेमें है। अुनके लिअे प्रार्थना देरसे करनेकी जरूरत नहीं होनी चाहिये। अिसका अर्थ यह नहीं कि अुन पर दया करके अुन्हें प्रार्थनाका लाभ खोनेको प्रोत्साहित किया जाय। हरगिज नहीं। जल्दी जागकर प्रार्थनामें भाग लेनेके लिअे अुन्हें सदा प्रोत्साहित ही करना चाहिये। अिसके लिअे अुन्हें रातको आठ-साढ़े आठ बजे तक सो जानेकी आदत आग्रहपूर्वक सिखा देनी चाहिये। बड़ी अुम्रके लोगोंके साथ रातको देर तक दियेके पास बैठकर पढ़ते रहने, ताश खेलने या गप्पें मारनेकी जो कुटेव आजके जमानेमें कच्ची अुम्रके लड़के भी डाल लेते हैं, वह बहुत बुरी है।

अितने जल्दी सोनेके बाद भी नींदका कर्ज चुकाना बाकी रह जाता मालूम हो, तो अैसे बच्चोंको दोपहरके भोजनके बाद १५ से ३० मिनट तक वामकुक्षी कर लेनेकी आदत डालनेमें हर्ज नहीं; यद्यपि सावधान न रहें तो यह आदत डालनेमें बकरीको बाहर निकालनेमें अूंटके घुस जानेका खतरा है। अैसा न हो कि रातको जल्दी सोनेमें धीरे धीरे ढिलाअी आये, सुबह जल्दी जागनेमें भी वैसा ही होने लगे और दोपहरका सोना सिर्फ १५ मिनटकी वामकुक्षी न रहकर खासा दो-तीन घंटेका रजाअी तानकर सोनेका कार्यक्रम हो जाय! परन्तु वैसे तो आश्रम-जीवनका अेक भी अंग अैसा नहीं है, जिसमें यदि हम जाग्रत न रहें तो फिसल पड़नेका खतरा न हो।

प्रार्थना कुछ देरसे रखनेके लिअे अेक और मजबूत दलील यह दी जाती है कि प्रार्थना जैसा पवित्र कार्य नहा-धोकर पवित्र होकर करना चाहिये। अेक तरफ यह पवित्र होनेका हमारे पूर्वजोंका प्राचीन विचार है और दूसरी तरफ हमारा यह आधुनिक विचार है कि जागकर दिनका शुभ आरंभ प्रार्थनासे ही किया जाय। अिन दो विचारोंमें से पिछला विचार ही सब दृष्टियोंसे अच्छा मालूम होगा। प्रार्थनासे पहले शौच और मुखमार्जन तो हो ही जाना चाहिये; अिसकी सुविधा देनेके लिअे जागनेका समय चार बजेका रखकर प्रार्थनाका साढ़े चारका रखना ठीक होगा।

अितना करते हुअे भी खतरा तो रहता ही है। संभव है शौच आदिके हिस्सेका आधा घंटा लोग नींदको ही अर्पण कर दें और प्रार्थनाकी घंटी बजने पर बिस्तरसे दौड़ते हुअे हाथ-मुंह धोये बिना ही प्रार्थनाकी जगह पर आकर बैठ जायं। आश्रमोंमें ये घटनाअें रोजमर्रा होती हैं। यह देखकर अक्सर जल्दी जागनेके बारेमें लोगोंका मन अुदासीन बन जाता है। परन्तु अैसा नहीं होने देना चाहिये। आश्रम जैसी संस्थाओंमें हम अिस हेतुसे रहते हैं कि सबल साथियोंके सहारेसे दुर्बल मनवाले लोग भी दिनोंदिन अूंचे अुठ सकें। निर्बल सदस्योंके मापसे ही सब चलने लगें, तब तो हम थोड़े ही समयमें आश्रम न रहकर अेक ध्येयहीन अथवा नियमहीन अव्यवस्थित अखाड़ा बन जायेंगे।

प्रार्थनाका आसन

आसनके संबंधमें भी थोड़ा विचार कर लेनेकी जरूरत है। प्रार्थनामें अेकाग्र होनेका प्रयत्न होना ही चाहिये; और अुसके लिअे स्थिर, अटल आसनसे बैठना जरूरी है।

अिस बारेमें पुराने योगियोंने बहुत गहरा विचार किया है। अिस तरह बैठना चाहिये कि शरीर, मस्तक और गरदन सीधी रेखामें रहें, पद्मासन लगायें, हिलें-डुलें नहीं, आंखें अधखुली और दोनों भौंहोंके बीचमें रखें, श्वास समान गतिसे लें, अित्यादि विस्तृत सूचनाअें अुन्होंने दी हैं।

अिनमें से अधिकांश बातें काफी अभ्यास करनेसे ही सिद्ध हो सकती हैं। हम यह नियम नहीं बना सकते कि आश्रम-प्रार्थनामें सब अैसा अभ्यास किये हुअे लोग ही आयें। परन्तु योगमार्गकी अुपरोक्त सूचनाओंमें निहित सिद्धान्तको समझ कर सब लोग आसानीसे किया जा सकनेवाला और अेकाग्रतामें सहायक होनेवाला आसन निश्चित कर सकते हैं। सादी पलथी मारकर बैठना, गरदन, कमर और रीढ़ सीधी रखना, शरीर या हाथ-पैर हिलने न देना, आंखें बन्द रखना — अिस ढंगसे विशेष श्रम किये बिना सब लोग बैठ सकते हैं।

अिसके लिअे भी मनकी तैयारी तो होनी ही चाहिये। अुसके न होनेसे आश्रम-प्रार्थनाओंमें लोग ढीली कमर रखकर थैलेकी तरह बैठे हुअे पाये जाते हैं। बहुतोंकी गरदन भी ढीली होती है।

अिस मामलेमें कुछ लोगोंको अेक गलतफहमी भी हो सकती है। आश्रम-जीवनमें नम्रता — अहिंसा अेक बहुत ही महत्त्वका गुण माना जाता है। अिसमें ढीली और टेढ़ी गरदनवाली बैठकके आसनका संबंध नम्रताके साथ जोड़ दिये जानेका ख़तरा रहता है। असलमें यह अेक भयंकर भ्रम है। जैसे निर्बलता अहिंसा नहीं है, वैसे ही ढीलापन भी नम्रता नहीं है। हमें प्रयत्नपूर्वक दृढ़ — सीधे आसनकी आदत डाल ही लेनी चाहिये; खास तौर पर जब तक प्रार्थनाका मूल भाग चल रहा हो तब तक — अर्थात् १५ से २० मिनट तक अैसा आसन जरूर रखा जाय। बादमें प्रवचन और पाठके समय सामान्य ढंगसे बैठें तो काम चल सकता है।

दूसरे, यदि आसनकी दृढ़तामें दृढ़ मनका साथ न हो तो जरा-सी देरमें कमर लचक जाती है, शरीर बार-बार हिलता है, गरदन और हाथ-पैर बार-बार दायें बायें होते रहते हैं। कुछ देरमें पलथी, कुछ देरमें अुलटे पांव, कुछ देरमें हाथका सहारा, अिस प्रकार प्रार्थनाके दौरानमें चल-विचल स्थिति होती ही रहती है। अिसलिअे यहां बताया हुआ सादा आसन भी सच्चे मनसे प्रयत्न करें तो ही सिद्ध किया जा सकता है।

आसनका विचार करते समय कुछ और दृष्टियां भी रखने लायक हैं। वे संक्षेपमें ये हैं — आपसमें किसीके घुटने न छुअें और किसीकी सांस दूसरेके मुंह पर न जाय, अितना अंतर रखकर बैठनेकी सावधानी रखी जाय। शरीरके किसी विकारके कारण किसीकी सांसमें बदबू आती हो, तो अुसे खुद समझ-सोचकर दूसरोंसे जरा अलग बैठना चाहिये।

आम तौर पर पहले हम बैठते हैं तब तो अन्तर रखकर बैठते हैं। परन्तु कोअी न कोअी मित्र जरा देरसे आनेवाले होते ही हैं और अुन्हें अपने कुछ मित्रोंके पास बैठनेकी अिच्छा हो आती है, अथवा कोअी किसी जगहको अच्छी मानकर वहीं

बैठनेका आग्रह रखकर आते है, अथवा अुन्हें प्रार्थनाके व्यासपीठके नजदीक बैठना होता है। अिसलिअे वे फच्चरकी तरह बीचमें घुसते हैं। अिससे दोनों तरफके सदस्योंको दबना पड़ता है और घुटने पर घुटना और कंधे पर कंधा चढ़ानेको मजबूर होना पड़ता है। अिस प्रकार बहुतोंके लिअे अुस दिनकी सारी प्रार्थना अेक प्रकारकी असुविधा और असुखकी भावनासे घिर जाती है। अिसमें भी यदि देरसे आनेवाले ये मित्र प्रार्थना शुरू होनेके बाद बीचमें घुसते हैं तब तो हमारी अेकाग्रता नष्ट हो जाती है। दालके जलकर नष्ट हो जानेकी तरह हमारी अुस दिनकी प्रार्थना सचमुच नष्ट हो जाती है।

जैसे साहसी लोग बीचमें घुसकर खेल बिगाड़ते हैं, वैसे साहसहीन भी दूसरी तरहका बिगाड़ करते हैं। अैसे साहसहीन, शर्मीले स्वभावके मनुष्योंको किसी भी सभामें खाली जगह होने पर आगे जाकर बैठनेकी हिम्मत नहीं होती। वे सदा सभास्थानमें घुसते ही पहलीसे पहली खाली जगह देखकर बैठ जाते हैं। अुनके जैसे स्वभाववाला दूसरा आये तो वह भी अुनके आगे जाकर कैसे बैठ सकता है? वह और पीछे बैठेगा। अिस तरह करते करते अिन शर्मीले भाअियोंकी शरमका जोड़ अितना बड़ा हो जाता है कि सभाका प्रवेश-द्वार बन्द हो जाता है और नये आनेवालोंके लिअे अन्दर जानेकी जगह नहीं रहती। सभाके अन्दर बीचमें बहुत जगह खाली होती है, परन्तु वहां पहुंचनेके लिअे कअी लोगों पर कूद-कूद कर जाना पड़ता है।

हम जरा अधिक व्यवस्थित होना सीख लें, तो अैसे विक्षेपोंसे बड़ी आसानीसे बच सकते हैं। प्रार्थनाके नियमित सदस्य अपनी जगह निश्चित करके रोज वहीं बैठा करें और वे देरसे आयें तो भी दूसरे अुनकी जगह खाली रहने दें। प्रार्थनामें गांव-वाले या दूसरे अनियमित लोग आते हों, तो अुनके लिअे अेक निश्चित स्थान अलग रखना चाहिये और वे मनचाहे ढंगसे किनारे पर न बैठकर जैसे जैसे आते जायं वैसे वैसे ठेठ अंदरके भागमें बैठते जायं अैसी तालीम अुन्हें देनी चाहिये।

प्रवचन ५१

प्रार्थना किस भाषामें की जाय?

प्रार्थनामें संस्कृत, अरबी वगैरा अनेक भाषाओंमें से मंत्र, श्लोक या आयतें लेनेका आकर्षण रहता ही है। हमारे धर्मग्रंथ, वेद, अुपनिषद्, गीता, कुरान आदि अिन भाषाओंमें हैं। और अुनमें हमें सारी धार्मिक भावनाओंके मूल स्रोत मिल जाते हैं, अिसलिअे प्रार्थनाका चुनाव करते समय हमारा अिन प्राचीन स्रोतोंकी तरफ मुड़ना स्वाभाविक है।

परन्तु प्रार्थना हमारे लिअे केवल अेक धर्म-विधि अथवा बाह्य आचार ही नहीं है। हम तो अुससे नित्य नअी प्रेरणा और आत्मबल प्राप्त करना चाहते हैं। अिसलिअे अुसकी भाषा अैसी होनी चाहिये, जिसे हम स्वाभाविक रूपमें बिना किसी प्रयासके समझ सकें।

हमारा समूह संस्कृत, अरबी आदि भाषाओंका ज्ञान रखनेवाले विद्वानोंका बना हो, तब तो अिन भव्य भाषाओंमें प्रार्थना करनेका आनंद हम जरूर लूट सकते हैं। परन्तु ज्यादातर हम अपनी प्रार्थनाओंमें आश्रमवासी बहनों और बच्चोंको शरीक करना

चाहते हैं, ग्रामवासी जनताको भी अुसका स्वाद लगाना चाहते हैं। अिसलिअे हम स्वयं प्राचीन धर्म-भाषाओंका सीधा रसास्वाद कर सकें, तो भी हमें अपनी सामूहिक प्रार्थनाकी भाषा अैसी रखनी चाहिये जिसे सब कोअी समझ लें। संस्कृत मंत्र पढ़नेसे अेक तरहका धार्मिक दिखावा जरूर खड़ा हो जाता है, परन्तु दिखावा करनेमें प्रार्थनाकी आत्मा चली जाय तो वह किस कामका?

तब प्रश्न अुठता है कि सत्याग्रह आश्रमकी प्रचलित प्रार्थनाअें संस्कृतमें क्यों होती हैं? अिसके कुछ कुदरती कारण हैं। अेक तो गांधीजीके आश्रममें हमेशा अनेक भाषाअें बोलनेवाले सदस्योंका समूह होता है और अुनमें बहुतसे विद्वान होते हैं, अिसलिअे सामान्य भाषाके रूपमें संस्कृत भाषासे वहां सहज ही सबका काम चल सकता है; यद्यपि वहां भी स्त्रियों, बालकों, कारीगरों आदि कम विद्वानों अथवा अविद्वानोंका वर्ग छोटा नहीं होता और अुन्हें तो विद्वानोंके साथ बिना समझे चलना और तोतेकी तरह रटन ही करना होता है।

दूसरे, गांधीजीके सिद्धान्तोंकी प्रेरणासे देशके अलग अलग प्रान्तोंमें अनेक आश्रम चल रहे हैं। अुन सब संस्थाओंमें प्रार्थनाअें अेकसी हों, यह बड़ी सुन्दर और भव्य वस्तु है। संस्कृत अेक सर्व-सामान्य भाषाके तौर पर अिस तरह भी अच्छा काम दे सकती है। आज गांधीजी देशके किसी भी भागमें सफर कर रहे हों, परन्तु प्रार्थनाकी रचना समान होनेसे लोग अुनकी प्रार्थनामें शरीक हो सकते हैं; अगर गांधीजी गुजरातीमें प्रार्थना करें तो अैसा नहीं हो सकता।

परन्तु यह पिछली दृष्टि ही हमारे सामने हो, तब तो प्रार्थनाकी सर्व-सामान्य भाषाका स्थान संस्कृतके बजाय राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी अधिक अच्छी तरह ले सकती है। देशके किसी भी प्रान्तमें अुसे सीखना और समझना संस्कृतसे बहुत ज्यादा आसान होगा। और न सीखे हुअे लोग भी आसानीसे अुसका भावार्थ ग्रहण कर सकते हैं।

असलमें आश्रम-प्रार्थनाओंका यदि कोअी सबसे अधिक लोकप्रिय अंग हो तो वह अुनका श्लोक-विभाग नहीं, परन्तु संत-कवियोंके हिन्दी भाषाके भजन ही हैं। श्लोक अेक प्रकारका धार्मिक विधिका वातावरण जरूर पैदा करते होंगे, परन्तु निष्प्राण वातावरणकी क्या कीमत? अधिकसे अधिक लोग आश्चर्यसे कहेंगे, "वाह! कैसी भव्य प्रार्थना है! मानो किसी प्राचीन अृषिका आश्रम हो!" परन्तु अृषिका सन्देश क्या है, यह अुससे बहुत थोड़े लोग समझ सकेंगे। परन्तु भजन हिन्दी भाषामें होनेसे सीधे अुनके अन्तरमें अुतर जाते हैं, अुन्हें हिला देते हैं और गांधीजी क्या कहना चाहते हैं, यह समझनेके लिअे अुनकी हृदय-भूमिको तैयार कर देते हैं।

तब प्रचलित प्रार्थनामें संस्कृत भाषाको स्थान कैसे मिल गया? अैसा मालूम होता है कि अुसके मूल निर्माता संस्कृतके अभ्यासी और प्राचीन धर्म-साहित्यके भक्त रहे होंगे। अुसमें से अुन्हें प्रार्थनामें लेने लायक पूरेके पूरे प्रकरण मिल गये।

गीतामें से स्थितप्रज्ञका प्रकरण संपूर्ण और सम्बद्ध मिल गया। हम जैसे सेवक बननेकी रात-दिन कोशिश कर रहे हैं, अुसका कितना सुन्दर, कितना शास्त्र-शुद्ध

निरूपण अुसमें है! और अुसके साथ साथ गीता जैसे पूज्य ग्रंथका संबंध, व्यास जैसे ऋषि और श्रीकृष्ण जैसे देवता। फिर चुनाव हो जानेमें क्या देर लग सकती थी? अुन्हें यह विचार जरूर आया होगा कि भाषा संस्कृत है, स्त्री-बच्चोंको मुश्किल पड़ेगी। परन्तु अुन्होंने मनको समझा लिया होगा: "हम अुनकी मदद करेंगे, अुन्हें सिखा देंगे; अितनी-सी मेहनतके डरसे अैसी प्रासादिक वस्तु छोड़ देना कायरता ही मानी जायगी।"

अिसी प्रकार श्री शंकराचार्यके 'प्रातः स्मरामि' और 'नमस्ते सते' वाले सुन्दर स्तोत्र मिल गये। "प्रार्थनामें हमें यही चाहिये। गहन गम्भीर वेदान्तमें डुबकी मारना और साथ ही भक्तिरसमें ओतप्रोत होना ही हमारी आत्माकी भूख है। शंकराचार्यके सिवा और कौन अिस भूखको मिटानेवाला मिल सकता है? अुनकी भाषा संस्कृत है, परन्तु अिस कारणसे हम कायर क्यों बन जायं? अुसे हम प्रयत्न करके समझ लेंगे। प्रार्थनाके पीछे हमारा सजीव प्रयत्न न हो, तो फिर वह प्रार्थना कैसी?"

अिस तरहकी और भी तैयार चीजें पुराने धर्म-साहित्यमें से मिल गअीं और अर्वाचीन प्रान्तीय अथवा राष्ट्रीय भाषाओंमें अितना सन्तोष देनेवाला तुरन्त कुछ मिल नहीं सका। संस्कृत श्लोकोंके अनुवाद करके काम चलानेकी अिच्छा हुअी होगी, परन्तु साहित्यकी अूंचीसे अूंची रसिकता रखनेवालोंके मन अिस विचारसे खट्टे हो गये होंगे: "ऋषियों और महात्माओंकी अिस वाणीका प्रसाद, अुसकी गूंज भाषान्तरोंमें कौन ला सकता है? मूल मूल ही है और छाया छाया ही है!"

यह तो हमने प्रार्थनाकी रचना करनेवालोंके मानसका चित्र प्रस्तुत किया। परन्तु आश्रम-प्रार्थनामें कुछ नअी वृद्धि भी हुअी है। अुसमें भी प्राचीन भाषाअें ही आअी हैं। अिस वृद्धिमें अेक तो कुरान शरीफकी आयतें हैं। प्राचीन अरबी और कुरानकी दिव्य वाणीके प्रति मुसलमानोंकी भक्ति प्रसिद्ध है। कुरानसे कुछ भाग लेनेका विचार हो तो तरजुमेका खयाल सपनेमें भी आना मुश्किल है।

दूसरी नअी वृद्धि 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः' अिस विचारवाले अुपनिषद्-मंत्रकी है। जबसे हम सबके रोम-रोममें रमा लेने लायक यह विचार प्रार्थनामें आया, तबसे प्रार्थनाकी प्राणशक्ति जरूर बहुत बढ़ गअी है। कैसी काव्यमय, कैसी सरल, कैसी मधुर अिस ऋषिकी संस्कृत भाषा है! प्रचलित भाषाके किसी कविने अितने सुन्दर ढंगसे यह विचार पेश किया हो, अैसा कहीं देखनेमें नहीं आता। पता नहीं अिस जमानेके हम लोग अितने पामर कैसे हो गये हैं कि अुन ऋषियों जैसी सीधी, सरल और ओजपूर्ण वाणी बोलनेवाला अेक भी कवि हममें पैदा नहीं होता।

अिस प्रकार आश्रमकी प्रार्थनाअें संस्कृत जैसी प्राचीन धर्म-भाषाओंसे ली गअी हैं और होती आअी हैं, यह जानते हुअे भी और प्राचीन वाणीके प्रसाद आदिका परिचय होते हुअे भी अिसमें शंका नहीं कि हमें प्रार्थनाओंकी भाषा अपनी राष्ट्र-भाषाको ही बना लेना चाहिये।

चाहते हैं, ग्रामवासी जनताको भी अुसका स्वाद लगाना चाहते हैं। अिसलिअे हम स्वयं प्राचीन धर्म-भाषाओंका सीधा रसास्वाद कर सकें, तो भी हमें अपनी सामूहिक प्रार्थनाकी भाषा अैसी रखनी चाहिये जिसे सब कोअी समझ लें। संस्कृत मंत्र पढ़नेसे अेक तरहका धार्मिक दिखावा जरूर खड़ा हो जाता है, परन्तु दिखावा करनेमें प्रार्थनाकी आत्मा चली जाय तो वह किस कामका?

तब प्रश्न अुठता है कि सत्याग्रह आश्रमकी प्रचलित प्रार्थनाअें संस्कृतमें क्यों होती हैं? अिसके कुछ कुदरती कारण हैं। अेक तो गांधीजीके आश्रममें हमेशा अनेक भाषाअें बोलनेवाले सदस्योंका समूह होता है और अुनमें बहुतसे विद्वान होते हैं, अिसलिअे सामान्य भाषाके रूपमें संस्कृत भाषासे वहां सहज ही सबका काम चल सकता है; यद्यपि वहां भी स्त्रियों, बालकों, कारीगरों आदि कम विद्वानों अथवा अविद्वानोंका वर्ग छोटा नहीं होता और अुन्हें तो विद्वानोंके साथ बिना समझे चलना और तोतेकी तरह रटन ही करना होता है।

दूसरे, गांधीजीके सिद्धान्तोंकी प्रेरणासे देशके अलग अलग प्रान्तोंमें अनेक आश्रम चल रहे हैं। अुन सब संस्थाओंमें प्रार्थनाअें अेकसी हों, यह बड़ी सुन्दर और भव्य वस्तु है। संस्कृत अेक सर्व-सामान्य भाषाके तौर पर अिस तरह भी अच्छा काम दे सकती है। आज गांधीजी देशके किसी भी भागमें सफर कर रहे हों, परन्तु प्रार्थनाकी रचना समान होनेसे लोग अुनकी प्रार्थनामें शरीक हो सकते हैं; अगर गांधीजी गुजरातीमें प्रार्थना करें तो अैसा नहीं हो सकता।

परन्तु यह पिछली दृष्टि ही हमारे सामने हो, तब तो प्रार्थनाकी सर्व-सामान्य भाषाका स्थान संस्कृतके बजाय राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी अधिक अच्छी तरह ले सकती है। देशके किसी भी प्रान्तमें अुसे सीखना और समझना संस्कृतसे बहुत ज्यादा आसान होगा। और न सीखे हुअे लोग भी आसानीसे अुसका भावार्थ ग्रहण कर सकते हैं।

असलमें आश्रम-प्रार्थनाओंका यदि कोअी सबसे अधिक लोकप्रिय अंग हो तो वह अुनका श्लोक-विभाग नहीं, परन्तु संत-कवियोंके हिन्दी भाषाके भजन ही हैं। श्लोक अेक प्रकारका धार्मिक विधिका वातावरण जरूर पैदा करते होंगे, परन्तु निष्प्राण वातावरणकी क्या कीमत? अधिकसे अधिक लोग आश्चर्यसे कहेंगे, "वाह! कैसी भव्य प्रार्थना है! मानो किसी प्राचीन ॠषिका आश्रम हो!" परन्तु ॠषिका सन्देश क्या है, यह अुससे बहुत थोड़े लोग समझ सकेंगे। परन्तु भजन हिन्दी भाषामें होनेसे सीधे अुनके अन्तरमें अुतर जाते हैं, अुन्हें हिला देते हैं और गांधीजी क्या कहना चाहते हैं, यह समझनेके लिअे अुनकी हृदय-भूमिको तैयार कर देते हैं।

तब प्रचलित प्रार्थनामें संस्कृत भाषाको स्थान कैसे मिल गया? अैसा मालूम होता है कि अुसके मूल निर्माता संस्कृतके अभ्यासी और प्राचीन धर्म-साहित्यके भक्त रहे होंगे। अुसमें से अुन्हें प्रार्थनामें लेने लायक पूरेके पूरे प्रकरण मिल गये।

गीतामें से स्थितप्रज्ञका प्रकरण संपूर्ण और सम्बद्ध मिल गया। हम जैसे सेवक बननेकी रात-दिन कोशिश कर रहे हैं, अुसका कितना सुन्दर, कितना शास्त्र-शुद्ध

निरूपण अुसमें है! और अुसके साथ साथ गीता जैसे पूज्य ग्रंथका संबंध, व्यास जैसे अृषि और श्रीकृष्ण जैसे देवता। फिर चुनाव हो जानेमें क्या देर लग सकती थी? अुन्हें यह विचार जरूर आया होगा कि भाषा संस्कृत है, स्त्री-बच्चोंको मुश्किल पड़ेगी। परन्तु अुन्होंने मनको समझा लिया होगा: "हम अुनकी मदद करेंगे, अुन्हें सिखा देंगे; अितनी-सी मेहनतके डरसे अैसी प्रासादिक वस्तु छोड़ देना कायरता ही मानी जायगी।"

अिसी प्रकार श्री शंकराचार्यके 'प्रातः स्मरामि' और 'नमस्ते सते' वाले सुन्दर स्तोत्र मिल गये। "प्रार्थनामें हमें यही चाहिये। गहन गम्भीर वेदान्तमें डुबकी मारना और साथ ही भक्तिरसमें ओतप्रोत होना ही हमारी आत्माकी भूख है। शंकराचार्यके सिवा और कौन अिस भूखको मिटानेवाला मिल सकता है? अुनकी भाषा संस्कृत है, परन्तु अिस कारणसे हम कायर क्यों बन जायं? अुसे हम प्रयत्न करके समझ लेंगे। प्रार्थनाके पीछे हमारा सजीव प्रयत्न न हो, तो फिर वह प्रार्थना कैसी?"

अिस तरहकी और भी तैयार चीजें पुराने धर्म-साहित्यमें से मिल गअीं और अर्वाचीन प्रान्तीय अथवा राष्ट्रीय भाषाओंमें अितना सन्तोष देनेवाला तुरन्त कुछ मिल नहीं सका। संस्कृत श्लोकोंके अनुवाद करके काम चलानेकी अिच्छा हुअी होगी, परन्तु साहित्यकी अूंचीसे अूंची रसिकता रखनेवालोंके मन अिस विचारसे खट्टे हो गये होंगे: "अृषियों और महात्माओंकी अिस वाणीका प्रसाद, अुसकी गूंज भाषान्तरोंमें कौन ला सकता है? मूल मूल ही है और छाया छाया ही है!"

यह तो हमने प्रार्थनाकी रचना करनेवालोंके मानसका चित्र प्रस्तुत किया। परन्तु आश्रम-प्रार्थनामें कुछ नअी वृद्धि भी हुअी है। अुसमें भी प्राचीन भाषाअें ही आअी हैं। अिस वृद्धिमें अेक तो कुरान शरीफकी आयतें हैं। प्राचीन अरबी और कुरानकी दिव्य वाणीके प्रति मुसलमानोंकी भक्ति प्रसिद्ध है। कुरानसे कुछ भाग लेनेका विचार हो तो तरजुमेका खयाल सपनेमें भी आना मुश्किल है।

दूसरी नअी वृद्धि 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः' अिस विचारवाले अुपनिषद्-मंत्रकी है। जबसे हम सबके रोम-रोममें रमा लेने लायक यह विचार प्रार्थनामें आया, तबसे प्रार्थनाकी प्राणशक्ति जरूर बहुत बढ़ गअी है। कैसी काव्यमय, कैसी सरल, कैसी मधुर अिस अृषिकी संस्कृत भाषा है! प्रचलित भाषाके किसी कविने अितने सुन्दर ढंगसे यह विचार पेश किया हो, अैसा कहीं देखनेमें नहीं आता। पता नहीं जिन जमानेके हम लोग अितने पामर कैसे हो गये हैं कि अुन अृषियों जैसी सीधी, सरल और ओजपूर्ण वाणी बोलनेवाला अेक भी कवि हममें पैदा नहीं होता।

अिस प्रकार आश्रमकी प्रार्थनाअें संस्कृत जैसी प्राचीन धर्म-भाषाओंसे ली गअी हैं और होती आअी हैं, यह जानते हुअे भी और प्राचीन वाणीके प्रसाद आदिका परिचय होते हुअे भी अिसमें शंका नहीं कि हमें प्रार्थनाओंकी भाषा अपनी राष्ट्र-भाषाको ही बना लेना चाहिये।

अिसके सिवा, हमारा आश्रम ग्रामीण जनताकी सेवा करनेवाला ठहरा, अिसलिअे हमें तो राष्ट्रभाषा भी भारी पड़ेगी। अिस कारणसे हमने प्रार्थनाओंको गुजरातीमें ही अुतार लिया है।' हम जानते हैं कि अैसा करनेमें भाषाकी प्रासादिकताका वलिदान हुआ है। परन्तु हम यह कैसे सहन कर सकते हैं कि हमारे साथ घुल-मिल जानेवाले ग्रामवासी भाअी, वहनें और वच्चे तथा वहुतसे आश्रमवासी भी प्रार्थनाका कोअी अर्थ न समझें और जो वोलें अुसमें से थोड़ी भी शक्ति प्राप्त न करें? मूल प्रार्थना समझकर वोल सकनेवाले हमारे यहां मुश्किलसे ५–७ आदमी होंगे। अैसी परिस्थितिको पहचानकर यदि हम भाषा वदलनेकी हिम्मत न करें, तो सचमुच हमारी गिनती जड़ और लकीरके फक़ीरोंमें ही होगी।

प्रवचन ५२

प्रार्थनामें क्या क्या होना चाहिये?

प्रार्थनाके द्वारा हम अपने जीवनके सिद्धान्तोंको, अपने ध्येयोंको खूनमें रमा लेना चाहते हैं, अुनका रटन कर-करके दिन-प्रतिदिन अुनमें छिपा हुआ अर्थ वाहर लाना चाहते हैं, अिसलिअे अैसे सिद्धान्तों और ध्येयोंके वाचक श्लोक प्रार्थनाका मुख्य अंग वन गये हैं। असलमें यही मुख्य प्रार्थना है। अुसके वाकी सव अंग डाल-पत्ते हैं।

कुछ भक्तिभाववाले लोगोंको शायद अिससे संतोष न हो। अुनकी आत्मा तो भगवानकी महान शक्तियोंका वर्णन करनेवाली, अुसके चरणोंमें दीन वनकर अर्ज करनेवाली प्रार्थनाके लिअे तरसती रहती है। कुछ लोग तत्त्वचिन्तक होते हैं। अुनकी आत्मा अैसी ही प्रार्थनासे संतोष पा सकती है, जिसमें अीश्वर-तत्त्वके निरंजन निराकार आदि गुणोंका और संसारकी असारताका वर्णन हो। अुन्हें हमारी प्रार्थना फीकी लग सकती है। वे कहेंगे, "अिसमें भक्तिका अुभार लानेवाले या ज्ञानके सागरमें गोते लगवानेवाले तत्त्व कहां हैं? अिसमें तो केवल नीतिके नियम ही संगृहीत किये गये हैं। प्रार्थनाके समय भी दो घड़ी दुनियाको भूलकर वैराग्यमें मस्त न हों, तो वह प्रार्थना कैसी? आप तो अुस समय भी अिसीकी रट लगाते हैं कि दुनियामें — समाजमें कैसे नीति-नियमोंका पालन किया जाय, अुसकी अुन्नति करनेके लिअे कैसा जीवन विताया जाय। केवल अितनेसे आत्माको कैसे संतोष हो सकता है?"

भक्त-हृदय लोग यह भी कहते हैं: "अिसका नाम ही 'प्रार्थना' है। अुसमें भगवानसे भक्तिपूर्ण याचना न हो तव तो अुसका नाम ही गलत हो जायगा!" शायद अुनका कहना सही हो और हम जो प्रार्थना कर रहे हैं अुसके लिअे 'प्रार्थना' नाम ठीक न हो। कुछ विचारक आश्रमवासी अिसके लिअे 'अुपासना' नाम ज्यादा अुचित मानते हैं — अर्थात् जीवनके गंभीर प्रश्नोंका चिन्तन करनेके लिअे, जीवनके सिद्धान्तोंको दृढ़ करनेके लिअे दो घड़ी शांतिसे वैठना।

हमें शांतिसे बैठकर भगवानकी अुपासना ही करनी है, परन्तु हम भगवानको जनता-जनार्दनके रूपमें अथवा दरिद्र-नारायणके रूपमें देखते हैं। अिसलिअे अुसकी सेवा ही हमारा भजन वन जाता है। अुसकी सच्ची पूजा हम तभी कर सकते हैं, जब हम अपना जीवन शुद्ध, निःस्वार्थ और निर्विकार वना लें। अिसलिअे हम स्वाभाविक रूपमें अुपासनाके समय 'स्थितप्रज्ञ' के लक्षणोंका चिन्तन करना पसन्द करते हैं।

अिसी तरह, परमात्माने अपना निर्गुण निरंजन रूप तो हमसे छिपा रखा है। हमारे आंख-कान अितने स्थूल हैं कि अिनसे अुसे देखना-सुनना संभव नहीं है। अपनी वुद्धिको हम कितना ही सूक्ष्म वना लें, तो भी वुद्धिके द्वारा अुसका चिन्तन कर सकनेकी आशा नहीं है। जवान कितनी ही लंबी क्यों न वना लें, परन्तु वह अुस रूपका वाणीमें वर्णन कर सके अैसी आशा नहीं है।

परन्तु अीश्वरने यदि हमें अिस प्रकार तंग आश्रममें वन्द किया है, तो साथ ही अप्रगट रहते हुअे भी हमारे खातिर वह अैसे रूपमें प्रगट हुआ है जिसे हम देख सकें। कैसा सुन्दर है अुसका यह रूप! कितना भव्य है! जगमगाते तारोंसे भरा आकाश, तेजस्वी सूर्य और शीतल चंद्र, गगनचुम्वी पर्वत और विशाल समुद्र, हरेभरे वृक्ष और अिन सवसे अद्‌भुत प्राणी और प्राणियोंमें भी अिन सवके शिखर पर वुद्धि और भावनासे युक्त मनुष्यप्राणी — भगवानका यह प्रकटरूप हम आंखोंसे देख सकते हैं, वाणीसे अुसका गुणगान कर सकते हैं, अुस पर हम प्रेम वरसा सकते हैं, अपने भोग-विलास और स्वार्थोंका त्याग करके अुसे प्रसन्न कर सकते हैं। अुसकी सेवामें अपनेको अर्पण कर, अपने प्राणोंका वलिदान देकर हम अुसमें अेकरूप हो सकते हैं। हम अत्यन्त भक्ति-भावसे प्रार्थनामें रोज प्रातःकाल अुस पीड़ित-नारायण अथवा दरिद्र-नारायणका स्मरण करते हैं:

> न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
> कामये दुःखतप्तानां प्राणिनां आर्तिनाशम्॥

अैसा है हमारा भगवान, अैसी है हमारी भक्ति। अिसीके अनुरूप हमने अपनी अुपासना अथवा प्रार्थना वना ली है।

प्रार्थनाका दूसरा अंग है भजन और धुन। वह प्रार्थनाका सवसे मधुर और अिस-लिअे लोकप्रिय अंग है। छोटे वच्चे और ग्रामवासी भी अुसमें श्रद्धापूर्वक शरीक हो सकते हैं। अुसमें भी हम अपने प्रिय सिद्धान्त ही गाते हैं, परन्तु संगीत और काव्यके रसोंमें मिलकर वे अच्छी तरह पकाये हुअे अन्नकी तरह सुपाच्य, रुचिकर और हलके वन जाते हैं।

अिसके लिअे हमें तुलसीदास, सूरदास, कवीर, नरसिंह मेहता, मीरावाअी, तुका-राम जैसे संत-कवियोंकी विरासत मिली है, यह हमारा कितना वड़ा सौभाग्य है? अिस विरासतका अुपयोग करनेमें हमने भाषाके भेदको वाधक नहीं होने दिया है। गुजराती, हिन्दी, वंगाली, मराठी सव भाषाओंमें हम भजन गाते हैं।

आजका जमाना जिस मामलेमें हमें सूखी हुआी गाय जैसा लगता है। कवि और लेखक तो बहुत हैं। परन्तु वे भक्त और संत नहीं होते। फिर भी हमारी यह जड़ मान्यता नहीं है कि पुराना ही सोना है और नयेमें कुछ होता ही नहीं। हमारी आत्माको संतोष देनेवाले भजन आजकलके कवियोंमें मिल जाते हैं तो हम अुपकार-सहित अुन्हें भी ले लेते हैं। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ, नानालाल और नरसिंहरावके कुछ भजन हमारे प्रिय भजनोंमें हैं।

हमारे सिद्धान्त पुराने होने पर भी अुनका रूप-रंग और लिबास नया ही है। सत्याग्रह, बलवानोंकी अहिंसा, निर्दोषमें रहनेवाली विरोधीका हृदय-परिवर्तन करनेकी अद्भुत शक्ति, अनासक्ति, हमारे ग्यारह व्रत, दरिद्र-नारायण और पतित-पावनकी भक्ति —अैसी अैसी वे नअी भावनाअें हैं। यह आशा हम सदा ही रखते हैं कि जिन सिद्धान्तोंके भजन और धुन गानेवाले नये संत-कवि पैदा होंगे और हमारे भजन-संग्रहमें नअी भरती करेंगे। अैसा समय आने तक हम पुराने संतोंकी वाणीमें अपने हृदयके भाव मिलाकर अुसे गाते हैं।

श्लोक-विभागमें हमने अपने ध्येयका सीधा रटन ही रखा है, परन्तु भजनोंमें तो हम नित-नये भाव धारण कर सकते हैं। कभी सीधे 'वैष्णव-जन' के लक्षण गाते हैं, तो कभी 'हरिनो मारग छे शूरानो*' या 'शूर संग्रामको देख भागे नहीं' आदि वीर-वाणी भी गाते हैं। कभी रजके जैसे बन कर प्रभुके चरणोंमें बैठते हैं और 'मो सम कौन कुटिल खल कामी' गाते हैं और अपने भीतरके दोष ढूंढ़नेकी कोशिश करते हैं। सत्यके मार्ग पर चलते हुअे कष्टोंका सामना करनेके और चारों ओरसे निराश होनेके छोटे-बड़े प्रसंग तो जीवनमें आते ही रहते हैं। अैसे समय 'सुनेरी मैंने निर्बलके बल राम' गाकर हम हृदयमें बल भरते हैं अथवा 'हरिने भजतां हजु कोअीनी लाज जती नथी जाणी रे+' यह भजन गाकर आशाके तंतुसे चिपटे रहनेका बल प्राप्त करते हैं।

भजनोंके कुछ प्रकार पुराने लोगोंमें प्रिय जान पड़ते हैं, परन्तु वे हमें बहुत पसन्द नहीं आते। वैराग्यके भाव भरनेके अुद्देश्यसे बहुतसे भजनोंमें संसारका नरककी खानके रूपमें वर्णन किया जाता है। संसारकी सेवा तो हमारी साधना ठहरी, अिस-लिअे अैसे भाववाले भजन हमें कैसे अच्छे लग सकते हैं? कामको जीतनेमें सहायता मिलेगी अिस हेतुसे कुछ भजन स्त्री-शरीरका घृणास्पद वर्णन करते हैं और अुससे भागनेका अुपदेश देते हैं। हम भी कामको जीतना तो चाहते हैं, परन्तु हमारी यह रीति कैसे हो सकती है? हमारी रीति तो स्त्रीके प्रति माताका भाव और सेवाका भाव पैदा करनेकी है। और कुछ भजन मौतके — यमकी यातनाओंके — भयके बाजे बजाते हैं, मौतसे वे हमें डराते हैं; अलबत्ता अिस हेतुसे कि हम अुससे बचनेके लिअे पवित्र जीवन बिताने लगें। फिर भी हमें अैसे भजनोंमें आनन्द नहीं आ सकता। हमें तो 'कर ले सिंगार

---

* हरिका मार्ग शूरोंका मार्ग है।

\+ हरिको भजते हुअे अभी तक किसीकी लाज गयी हो, अैसा हमने नहीं जाना।

चतुर अलबेली, साजनके घर जाना होगा!' अैसे भजन ही अधिक प्रिय हैं, जिनमें मृत्युका हमारे परम हितैषी स्वजनके रूपमें वर्णन किया गया हो।

प्रार्थनाका तीसरा अंग स्वाध्याय अथवा ग्रंथ-पठन है। गीता, अुपनिषद् और रामायण हमारे मूल स्रोत हैं। कुरान, बाअिबल और बुद्ध-जीवनसे भी हम समय समय पर प्रेरणाका पान करते हैं। ताजा सत्याग्रह-साहित्य तो हमारा प्रतिदिनका आध्यात्मिक भोजन है।

प्रार्थनाका चौथा अंग प्रवचन है। प्रत्येक आश्रम-संस्थामें कोअी न कोअी व्यक्ति अैसा होगा ही, होना भी चाहिये, जो अुस संस्थाका मध्यबिन्दु जैसा हो। अैसे व्यक्ति अथवा व्यक्तियोंके होने पर ही आश्रमोंमें प्राण दिखाअी देते हैं। जिन आश्रमोंमें अैसे व्यक्ति नहीं होते, वे केवल नामके ही आश्रम हैं। वहां मकान होंगे, रुपयेका जोर होगा, नियमपूर्वक कुछ काम भी चलता होगा, लेकिन प्राण नहीं होंगे।

आश्रमका अर्थ है कोअी स्फूर्तिमय व्यक्ति और अुसके आसपास अुसके आकर्षणसे जमा हुअी मंडली। सारी मंडलीकी अुसके प्रति श्रद्धा होती है, सम्मान होता है, प्रेम होता है। अुसे भी सारी मंडलीके प्रति अत्यंत प्रेम होता है। अुससे मंडलीको प्रेरणा मिलती है, तो मंडली भी अुसे प्रेरणा देती है। मंडलीको अुत्तमसे अुत्तम पथ-प्रदर्शन देना है, यह विचार अुसके मनमें चौबीसों घंटे जाग्रत रहता है, अुस विचारकी प्रेरणासे वह सदा सावधान रहता है और अपने भीतर कभी शिथिलता नहीं आने देता।

जिसमें अैसी परस्पर प्रेम और श्रद्धावाली मंडली हो, वह आश्रम प्राणवान बनकर दिनोंदिन बढ़ता रहता है। अुसकी सभी प्रवृत्तियोंमें प्राण स्फुरित होता मालूम होता है। अुसकी प्रार्थनाअें भी रसमय और सजीव होती हैं। जहां अैसा नहीं होता वहां प्रवृत्तियां तो सब चलती होंगी, परन्तु वे यांत्रिक होंगी। वहांकी प्रार्थनाअें खास तौर पर शुष्क और ग्रामोफोनके रेकार्डों जैसी निर्जीव लगेंगी, फिर भले अुनमें धूप, दीप, वाद्य जैसे कृत्रिम अुपायोंसे रस अुत्पन्न करनेके प्रयत्न किये जायं।

पुस्तकोंके वाचनके बजाय श्रद्धेय पुरुषके मुखकी जीवित वाणीकी खूबी न्यारी ही होती है। मुखकी वाणी भले ही पुस्तक जैसी व्यवस्थित न हो, परन्तु अुसमें सजीव गूंज होती है, प्रेमका अुभार होता है; बोलनेवालेके मनमें हमें कुछ न कुछ देनेका अुत्साह होता है, अिसलिअे अुसकी वाणी हमारे दिलमें सीधी पैठ जाती है, आधा वचन बोलनेसे पहले ही हम अुसका पूरा वचन समझ जाते हैं।

परन्तु प्रवचनका रिवाज नहीं डालना चाहिये। वह प्रार्थनाका अेक अंग है, अिस-लिअे किसीको कुछ न कुछ प्रवचन करना ही चाहिये, यह समझ कर यदि रिवाज डाल दिया जाय तो प्रवचनका कृत्रिम और भाषण-जैसा हो जाना संभव है। फिर तो जहां तक हो सके लंबा बोलना, अुसमें बनावटी रस पैदा करनेके लिअे निन्दा और आलोचनाओंमें अुतर जाना, युद्ध आदिकी अखबारी घटनाओंके तीखे चटपटे वर्णन देना और अुन पर रेडियोके वक्ताओं अथवा दैनिक समाचारपत्रोंकी शैलीमें विवेचन

करना — अिस तरहका प्रवचनका स्वरूप बन जानेका डर रहता है। अैसा हरगिज नहीं होने देना चाहिये।

प्रवचन करनेके लिअे — रिवाजका पालन करनेके लिअे ही प्रवचन न किया जाय। परन्तु हमारे आसपास रोज कअी घटनाअें होती हैं और सार्वजनिक सेवकोंके नाते हमें अुन घटनाओंके बारेमें अपने सिद्धान्तोंके अनुसार अपने विचार बनाने चाहिये। हमारे संस्था-जीवनमें भी छोटी-बड़ी घटनाअें होती रहती हैं तथा परेशानियां पैदा होती हैं। अिन सबके बारेमें हमारी मंडलीको धर्मबुद्धिसे — सिद्धान्तकी दृष्टिसे विचार करते रहना चाहिये। अिसलिअे प्रवचनका रिवाज न डालें तो भी नित-नये विचार करनेके अवसरोंका कभी अकाल नहीं पड़ता। हमारी संस्था सजीव होगी, केवल लकीरकी फकीर नहीं होगी और यदि सौभाग्यसे हमारे बीच चरित्रवान और विचारक नेताका निवास होगा, तो हमारी प्रार्थनाओंमें नित्य नये नये रसपूर्ण प्रवचनोंकी गंगा बहती रहेगी और हमें नित्य नयी श्रद्धा और प्रेरणा देती रहेगी।

अिसीमें से प्रश्नोत्तरीका अंग भी स्वाभाविक रूपमें पैदा हो जायगा। हम यदि गहरे अुतरकर प्रवचन सुनते होंगे, विचारमय जीवन बिताते होंगे, जितने विचारोंका आचरण करें अुतनोंको समझनेका प्रयत्न करते होंगे, और जितना समझ लें अुतने पर अमल करनेका साहस अपनेमें पैदा करते होंगे, तो हमारे मनमें तरह तरहके सजीव प्रश्न अुठे बिना कैसे रहेंगे? प्रार्थनाके पवित्र वातावरणमें हम अपनी शंकाअें अुपस्थित करते हैं और अपने श्रद्धेय गुरुजनोंसे अुनका समाधान पाकर शांत होते हैं। अेकके प्रश्नके अुत्तर सुनकर सारी मंडली लाभ अुठाती है।

पूछनेवाला अपनी होशियारी दिखानेको नहीं पूछता। अुसके मनमें सचमुच परेशानी पैदा होती है, अिसीलिअे वह पूछता है; जवाब देनेवाला अपनी बुद्धि या होशियारी बतानेको जवाब नहीं देता, परन्तु प्रेमसे दूसरेको अपने अनुभव और ज्ञानका लाभ देनेकी वृत्तिसे जवाब देता है। छोटों और बड़ोंका अेक-दूसरे पर प्रेम होता है। छोटे प्रश्न पूछनेमें न डरते हैं, न शरमाते हैं। वे आजादीसे पूछते हैं, अपनी छोटी बुद्धिके अनुसार पागलों और खिलाड़ियोंकी-सी भाषा भी अिस्तेमाल करते हैं; परन्तु अुसमें गुरुजनका अपमान नहीं होता, अुनसे सीखनेकी ही वृत्ति होती है। गुरुजन भी अुन्हें निरुत्तर करना अथवा अुड़ाना नहीं चाहते। प्रेम-संबंधके कारण तुरंत समझ लेते हैं कि पूछनेवालेकी परेशानी कहां है। हास्य-विनोदमें लपेट कर वे अपना अुत्तर अुसके हृदयमें पहुंचा देते हैं। कअी बार व्यक्तिगत अनुभवों और घरेलू अुदाहरणोंसे अुसकी आंखें खोल देते हैं। आपसमें अैसा प्रेम और विश्वास न हो, तो प्रश्नोत्तरीके भी अत्यन्त कृत्रिम और वितंडावाद बन जानेका भय रहता है। अेक अपनी बुद्धिमानीका प्रदर्शन करनेके लिअे बनावटी सवाल अुठायेगा और दूसरा सामनेवालेको चकित कर डालनेके लिअे जवाब देगा। अिस मामलेमें खूब सावधान रहना चाहिये और प्रश्नोत्तरीको अैसी हलकी बनाकर प्रार्थनाका वातावरण बिगाड़ना नहीं चाहिये।

प्रार्थनामें अेक नया अंग अभी अभी आरंभ हुआ है — वह है कुछ मिनटकी शान्तिका। सारा समूह कुछ मिनट तक विलकुल मौन और हलचल किये विना शांतिसे वैठा रहे, अिस स्थितिमें सचमुच कोअी अद्भुत आनंद होता है। प्रत्येक सदस्यको अुस समय अैसा महसूस होता है, मानो हमारे समूहमें कोअी अलौकिक विजली घूम रही है।

यह शांति यदि श्लोक वोलनेके वाद तुरन्त धारण की जाय, तो रटे हुअे सिद्धान्तोंका अुस समय दिमागमें मनन होने लगेगा। और अुनमें छिपे हुअे अर्थोंका कुछ न कुछ प्रकाश रोज हमारे अन्तरमें प्रगट होता रहेगा।

प्रवचन ५३

प्रार्थना-संचालकोंके लिअे अुपयोगी सूचनाअें

सवका सक्रिय भाग

सामूहिक प्रार्थना जहां जहां होती हो वहां अेक सूचना खास तौर पर विचारणीय है। प्रार्थना अिस ढंगसे करनी चाहिये कि सव सदस्योंको अुसके सव अंगोंमें सक्रिय भाग लेनेका मौका मिले।

सक्रिय भाग लेनेका मौका हो तो ही समूह अेकाग्रता कायम रख सकता है। यह तो प्रार्थना है, प्रत्येकको प्रयत्न करके अेकाग्र रहना ही चाहिये, अैसा सोचकर प्रार्थनाको शुष्क नहीं वना डालना चाहिये। अेकाग्रता वनाये रखनेमें सहायक होनेवाले सभी अुपाय किये जाने चाहिये।

श्लोक छोटे-वड़े सवको कोशिश करके सिखा दिये जायं, ताकि सव अेकसाथ अेकसे शुद्ध अुच्चारणसे अुन्हें वोल सकें; और न आनेके कारण किसीको खाली न वैठे रहना पड़े। भजनमें अेक भजनीक गाये और दूसरे सुनते रहें, अैसा अक्सर होता है। अिससे सदस्योंको लंवे समय तक भजनमें सीधा भाग लेनेका मौका नहीं मिलता। अिस समयमें छोटी अुम्रके सदस्य चंचल वन जाते है, अेकाग्रताकी कम आदतवालोंको नींदके झोंके आते हैं और अेकाग्रताकी आदतवालों पर भी जोर पड़े विना नहीं रहता। भजनीक गवाये और दूसरे अुसका साथ दें, यह व्यवस्था ज्यादा अच्छी है। सारा समूह अच्छे स्वरसे और अेकसाथ भजन गाये, अैसा भी किया जा सकता है। जरूरी यह है कि अुसके लिअे सवको पहलेसे अच्छी तरह तालीम दी जाय।

वाचन चल रहा हो तव या तो यह व्यवस्था हो कि सवके पास पुस्तकें हों या पढ़नेवाला विवेचन करता रहे। छपी हुअी यांत्रिक वाणीकी अपेक्षा मुंहकी सजीव वाणी पर ध्यान रखना लोगोंके लिअे ज्यादा आसान रहेगा।

प्रवचनमें तो सदस्योंके भाग्यमें चुपचाप वैठकर सुनना ही होगा, परन्तु मुंहकी सजीव वाणी होनेसे अुसमें ध्यान रहना अुतना कठिन नहीं होगा। फिर भी वोलनेवालेको श्रोता-मण्डलके सव वर्गोंका — कम पढ़े हुअे लोगों, वच्चों वगैरा सवका — खयाल

रखकर ही बोलना चाहिये। अुन्हें नजरमें रखनेसे गंभीरसे गंभीर विचारोंको सरलसे सरल बनाकर पेश करनेकी कला विकसित होगी।

यह संभव नहीं है कि जितना बोला जाय अुतना सब बालक समझ लेंगे। अिसके लिअे टूटी-फूटी भाषा अिस्तेमाल करनेकी या राजा-रानीकी कहानियां कहते रहनेकी जरूरत नहीं है। परन्तु वे भी सभामें बैठे हैं, यह खयाल बोलनेवालेके मनमें रहेगा, तो वह समय समय पर अुनके स्तर पर अुतर आयेगा। अिससे प्रवचनकी गंभीरतामें दोष आये बिना अुसमें बालकोंका रस बढ़ जायगा। बच्चे कुछ तो अच्छी तरह समझ गये होंगे और जो पूरा न समझे होंगे अुसकी भी सुगन्ध अुनके दिमागमें रह जायगी।

प्रार्थना बहुत लंबी न हो

प्रार्थनाके शरीरका विचार करते समय यह बात भी समझ लेनी चाहिये। बहुत बार कोअी कोअी संस्थाअें घंटे, डेढ़ घंटे और अिससे भी लंबे समय तक प्रार्थनाअें चलाती हैं। अिससे सदस्योंको कअी प्रकारकी असुविधाओंका सामना करना पड़ता है। अितने लंबे समय तक अेकाग्र मन और स्थिर आसनसे बैठे रहना सबके लिअे आसान नहीं हो सकता। अिसके सिवा, हिसाबी वृत्तिवाले सदस्योंके लिअे अितना लंबा समय अपने दूसरे कामोंसे निकालना भी संभव नहीं होता।

अिसमें भी प्रातःकालकी प्रार्थनाको तो १५ या २० मिनटसे अधिक लंबी होने ही नहीं देना चाहिये। अिस बहुमूल्य समयको खूब किफायतसे काममें लेना चाहिये, और अपनी अपनी स्वतंत्र जरूरतोंके अनुसार प्रत्येकके हाथमें वह समय काफी मात्रामें रहना चाहिये। यह सच है कि आश्रम अेकदिलवाली संस्था होनी चाहिये, अुसमें बहुतसे काम साथ मिलकर सामूहिक ढंगसे करने होते हैं, परन्तु हमारा यह अुद्देश्य कभी नहीं हो सकता कि सदस्योंका सारा जीवन सामूहिक या फौजी छावनीके ढंगका बना दिया जाय। सुबहका समय किसीको चिन्तनके लिअे, किसीको अध्ययनके लिअे, किसीको व्यायामके लिअे — अिस तरह अपनी अपनी जरूरतोंके अनुसार बितानेकी अिच्छा होना स्वाभाविक है। सामूहिक प्रार्थना कितनी ही अुपयोगी क्यों न हो, तो भी अुसे अपनी मर्यादा छोड़कर सदस्योंके स्वाधीन समय पर आक्रमण नहीं करने देना चाहिये।

सायंकालकी प्रार्थना कुछ अधिक लंबी की जा सकती है, मगर अुसके लिअे भी मैं तो ४०–४५ मिनटसे अधिक न रखनेकी ही सलाह दूंगा। समयकी मर्यादामें रह सकनेके लिअे सारे समूहको और खास तौर पर प्रार्थनाके अलग अलग अंगोंके संचालकोंको सहयोग देकर अपने अपने भागोंमें सावधानी रखनी पड़ेगी। निश्चित समय पर प्रार्थना शुरू हो ही जाय — न अेक मिनट देरसे और न अेक मिनट जल्दी। अिस नियमका धार्मिक लगनके साथ पालन करना पड़ेगा। श्लोकोंका भाग कअी जगह बहुत ढिलाअीके साथ लंबा-लंबा कर बोला जाता है। अिससे अेकाग्रता सिद्ध करनेमें मदद मिलती है, यह खयाल ठीक नहीं है। ढीला स्वर अेकाग्रताका पोषक हो ही

नहीं सकता। मिनट दो मिनट भी अिस तरह हम बरबाद नहीं होने दे सकते। अिसका यह मतलब नहीं कि मिनट बचानेके खातिर श्लोक धांधलीसे पढ़ लिये जायं।

भजनीकोंको भी समयका खयाल नजरसे ओझल नहीं होने देना चाहिये। पंक्तियां दोहराते रहने और लंबे लंबे आलाप लेने पर अुन्हें अंकुश रखना पड़ेगा। भजनीक स्वभावसे ही धुनी होते हैं। अिसलिअे यह सूचना अप्रस्तुत नहीं होगी। अकेला गानेवाला हो तो वह तरंगमें आकर, समयका विचार छोड़कर मुक्तकण्ठसे गा सकता है; परन्तु समूह-गान बिलकुल अलग चीज है। वह अधिक अंकुश, अधिक मर्यादा और अधिक वेगका तकाजा करता है।

धुनका तो नाम ही धुन है। वह तो धुनमें आकर ही गाअी जाती है। कहीं कहीं सामूहिक प्रार्थनामें मैंने ३०–३० और ४०–४० धुनके आवर्तन चलते देखे हैं। भजनीक तरंगमें आकर अुसमें आलाप और पलटे लेता ही चला जाता है और तृप्त होता ही नहीं। परन्तु समूह बहुत लंबी धुनको भी सहन नहीं कर सकता। यह अुसे पुसा नहीं सकता। अैसी प्रार्थनाओंके लिअे धुनके १० आवर्तन काफी माने जाने चाहिये।

पाठ, प्रवचन और प्रश्नोत्तरीके अंगोंको भी विवेकसे अपनी मर्यादा बांधनी पड़ेगी। प्रार्थनामें सब अंगोंको रोज ही स्थान देनेकी जरूरत नहीं है। अेक अंग बढ़ जाये तो दूसरोंको कम कर देना पड़ेगा।

प्रार्थनाको सदा हरी रखें

जिस प्रार्थनाका हम रोज सवेरे और शामको रटन करते हैं, वह हमें दिनमें याद रहती है? खाते, बैठते, अुठते, काम करते, सोते अुसके श्लोक मोटे अक्षरोंमें लिखे हुअे सूत्रोंकी तख्तियोंकी तरह हमें अपनी आंखोंके सामने दिखते रहते हैं? हम जो भी काम करते हैं, अुसे करते करते आजके भजनकी रटन हमारे मनमें चलती रहती है? यह रटन और स्मरण सदा ताजा बना रहे, अिसी आशासे हम रोज वहीकी वही प्रार्थना बोलते हैं।

परन्तु क्या अैसा नहीं होता कि जिस वस्तुको रोज हम अेक ही तरहसे करते रहते हैं वह यांत्रिक बन जाती है, निर्जीव आदतके रूपमें बदल जाती है, केवल क्रियाकाण्ड बन जाती है और दिनमें हमें अुसका खयाल भी नहीं रहता? अिसे सब लोग स्वीकार करेंगे कि प्रार्थनाके मामलेमें भी अैसा ही होता है। यह हमारे मनुष्य-स्वभावकी कमजोरी है। हममें कोअी विरले ही अैसे होते हैं जो सदा जाग्रत रह सकते हैं, अैसी कमजोरीसे अपनी बुद्धिको घिरने नहीं देते और अपनी प्रार्थनाको सदा हरी रख सकते हैं।

अपने स्वभावकी दुर्बलताको ध्यानमें रखकर हमें प्रार्थनाको सदा हरी रखनेके लिअे कुछ अुपाय जरूर करने चाहिये।

प्रार्थनाके श्लोकों और भजनोंके अुच्चारण और अर्थ सबको अच्छी तरह सीख लेने चाहिये। वे संस्कृत और हिन्दीमें हों तब तो अैसा करना खास तौर पर जरूरी हो

जाता है। अिसके लिअे आश्रम जैसी संस्थाओंमें समय समय पर विशेष वर्ग चलाये जायं। अेक बारका वर्ग पूरा होने पर यह प्रयत्न हमेशाके लिअे खतम हुआ, अैसा न मानकर फिरसे वर्ग शुरू किया जाय। समय समय पर भरती होनेवाले नये लोगोंके लिअे यह आवश्यक है; अितना ही नहीं, आम तौर पर सब आश्रमवासियोंके दिमागमें प्रार्थनाके अुच्चारण, शब्द और भावार्थ ताजे बने रहें अिसके लिअे भी अैसा करना आवश्यक है।

प्रवचनमें भी प्रार्थनामें आनेवाले अलग अलग सिद्धान्तों पर प्रसंगानुसार विवेचन किये जायं। हमारे व्यक्तिगत जीवन और सार्वजनिक जीवन दोनों पर अुन्हें प्रसंगानुसार घटाते रहना चाहिये।

अिस प्रकार प्रत्येक अुपायसे प्रार्थनाके शब्द, अुसके भाव, अुसमें रहनेवाले सिद्धान्त हममें से प्रत्येकके मनमें बसे रहें, यह बहुत जरूरी है। मौका-बेमौका, सुखमें और दुःखमें वे चिर-परिचित मित्रोंकी भांति हमारी आंखोंके सामने बने रहें और हमें बल और आश्वासन देते रहें, यह हमारी आंतरिक अिच्छा है। वे शब्द और भाव अितने हृदयगम्य हो जाने चाहिये कि बात बातमें वे हमारी जबान पर आते रहें; अितना ही नहीं, सपनेमें भी हमारे होठोंसे वही शब्द निकल पड़ें। हम अुन्हें अपनी रग-रगमें अितना रमा लेना चाहते हैं कि भयंकर रोगकी यातना भोग रहे हों तब भी अुन्हें याद करनेसे हमारे दिमागको थकान मालूम न हो परन्तु शांति मिले; कैसी भी आफतमें हम अुन्हें भूल नहीं सकें और मौतकी विकट घड़ीमें अन्य सब बातें भूल जायं तब भी अीश्वर-कृपासे अुनका भान हमें ताजा बना रहे।

हमें प्रत्येक अुपाय द्वारा प्रार्थनाको अैसी हरी और ताजी रखना चाहिये; अुसे दिनमें दो बार तोतेकी तरह पाठ कर जानेकी चीज कभी न बनने देना चाहि ।

623

अिस पुस्तकके पहले और तीसरे भागमें चर्चित विषय

पहला भाग : आश्रमवासीके बाह्य आचार

पहला विभाग : आश्रम-प्रवेश

दूसरा विभाग : भोजन-विचार

तीसरा विभाग : समय-पालनका धर्म

चौथा विभाग : श्रम-धर्म

पांचवां विभाग : खादी-धर्म

तीसरा भाग : आश्रमवासीके सामाजिक सिद्धान्त

नवां विभाग : ग्रामाभिमुखता

दसवां विभाग : आश्रमवासी

ग्यारहवां विभाग : आत्मबल

प्रवचन — ६५ : सार्वजनिक जीवनमें सिद्धान्त हो सकते हैं?; ६६ : 'नीतिके रूपमें'; ६७ : हमारे सेनापति; ६८ : सत्यमें कौनसा बल है?; ६९ : अहिंसामें कौनसा चमत्कार है?; ७० : अुससे स्वराज्य मिलेगा?; ७१ : हम क्यों जीतते और क्यों हारते हैं?

बारहवां विभाग : आश्रमी शिक्षाका अभ्यासक्रम (अेकादश व्रत)

प्रवचन — ७२ : आश्रम-रचनाकी बुनियाद (सत्य-अहिंसा); ७३ : आत्म-रचनाकी अिमारत [१. धन्धोंमें सिद्धान्त (अस्तेय), २ : सुख-सुविधाओंमें सिद्धान्त (अपरिग्रह), ३. व्यक्तिगतसे व्यक्तिगत जीवनमें भी सिद्धान्त (ब्रह्मचर्य), ४. भोग-विलास पर संयम (शरीर-श्रम), ५. आत्म-रचनाका 'बायें-दाहिने' (अस्वाद), ६. लड़ाका सत्याग्रह (अभय), ७. विशाल स्वदेशी, ८. अूंच-नीच-भेदका जहर (अस्पृश्यता-निवारण), ९. सच्ची धार्मिकता (सर्वधर्म-समभाव)]; ७४ : आत्म-रचनाके त्रिविध फल; ७५ : आत्म-रचनाकी शाला — आश्रम; ७६ : स्वराज्य आश्रम।

फलश्रुति : नयी संस्कृतिकी पुरानी बुनियाद — लेखक : काकासाहब कालेलकर।